प्री-लांसर

ष्ठ साहित्य को अत्यन्त नयनाभिराम रूप-सज्जा में
प्रस्तुत करनेवाला एकमात्र संस्थान

जी० टी० रोड, शाहदरा, दिल्ली-110032

शुभा वर्मा

इस उपन्यास के सभी पात्र काल्पनिक हैं। इनका व्यक्तिगत रूप से किसीसे कोई सम्बन्ध नहीं है।

मूल्य : पच्चीस रुपये (25.00)

प्रथम संस्करण : 1981

प्रकाशक | सरस्वती विहार
जी० टी० रोड, शाहदरा
दिल्ली-110032

FREE-LANCER (Novel) by Shubha Verma

फ़्री-लांसिंग के अपने पांच वर्षों को

□□

शाहाना को 'आफ़्टरनून' के लिए एक कॉलम लिखते दो वर्ष बीत चुके थे। सप्ताह में एक दिन जाना, अपना कॉलम 'प्रेस मैटर' वाली ट्रे में डालकर चले आना। इतना संबंध था उसका वहां के लोगों से, उस दफ्तर से ।

कभी-कभी वापस जाने लगती तो 'मियानी फ्लोर' में बने कैफ़ेटेरिया में चली जाती एक प्याला कॉफ़ी पीने। कभी कोई साथ आकर बैठ जाता, कभी अकेले अपनी कॉफ़ी खत्म करती और बिल्डिंग की सरहद से बाहर हो जाती। दफ्तर से उसका परिचय था, हलो-दुआ-सलाम तक। न इससे कम, न इससे ज्यादा।

इस क्रम में अपवाद तब होता जब उसे सैम साहब की चिट मिलती जिसमें लिखा होता, 'मिलकर जाना'। शाहाना को उस दिन दो-ढाई घंटे की आहुति देनी पड़ती। कभी हलका सिर-दर्द लेकर, कभी जान बची लाखों पाए के अन्दाज में वह उठकर बाहर आती। खुली हवा में जमकर सांस लेती। जिन्दगी में सब कुछ साफ-सुथरा ही तो नहीं होता। बड़ी सारी गन्दगी झेलनी पड़ती है इन्सान को आज के युग में अपना पैर जमाए रखने के लिए। पहली बार डोज़ गहरा था, फिर कुछ कम, फिर उससे भी कम, इसके बाद आदत पड़ गई। उसने जान लिया था कि जिस दिन 'आफ़्टरनून' का 'कांफ़िडेंशियल' छोड़ने की स्थिति में वह आ जाएगी, सैम की सहानुभूति पर लात मारकर चल देगी; लेकिन जब तक वह स्थिति नहीं आ जाती, उसे काम करते रहना है।

शाहाना जानती है, फ़्री-लांसर पर यह मुहावरा सही उतरता है—'पोच की जोरू सबकी भाभी।' किसी एक की नहीं हो सकती। उसे बहुत संभलकर चल

पड़ता है और एक जगह कहीं पांव फिसला, या जमा तो फ़्री-लांसिंग रोग बन :
है। इसलिए वह कोशिश करती कि बहता पानी बनी रहे, जिसमें कोई हाथ
भी जाए तो पानी गन्दा न हो। अपने-आपको इस स्थिति तक पहुंचा ले जाना
आसान नहीं था लेकिन अब, अपने पैरों चलकर वह वहां तक पहुंच गई तो
सब कुछ बड़ा मशीनी लगने लगा है।

'आफ़्टरनून' में उसके आने का दिन पहले बुधवार हुआ करता था,
शनिवार हो गया।

उस दिन हमेशा की तरह काम निबटाकर वह जल्दी जाना चाहती थी।
भी पड़ी थी। लेकिन कमरे के दरवाजे तक पहुंची ही थी कि सैम साहब की
लेकर चपरासी भागता हुआ आया। हमेशा की तरह लिखा था, 'मिलकर जान

शाहाना रुक गई। वापस अपनी सीट पर आकर बैठ गई और उस व्यक्ति
जाने का इन्तज़ार करने लगी जो अन्दर सैम के साथ बैठा था।

लगभग पैंतालिस मिनट बाद जब अन्दर का व्यक्ति बाहर आया तो शाह
अन्दर गई।

सैम साहब थके-हारे-से बैठे थे। उसे सामने की कुर्सी पर बिठाया, 'अ
आया' कहते हुए वह केबिन से बाहर हो गए। शाहाना अब समझ गई थी कि वि
को बिठाकर केबिन छोड़ देना उनकी पुरानी आदत है। इसलिए चुपचाप बैठी र
न उसे बुरा लगा, न उसने बाहर जाने की बात सोची।

"आजकल बड़े चर्चे हैं आपके ?" एक पान खाते हुए सैम साहब केबिन
दाखिल हुए। अपनी सिगरेट सुलगाने से पहले कुर्सी पर बैठते हुए उन्होंने
सवाल शाहाना की ओर फेंक दिया।

"चर्चे चंद खुशनसीबों के ही होते हैं बॉस!" शाहाना सामान्य बनी रही

"मानता हूं, लेकिन अभी आप फ्री-लांसर हैं। आपको बहुत-सी बातों का ध्य
रखना चाहिए।"

"मसलन ?"

"मसलन यह कि आप किसके साथ उठती-बैठती हैं? कहां घूमती-फिरती हैं
जिन लोगों के साथ आपका उठना-बैठना है, वे लोग कैसे हैं ?"

"ऐसे लोग कभी आज तक भले हुए हैं ?"

"आदमी का अपना स्टैंडर्ड होना चाहिए।"

"हर आदमी का अपना स्टैंडर्ड औरों से बेहतर होता है।"

"मैं बहस में नहीं पड़ना चाहता। मैंने जो बात कही है, उसपर अगर आप
चित लगे तो ध्यान दीजिए। वैसे यह बात मैंने आपकी भलाई के ही ि
ही है।"

"उसके लिए शुक्रिया बॉस ! आप जानते हैं, किसीकी ज़बान नहीं पकड़ी
कती।"

"ज़बान किसकी कौन पकड़ सकता है ? न किसीको कोई रोक सकता
किन आदमी को खुद सोचना चाहिए। अब आप अपनी ही बात ले लीजि
तर या दफ्तर की कैंटीन तक तो ठीक है। बाहर आप किसके साथ घूम
रती हैं, कभी आपने सोचा है, इसका असर आपके काम पर पड़ सकता है ?

"कोई कुछ कह रहा था क्या ?"

"कहते तो रहते ही हैं लोग। लोगों को यही परेशानी है कि एक नाम
ॉलम दो वर्ष से ज्यादा खिंच क्यों रहा है, दूसरों को भी मौका मिलना चाहि
रा-ज़रा-सी बात साली ऊपर तक पहुंच जाती है। मैं वैसे इस तरह की बातों
ान नहीं देता, लेकिन सीमा पार कर जाए कोई बात इससे पहले आपको आग
र रहा था, ताकि आप संभल जाएं और आपके लिए कोई कुछ कहे तो मैं
वाब देने की हालत में रहूं।"

शाहाना ने कोई जवाब नहीं दिया। तटस्थ आंखों से कुछ देर सैम साहब
खती रही फिर उनके सिर से पीछे खिड़की से बाहर घूरने लगी।

"अभी जाना मत।" कहकर सैम साहब अपनी कुर्सी से उठे और फिर केबि
बाहर चले गए।

उसने कभी हाथ नहीं लगाया।

दो-एक बार सैम ने उससे इशारतन पूछा भी था कि इस तरह के चित्र अग
वह देखना चाहे तो इंतजाम हो सकता है।

'थैंक यू बॉस, मेरी दिलचस्पी नहीं है उधर···' झेंप गई थी पहली बार।

लगभग आधा घंटा बीत जाने पर सैम साहब केबिन में दाखिल हुए अं
अपनी कुर्सी पर बैठते हुए उन्होंने घंटी बजाकर चपरासी को बुलाया। अपनी जे
से एक रुपये का नोट निकालकर दो सिगरेट लाने का हुक्म दिया। टूटी हुई ब
का सिलसिला जोड़ने ही वाले थे कि टेलिफोन की घंटी बज उठी।

टेलिफोन-वार्ता खत्म होने के बाद दो टेलिफोन उन्होंने खुद किए। त
इतमीनान से रिसीवर अलग रखकर वह शाहाना की ओर मुखातिब हुए तां
अब उनकी बातचीत में कोई बाधा न पड़े।

"परेशान होने की जरूरत नहीं। सेन को पहले समझ लो तब जो चाहो करो
उन्होंने कहा।

शाहाना ने मन की तिलमिलाहट जाहिर नहीं की।

"उससे तुम्हारी दोस्ती कब हुई?"

"सेन से मेरी दोस्ती नहीं, मुलाक़ात है।"

"जो भी हो, आम आदमी यह नहीं समझता···घूमते-फिरते देखा, और बा
शुरू कर दीं।"

शाहाना चुप रही।

"वैसे दोस्ती और मुलाक़ात में क्या फ़र्क़ है?"

"दोस्ती एक रिश्ता है, मुलाक़ात केवल मुलाक़ात है।"

"देखो शाहाना चौधरी! काम तो यहां और लोग भी करते हैं। जब तुम्हार
नाम उसीके साथ जोड़ा गया है तो उसका आधार भी होगा।"

शाहाना ने जब्त से काम लिया।

"बुरा मानने की बात नहीं है। मैं एक दोस्त की हैसियत से तुम्हें आगाह क
रहा था। सेन की रेपुटेशन अच्छी नहीं है।"

"मुझे इस बात का ध्यान है कि किसीकी रेपुटेशन से मेरी रेपुटेशन खराब
हो।"

"मुझे उससे ज़ाती तौर पर कोई शिकायत नहीं। अपना काम ठीक-ठीव

करता है। लेकिन, तुम जानती हो, सिर्फ़ काम की परवाह आज कोई नहीं करता। किसी भी बड़े संगठन-संस्थान में आदमी के लिए सबसे बनाकर रखना जरूरी है और इसके लिए बहुत कुछ करना पड़ता है।"

शाहाना का मन हुआ, पूछे, 'किसी बड़े संगठन-संस्थान में बनाकर रखने के लिए 'क्या-क्या' करना पड़ता है?'

सेन होता तो तपाक से बोलता :

'नंगी औरतों की तसवीरें लाकर साथ-साथ देखनी-दिखानी पड़ती हैं। मिथुन-रत जोड़ों की तसवीरों-फिल्मों का जोगाड़ करना पड़ता है। कोई अच्छी खूबसूरत लड़की संस्थान में आ गई तो 'बिगबॉस' के यहां पहुंचानी पड़ती है। कभी-कभी अपनी गर्ल-फ्रेंड को फ्लैट में रखकर अपने बॉसों को परोसना पड़ता है। अगर आप पुरुष हैं, शादी-शुदा हैं तो अपनी बीवियों को अंदर बिठाकर बॉस की दिलजोई करनी पड़ती है।'

लेकिन शाहाना चुप रही।

'बात कहीं सीधे मुकाबले पर अड़ जाए तो चुप रह जाना बड़ा कारगर होता है,' मौसी कहा करती थीं और यह रुख कितना प्रभावी है, यह शाहाना भी आज़मा चुकी थी।

वह चुप बैठी सैम का भाषण सुनती रही।

अचानक चपरासी केबिन में फिर अवतरित हुआ और कॉफ़ी के प्याले दोनों के सामने रखकर चलता बना।

शाहाना ने राहत की सांस ली। एक घूंट कॉफ़ी की कितनी सख्त जरूरत थी उसे! वह आहिस्ता-आहिस्ता कॉफ़ी का घूंट भरती रही। दिमाग का एक दरवाजा धीरे-धीरे बंद होता गया। सैम कुछ कह रहा था लेकिन शाहाना उसे ग्रहण नहीं कर रही थी।

विल्स किंग साइज की दोनों सिगरेटों की राख जब सैम साहब झाड़ चुके तब उन्होंने भाषण बंद करके एकदम से विषय बदला :

"और सुनाइए शाहाना चौधरी, आपके क्या हाल हैं?"

"आपकी दुआ है बॉस!" बदले हुए प्रसंग पर वह मुसकराई।

मुझे मिलना चाहिए।"

"क्यों नहीं, आपकी इनायत मेरी दिलचस्पी का विषय भी है, यह आप
भूल जाती हैं ?"

"आप मेरी इनायत के मोहताज तो नहीं ?"

"मोहताज कौन होता है किसीका ? अपनी-अपनी जगह पर सब खड़े होते
फिर भी जायक़ा तो बदलते हैं।"

शाहाना का चेहरा अपमान की लालिमा से तमतमा गया। गनीमत थी
सैम साहब की आंखें उसके चेहरे पर नहीं थीं।

"बोलो, कौन होता है मोहताज किसीका ?"

"आदमी यह बात समझता नहीं। अगर एक बार भी समझ ले तो उसके ब
से सवालों का जवाब निकल आए।"

"मेरे सवाल का जवाब यह नहीं है।"

"बहुत-से सवालों के जवाब नहीं हुआ करते।"

"चलिए यही बात बता दीजिए कि आपकी इनायत कितनों पर है ?"

"इस तरह की बातें 'कांफ़िडेंशियल' होती हैं बॉस, आप कहें तो अपने कॉलम
एक समस्या बनाकर लिख दूं ?" शाहाना ने स्थिति को सामान्य स्तर पर लाने
कोशिश की।

"छोड़िए, न बताइए। हालांकि मैंने कोई बात आपसे 'कांफ़िडेंशियल' नहीं
ी...आप यह बता दीजिए आज कि मुझपर आपकी इनायत कब होगी ?"
मुसकुराए।

"मैं इसका जवाब दे चुकी हूं।"

"मेरा सवाल सीधा था। उसका जवाब भी सीधा ही मिलना चाहिए।"

"मेरी इज़्ज़त अफ़ज़ाई से आपका नुकसान हो सकता है।"

"कैसे ?"

"कुन्तल मेहता इस सवाल का जवाब बेहतर दे सकती हैं।"

यह दूसरी बार था कि कुन्तल मेहता का नाम बीच में लाकर शाहान
अपने मन की असलियत पर परदा डाल लिया था। एक बार और वह सैम
बेतुकी बातों के घेरे में पड़ गई थी तो पनाह पाने की बेताबी में उसने विषय बद
चाहा और अचानक उसके मुंह से कुन्तल मेहता का नाम निकल गया था।
उस नाम के इंद्रजाल में उलझ गए और शाहाना घेरे से बाहर आ गई थी।

बातचीत का विषय एकदम बदल गया।

शाहाना ने राहत की सांस ली। उसे विश्वास हो गया कि सैम उसे कटघ
दुबारा खड़ा नहीं करेगा।

पहली बार की तरह फिर चल पड़ा कुन्तल मेहता-पुराण। सैम अपने संस
सुनाता रहा। शाहाना आश्वस्त होकर सुनती रही।

लेकिन उसके दिमाग का एक हिस्सा उन पलों को कुरेद रहा था जब उ
मुलाक़ात कुन्तल मेहता से हुई थी। प्रवीर से बातचीत भी उसी दिन हुई थी

'आफ़्टरनून' के कैफ़ेटेरिया में उस दिन एक प्याला कॉफ़ी पीने की गर
वह अकेली जा बैठी थी। दरअसल, किसी अनचाहे व्यक्ति के साथ बैठकर
जाया करने से अकेले बैठना उसे हमेशा से अच्छा लगता है। खास तौर से f
रेस्तरां या कैफ़ेटेरिया में।

कॉफ़ी का पहला सिप लिया ही था कि सुनाई पड़ा :

"मैं यहां बैठ सकती हूं ?"

"जरूर!" कहते हुए शाहाना ने नजर उठाई।

एक स्वस्थ सुंदर चेहरा उसके सामने था—आईलाइनर से चौड़ी की
आंखें, तराशी हुई भौहें, कटे हुए बाल, होंठों पर लिपस्टिक, गालों पर हलकी ल
निखरा हुआ रंग। उम्र यही कोई पैंतीस-चालीस के बीच। बैठते ही उन्होंने व
का आर्डर दिया, क्योंकि वेटर उनके पास आकर खड़ा हो गया था।

शक्ल पहचानी-सी लगी।

"मुझे कुन्तल मेहता कहते हैं।" उन्होंने कहा।

शाहाना ने पलकें झपकाकर उनकी बात सुनी। नाम के बदले नाम
बताया।

"आप यहां काम करती हैं ?" एक ही बार में सब कुछ जान लेने के
बेताब कुन्तल मेहता से किसीकी खामोशी सही नहीं जाती। बातचीत का

वह अकेले भी संभाले रह सकती हैं।

"काम से आपका मतलब अगर नौकरी से है तो नहीं, वैसे काम करती हूं।" शाहाना को बोलना पड़ा।

"क्या काम करती हैं?"

"एक कॉलम लिखती हूं।"

"कौन-सा कॉलम लिखती हैं आप?"

"कांफ़िडेंशियल···।"

"तो शाहाना चौधरी हैं आप!" कुन्तल मेहता की मुसकुराहट एक कान से दूसरे कान तक खिंच गई, "बहुत अच्छा लिखती हैं। मैं तो हर हफ्ते इंतज़ार करती हूं 'आफ़्टरनून' का। संडे पेज में सबसे पहले आपका कॉलम पढ़ती हूं।"

एक औपचारिक मुसकान शाहाना के होंठों तक आकर वापस चली गई।

"कहीं काम भी करती हैं?" कुन्तल मेहता ने पूछा।

"कई जगह।"

"मैं समझी नहीं?"

"मैं फ़्री-लांसर हूं।"

"ओ···फिर तो बहुत मेहनत करनी पड़ती होगी!"

शाहाना ने कुछ नहीं कहा।

"यहां आपका परिचय कैसे हुआ?"

"अपने-आप।"

"किसीने तो आपको भेजा होगा?"

"जी नहीं, मैं खुद आई थी।"

"आपको मालूम था, यहां किसी कॉलमिस्ट की जगह खाली है?"

"कॉलम की बात मेरे आने के बाद सोची गई।"

"वही तो पूछ रही हूं, आप आईं कैसे?" कुन्तल मेहता की ओढ़ी हुई मासू-

"यहां माता-पिता के साथ रहती हैं ?"

"जी नहीं।"

"अकेले रहती हैं ?"

"मिसिस मेहता, यह हमारी पहली मुलाक़ात है और आप सवाल इस त
पूछ रही हैं, जैसे मैं किसी कटघरे में खड़ी हूं। दरअसल पहली मुलाक़ात में इ
खुलने की मेरी आदत नहीं।"

"आप यहां बैठी हैं मैडम," कुन्तल मेहता के कंधे पर हाथ रखते हुए किर
कहा, "सैम साहब आपको ढूंढ़-ढूंढ़कर पागल हुए जा रहे हैं।" फिर ज़रा रुक
"इजाज़त हो तो मैं भी बैठ जाऊं ?"

"बैठिए-बैठिए सेन साहब !" कुन्तल मेहता ने कहा।

लेकिन आने वाला कुन्तल मेहता की इजाज़त के बग़ैर ही बैठ चुका था।

कुन्तल मेहता ने वेटर को इशारा करके सेन के लिए कॉफ़ी मंगवाई।
शाहाना की ओर मुख़ातिब होकर सेन से कहने लगीं, "आपसे मिलिए, शाह
चौधरी। जाने कब से मिलना चाहती थी इनसे···और शाहानाजी, ये हैं प्र
सेन, 'आफ़्टरनून' के विशेष संवाददाता।"

शाहाना के होंठों पर एक बारीक मुसकान आई और चली गई।

प्रवीर हंस पड़ा।

"देखा तो है इन्हें, मगर मुलाक़ात आज से पहले कभी नहीं हुई थी।
असल, ऐसे शुभ काम आपके बग़ैर कोई करता नहीं।" प्रवीर सेन ने कुन्तल मे
को मस्का लगाया।

औपचारिक अभिवादन के बाद शाहाना अपनी कॉफ़ी में डूब गई। उ
दोनों हमप्यालों में कुछ देर नोंक-झोंक चलती रही। उनकी बातों का सिर
जोड़ने का मन नहीं हुआ उसका। फिर भी बातें कानों में पड़ रही थीं।

सेन की कॉफ़ी आ गई थी। उसमें दो चम्मच चीनी मिलाकर घोलते
कुन्तल मेहता पूछ रही थीं :

"सैम साहब से आपकी सुलह हो गई ?"

"मेरा झगड़ा कब हुआ था ?···अरे हां, सैम आपको ढूंढ़ रहे थे, मैं तो
ही गया।"

"ढूंढ़ने दो। हां, तो तुम्हारी सुलह हो गई ?" कुन्तल मेहता 'आप' से '

पर उतर आई।

"मेरा झगड़ा कब हुआ था ?"

"तुम समझते हो, मुझे मालूम नहीं ?" कुन्तल मेहता मुसकुराईं।

"यह तो और भी अच्छा। जब आपको मालूम है तब पूछ क्यों रही हैं ?" फिर कैफ़ेटेरिया के 'प्रवेश' की ओर देखते हुए सेन ने कहा, "वह लीजिए, आपको ढूंढ़ते हुए यहां भी हाजिर हो गए सैम साहब।"

कुन्तल मेहता दरवाजे की ओर पीठ किए लापरवाही दिखाती बैठी रहीं। एक बार मुड़कर देखा भी नहीं।

सामने की मेज पर 'आफ़्टरनून' के फोटोग्राफर बैठे थे। सैम साहब वहीं जाकर बैठ गए।

सैम की इसी अदा पर कुछ लोग मरते भी हैं। उनका भाईचारा जी० एम० से लेकर चपरासी तक, सबसे बराबर है। अपने चपरासी से बीड़ी मांगकर पीते हुए भी लोगों ने उन्हें देखा है और उनके घर के बने रोटी-परांठे का टुकड़ा तोड़कर मुंह में डालते हुए भी। फोटोग्राफरों की बिरादरी तो काफी ऊंची थी।

एक बार अपनी कुर्सी पर बैठने के बाद उन्होंने हॉल का जायज़ा लिया। शाहाना पर नज़र पड़ी तो एक मूक अभिवादन उछाल दिया। कुन्तल मेहता की ओर देखकर एक खास अन्दाज़ से मुंह बनाया। किसी और की नज़र पड़ी होगी तो उसने समझा होगा वह चिढ़ा रहे हैं कुन्तल मेहता को। लेकिन कुन्तल मेहता छुई-मुई की तरह सिमट आईं। फिर उनकी कॉफ़ी आ गई और वह दत्तचित्त होकर पीने लगे।

कुन्तल मेहता अपनी और सेन की कॉफ़ी का दाम चुकाकर चली गईं। शाहाना की कॉफ़ी का बिल अदा करने की जिद भी उन्होंने की लेकिन उसने साफ मना कर दिया।

कुन्तल मेहता के पीछे-पीछे सैम साहब भी कॉफी गले के नीचे उतारकर चले गए।

शाहाना दोनों को जाते हुए देखती रही फिर उसने प्रवीर सेन की ओर रुख किया।

एक सन्तुलित चेहरे पर जड़ी दो प्रभावशाली आंखें। गर्दन तक बढ़ आए घुंघराले खिचड़ी बाल। जरूरत पड़ने पर दृढ़ता से बन्द हो जाने वाले ईमानदार

ोंठ। दाढ़ी-मूंछ साफ़···उंगलियों से होंठों तक की यात्रा करती, जल-जलकर ख़ाक होनेवाली पहलवान छाप बीड़ी।

शख़्सियत मामूली से थोड़ा हटकर लगी।

"आपका कॉलम बड़े मन से पढ़ा जाता है।" अपनी ओर देखती शाहाना की आंखों में झांककर सेन ने कहा।

"लगता है, आपने कोई सर्वेक्षण कराया है।"

एक खुली नज़र शाहाना पर डालकर सेन कॉफ़ी पीने लगा, बोला कुछ नहीं।

थोड़ी देर दोनों खामोश रहे। शाहाना ने अपनी कॉफ़ी का अन्तिम घूंट भरते हुए पहल की।

"आप ज्यादातर बाहर ही रहते हैं शायद।"

"पापी पेट के लिए रहना पड़ता है।"

"पिछले दो वर्षों में कुल तीन-चार बार देखा होगा आपको यहां।"

"इतना बाहर तो नहीं रहता। वैसे आप आतीं भी तो हफ्ते में एक बार हैं। जब आप आती हैं, मैं जा चुका रहता हूं।"

"औसतन कितना समय आपको बाहर बिताना पड़ता है?"

"कोई तय नहीं। कभी-कभी तो दो-तीन महीने लगातार बाहर रहता हूं।"

"इसीलिए शायद पाठकों का मन पढ़ने का मौका आपको ज्याद मिलता है?"

"जी हां, तभी कहा, आपका कॉलम बहुत पढ़ा जाता है। आपने क्या सोचा, मैं मजाक कर रहा हूं?"

"ऐसी गुस्ताखी मैं पहली मुलाक़ात में नहीं करती।"

"अरे···अरे···आप तो बुरा मानने लगीं!"

"नहीं तो···मैंने बस यूंही कह दिया।"

"यूंही कहकर लोगों पर बड़े-बड़े हमले कर दिए जाते हैं।"

"मैंने आपपर हमला तो नहीं किया।" शाहाना ने मुसकुराहट का शोख परदा अपने चेहरे से हटा लिया।

"और हमला किस तरह किया जाता है?"

"पत्रकार की चमड़ी तो मोटी होती है। आप तो खासे भावुक हैं

"मैं पत्रकार होने से पहले एक ईमानदार आदमी हूं।"

"पत्रकार पहले पत्रकार होता है, बाद में आदमी ।"

"नहीं साहब, वैसा पत्रकार मैं नहीं हूं ।"

"फिर तो मुझे भी अपनी राय बदलनी पड़ेगी ।"

"बदल डालिए। अगर किसीके बारे में राय कायम करना जरूरी हो जाए तो सही राय कायम की जानी चाहिए।"

"मेरी राय व्यावसायिक व्यक्तित्व के बारे में थी, निजी व्यक्तित्व के बारे में नहीं ।"

"व्यवसाय भी व्यक्ति ही करता है ।"

"बहुत-से लोग अपने व्यक्ति को व्यवसाय से अलग रखते हैं ।"

"मैं समझता हूं, कहीं-न-कहीं दोनों मिले होते हैं ।"

"मेरा नाम शाहाना चौधरी है ।"

"मैं प्रवीर सेन हूं ।"

"इतना परिचय तो कुन्तल मेहता भी करवा गई थीं ।"

"कुन्तल मेहता ने इसके आगे का परिचय कराया था ।"

"मतलब ?"

"मतलब यह कि 'आफ़्टरनून' से अलग हटकर शाहाना चौधरी या प्रवीर सेन कुछ हो सकते हैं, यह समझने की अक्ल कुन्तल मेहता में नहीं है ।"

"खुशी हुई आपसे मिलकर ।"

"कुन्तल मेहता ने अनजाने एक अच्छा काम कर दिया है···अगर आपकी इजाज़त हो तो एक-एक कॉफ़ी और पी ली जाए ?"

"इजाज़त है ।"

जब कॉफ़ी आ गई तो दोनों ने अपने-अपने प्याले में चीनी मिलाई। पहली चुस्की लेने के बाद शाहाना ने तारीफ की :

"कॉफ़ी अच्छी है, गरम भी ।"

"अगर आप बुरा न मानें तो एक बात पूछूं ?"

"बात अगर बुरी हुई तो बुरा जरूर मानूंगी ।"

"उतनी बुरी नहीं है ।"

"थोड़ा बुरा मानूंगी ।"

"कुन्तल मेहता से आपका परिचय कैसे हुआ ?"

"बस, यूंही।"

"बहुत दिनों से जानती हैं ?"

"जानती नहीं···अभी-अभी मिली थी आपके आने के थोड़ा पहले।"

"देखा तो होगा ?"

"देखने भर से किसीसे परिचय नहीं हो जाता मि० सेन !"

"आफ़्टरनून वालों ने इनसे आपका परिचय नहीं करवाया था आज तक

"परिचय क्या इतना जरूरी था ?"

"शुक्र है, खुदा का वह काम मैंने भी नहीं किया।"

"वह शुभ काम तो वह खुद ही कर सकती हैं। लेकिन आपके इस त
पूछने की कोई वजह ?"

"इन्सान का चीज बन जाना अगर कोई वजह है तो आप इसे पय
मानेंगी ?"

"जी हां, लेकिन इन्सान चीज़ कैसे बन जाता है ?"

"जब अपनी खुदी को दूसरों की मर्जी पर कुछ घटिया फायदों के
न्योछावर कर दिया जाए तब इन्सान चीज़ बन जाता है।"

"आपकी बातों में गहराई है।"

"इतनी नहीं कि आप उतर न सकें।"

"आप यह कैसे कह सकते हैं कि मैं उतरना चाहती हूं ?"

"नहीं चाहतीं तो चाहिए।"

"क्यों ?"

"क्योंकि इनसे या इन जैसी दूसरी देवियों से बार-बार आपका सा

भविष्य अभी वताए देता हूं।"

"भविष्य आप बता रहे हैं, सवालों का जवाब मैं क्यों दूं ?"

"भविष्य बतानेवाले को कुछ तथ्य फीड करना पड़ता है—आप नहीं जानतीं ?"

"जब फीड ही करना पड़ा तो हिसाब खुद नहीं लगा लेंगे ?"

"नहीं मिस चौधरी, यहां के बारे में फिलहाल आप कोई हिसाब नहीं लगा सकतीं। मैं लगा सकता हूं, क्योंकि मेरा अनुभव आपसे दस गुना ज्यादा है।"

"पूछिए, क्या पूछ रहे हैं ?"

"सैम्युअल साहब से आपकी बातचीत होती है ?"

"क्यों नहीं ! जब मैं उनके पत्र के लिए लिखती हूं तो बातचीत नहीं होगी ?"

"मेरा मतलब उस बातचीत से नहीं।"

"किस बातचीत से मतलब है आपका ?"

"देखिए, बुरा मानने की कतई गुंजाइश नहीं। हम लोग एक नतीजे पर पहुंचने की कोशिश कर रहे हैं। मेरा मतलब, विषय से हटकर व्यक्तिगत बातचीत···कि आपको क्या अच्छा लगता है, आपका कभी इश्क हुआ किसीसे या कभी दर्पण में आपने खुद को देखा···टाइप बातें। या आपका हाथ अपने हाथ में लेकर भविष्य पढ़ने की बात।"

"सैम्युअल साहब के बारे में आप जरूरत से ज्यादा जानते हैं।"

"हॉबी है मेरी। किसी महत्त्वपूर्ण कुर्सी पर बैठा हर आदमी मेरे चीर-फाड़ का विषय बन जाता है।"

"सताए हुए मालूम पड़ते हैं कुर्सीवालों से।"

"बहुत···।"

"आपकी जानकारी के लिए बता दूं कि अभी कोई ऐसी बात नहीं हुई। न उन्होंने मेरे इश्क के बारे में पूछा, न मेरा हाथ देखकर भविष्य बताने की कोशिश की।" शाहाना सफेद झूठ बोल गई, क्योंकि ये बातें सैम साहब पहली मुलाकात में ही दोहरा चुके थे।

"विश्वास तो नहीं होता लेकिन जब आप कहती हैं तो माने लेता हूं। लेकिन घबराइए नहीं, जल्दी ही वह शुभ घड़ी आ जाएगी फिर याद कर लीजिएगा इस बंदे को कि जरूरत भर मालूम है। न कम, न ज्यादा।"

"मेरे भविष्य का क्या हुआ ?"

"अभी सांचे में है, ढल जाएगा तो बताऊंगा।"

"तब मैं ख़ुद ही देख लूंगी, आप क्या बताएंगे ?"

"जो मैं बताऊंगा, आप नहीं देख सकतीं।"

"इन दो वर्षों में आप समझते हैं, मैंने अपनी आंखें बंद रखी हैं ?"

"दो वर्ष हो गए आपको ?"

"आप इसी परचे में काम करते हैं शायद !"

"बुरा मत मानिए। अब तो आप हमपेशा हैं, बहुत कुछ समझ गई इतना कौन याद रखता है ?"

"आप राजनीति पर लिखते हैं न ?"

"इस सवाल से यह साबित हो जाता है कि 'आफ़्टरनून' आप ध्यान से हैं।"

"जिस दिन आपकी तरह पहुंची हुई पत्रकार बन जाऊंगी, छोड़ दूंगी।"

"अच्छा छोड़िए, सैम्युअल-पुराण लेकर फिर कभी बैठेंगे। आप यहां ह सिर्फ एक दिन आती हैं···यहां नौकरी क्यों नहीं कर लेतीं ?"

"आपके महत्त्वपूर्ण कुर्सीवालों का कहना है कि एक की *गुलामी से मुक्त* बेहतर है।"

"उनका बड़ा खयाल है आपको।"

"मैं भी एक सर्वेक्षण कर रही हूं।"

"लगता है, चीफ कॉरेस्पौंडेंट बनने में आपको ज्यादा दिन नहीं लगेंगे।"

"सीसी बनने का फिलहाल मेरा कोई इरादा नहीं।"

"प्रमोशन आपको बुरा लगेगा ?"

"अगर मैंने उसे 'अर्न' नहीं किया है तो।"

"तजुर्बे हासिल करना चाहती हैं आप ?"

"वह तो इंसान आखिरी दम तक करता है।"

"कुन्तल मेहता से सावधान रहिएगा।"

"बड़े आतंकित मालूम पड़ते हैं आप उनसे ?"

" 'आफ़्टरनून' की सबसे बड़ी लेखिका हैं भई।"

"मैंने तो सोचा था, काम करती हैं यहां।"

"काम क्यों करेंगी ? वह तो 'आफ़्टरनून' की ऑनरेरी मालकिन हैं।'
"मालकिनें इस तरह बावली बनी घूमती रहती हैं ?"
"मिल्कियत ऑनरेरी है, कभी छिन भी सकती है, इसलिए काम ख
घूमती फिरती हैं।"
"लेकिन ऑनरेरी मिल्कियत क्यों छिनेगी ?"
"बिगबॉस की नजर से कौन, कब गिर जाए, इसका कुछ पता रहता है
"ऑनरेरी मालकिन को कोई केबिन नहीं मिला ?"
"मिल जाता, लेकिन तितली बनकर फुदकना उन्हें ज्यादा अच्छा है।"
"कितना पावर होल्ड करती हैं ?"
"चाहें तो इस इमारत का आधा हिस्सा एक इशारे में उड़ा सकती हैं।'
"आधा क्यों ?"
"आधे में दूसरे का अधिकार है।"
"वैसे आधा भी बहुत है।"
"इसीलिए आपको आगाह कर रहा था।"
"सैम साहब के साथ किस झगड़े की बात कर रही थीं ?"
"मामूली कहा-सुनी हो गई थी।"
"अब तो शांति है ?"
"इस तरह की कहा-सुनी होती ही रहती है।"
"सैम्युअल साहब मुझे तो पढ़े-लिखे आदमी मालूम पड़ते हैं।"
"उनके बारे में कोई राय नहीं बना पाया हूं।"
"यहां काम करते हुए बीस वर्ष हो चुके हैं आपको ?"
"तो ?"
"बॉस के बारे में कम-से-कम एक राय तो अब तक कायम कर ले
ाहिए।"
"मेरा बॉस वे पन्ने होते हैं जिन्हें लिखकर मैं सैम्युअल साहब के सामने
ाता हूं।"
"इस नज़रिये के लिये मैं आपकी इज्जत कर सकती हूं।"
"जहीन लड़कियों की इस व्यवसाय में कमी है।"

"मैंने आपको अपना संरक्षक नहीं माना अभी।"
"जिस आदमी का अपना घर भी न हो, वह किसी का संरक्षक क्या बने
"मेरी बात से तकलीफ पहुंची हो तो ऐसा कोई इरादा नहीं था मेरा।"
"मुझे कोई तकलीफ नहीं पहुंची है।"
"सेन साहब···"
"आप प्रवीर कह सकती हैं। और अगर आपको एतराज न हो तो मैं अ
ाना कहा करूं ?"
"मुझे कोई एतराज नहीं।"

शाहाना से प्रवीर की वह पहली मुलाक़ात थी। उसके बाद मुश्किल तीन बार वह उसके साथ प्रेस-क्लब चली गई थी और सैम साहब ने आव ाव, झट उससे जवाब-तलब करने लगे।

"कहां हैं आप ? इतनी देर से मैं ही बक-बक किए जा रहा हूं !" सैम ने
शाहाना सजग हो गई।

"आप कुन्तल मेहता के बारे में कह रहे थे !" उसने मुस्तैदी दिखाई। क
के मुसकुराई भी, "आप उनके घर गए, फिर?"

"गया न···बच्चे शायद स्कूल गए थे। नौकरों को बाजार भेज दिया
रूम में ले गई। खिड़की-दरवाजों का परदा ठीक करने के बाद उसने
ार दिया। झीनी-सी नेग्लिज पहन रखी थी। लेसदार पैंटी, बूटेदार ब्रा·
जर आ रहा था···। मैंने कहा, इसे उतारो तो छुई-मुई होने लगी, ध
मी।"

शाहाना चुप रही जैसे सुनने को कुछ बाकी रह गया हो।

"नाप आया उसे भी···" सैम साहब ने समापन किया।

दांतों के नीचे बालू के कुछ कण आ गए कहीं से।

"चूमने लगा तो ऐसे निढाल हुई, जैसे पुरुष के आगोश में पहली बार
। आंखें मूदीं तो अंत तक मुदे रही। चलते समय मैंने ही उसे कपड़े पह
ठाने लगा तो फिर चिपट गई। मैंने कहा, 'बेबी, मुझे नौकरी करनी है, जाने
ब तक दुबारा आने का वायदा नहीं किया, उसने आंखें नहीं खोलीं।"

"अपना आदर्श पुरुष उन्होंने आपमें पा लिया होगा।"
"आदर्श-वादर्श का मोगालता नहीं है मुझे। आदर्श कुछ होता भी नहीं। एक
र है जब चढ़ जाता है तब उसका उतरना भी जरूरी होता है।"
"एक दिन आप किसी बनी-ठनी जी की बात भी तो बता रहे थे?"
"वह बेचारी बड़ी दुखी जीव है। पति किसी कंपनी में इंजीनियर है। पैंतीस
कर गई है, कोई बाल-बच्चा नहीं हुआ अभी। वैसे हुनर वाली औरत है--
ाई-बुनाई, खाना बनाने में माहिर है; खिलौने इतने सुन्दर बनाती है कि लगता
ोल पड़ेंगे अभी। एक दिन उसके घर भी गया था। ऐन-फ्रेंच से चिकनी-चुपड़ी
ार हो रही थी···"
शाहाना को वितृष्णा हुई। औरत जात पर फिर उसे शर्म आई। आखिर इस
आदमी में क्या खास बात है कि उसपर औरतें जान छिड़कती रहती हैं···
'कुर्सी···माई डियर कुर्सी···कुर्सी हो तो औरत-मर्द का भेद मिट जाता है।
े ढंग से दोनों परवान चढ़ते हैं,' एक दिन बहस हो रही थी इसी विषय पर तो
ने मेज पर मुक्का मारते हुए कहा था।
वह सोचने लगी, एक से मिलकर हर दूसरी के सामने वह रति-पुराण खोल
है। रस ले-लेकर पहली के किस्से सुनाता है। सब एक-दूसरे के बारे में जानती
र भी चली आती हैं चार-चार घंटे लगातार केबिन की कुर्सियां तोड़ने। न
कौन-सा कृष्ण-मंत्र यह फूंक देता है कि हर ढफली से एक ही राग निकलने
ा है।
सैम देखने-सुनने में बुरा नहीं। अच्छा कद, अच्छी सेहत। सबसे मिलता है
से। तारीफों के पुल बांधकर पहले आत्मविश्वास जगाता है, सौंदर्य-चर्चा
ा है। फिर जमकर उपेक्षा की एक लात जमाता है कि सामनेवाला चारों
चित गिरे और उसे यह भी पता न चले कि लात किसकी थी। अपने सौंदर्य,
फों के नशे में खो जाए, बेहोश रहे···लेकिन मात्र इतनी बात से कोई औरत
मर्द पर निछावर हो जाती है? शाहाना की समझ में यह बात कभी नहीं
।
एक बात उसके मन में साफ हो गई थी कि कॉलम चलाने के लिए सैम साहब
तुष्ट रहना बेहद जरूरी था। और उनसे खुद को बचा ले जाने के लिए
ो था उनकी रूमानी कहानियां, उनके पौरुष के किस्से गीता-रामायण की

तरह ध्यान से सुने जाएं। सुनने का धैर्य तब तक बरकरार रहे जब तक बता
वाला खुद ही न चुक जाए। अगर वह कॉलम छोड़ देने की स्थिति में होती
निस्संदेह उसने सैम साहब को मुंह न लगाया होता। उसे खुद को स्थापित कर
था, दामन बचाकर निकलना भी था। बहुत सोच-समझकर उसने कुछ त
किया था, जिसका पालन वह करती आ रही थी। सैम के किस्से ध्यान से म
लगाकर सुनना, स्पर्श-सुख के लिए उन्हें अपनी जगह से आगे न बढ़ना पड़े इसलि
आते ही उनसे हाथ मिला लेना। इस काम के लिए अकेलेपन की जरूरत नहीं थ
हाथ वह सबके सामने भी मिला लेती थी। कभी-कभी सैम उसके हाथ को झट
भी देता जिसे वह सह लेती थी। अकेले में कभी उसका हाथ वह होंठों से लगा लेत
कभी अपनी आंखों पर ले जाकर दबा देता। ऐसे हर मौके पर शाहाना मुसकु
पड़ती।

'रोमांस ब्रिटिश स्टाइल' कहकर वह अपना हाथ धीरे से छुड़ा लेती।

उस दिन जब वह घर जाने के लिए उठी तो मन-ही-मन डर रही थी कि क
अपना उभरा हुआ सीना लेकर सैम साहब उसे विदा करने आगे न आ जाएं
उनकी लपकती हुई बांहें उसे अपने घेरे में लेने के लिए मचलने न लगें। लेकि
ऐसा कुछ नहीं हुआ। आश्वस्त होकर वह केबिन का दरवाजा खोलने लगी कि सै
ने उसे वापस बुला लिया।

"किसलिए खुद को सहेजकर रखा है शाहाना? जिन्दगी खुदा जीने
लिए देता है...सोचना इस विषय पर।" उन्होंने कहा।

"ओ० के० बॉस!"

"अगर यह अमानत किसी और के लिए सहेजकर नहीं रखी है तो इसे बाह
निकालो। चलो, किसी दिन चलते हैं कहीं।"

"अगली बार बात करेंगे।"

"चलती हो तो पीछे से देखकर एक गनगनाहट भर जाती है सारे जिस
में...माईगॉड!"

"थैंक्यू बास! थैंक्यू फॉर द कॉम्प्लीमेंट।"

"तुम्हें सुन्दर तो नहीं कहा जा सकता, लेकिन एक सलोनापन है तुम्हारे चेह
पर। मेरी तरह के जेहनी लोग तुम्हारी ओर जरूर खिचेंगे।"

"थैंक्यू ऑल द सेम।"

सैम को कुछ कहने का मौका दिए बगैर शाहाना केबिन से बाहर हो गई। खुली हवा में चन्द सांसें जल्दी-जल्दी लेकर वह तरोताजा हो जाना चाहती थी।

२

पांच वर्ष पहले शाहाना जब गोरखपुर से दिल्ली आई तो उसे एक अदद नौकरी की सख्त जरूरत थी। नौकरी की तलाश में उसने कोई कसर रखी भी नहीं। राजधानी की सड़कों पर बेवक्त घूमी, अखबारों के विज्ञापन देख-देख, न जाने कितनी संस्था, संस्थानों, दफ्तर-एकेडेमियों के द्वार खटखटाए लेकिन एक अदद नौकरी का ऐसा इंतजाम न हो पाया जो उसे कबूल होता। नौकरी के बाजार में अनुभव ाहिए और वह थी कालेज से निकली हुई नई-नई ग्रेज्युएट। कौन पूछता उसे ? ल दो महीने इस तरह बिताकर उसने नौकरी की जगह काम ढूंढ़ना शुरू किया।

सवाल उठा, किस तरह का काम उसे ढूंढ़ना है ? किसीको पढ़ाना उसके वश ा नहीं। सुलेमान मौसी की टीचरी बचपन से नापसंद करते-करते कहीं उसने हृद कर लिया था कि भूखों मरने की नौबत भी आई तो टीचरी नहीं करेगी। ड-एजेंसियों का माहौल इतना दमघोटू लगा कि उसकी हिम्मत टूट गई। शहर नजान, परिचय के नाम पर केवल पाराशर-परिवार, जिसने तीन सौ रुपये महीने र खाना और सोने के लिए एक बिस्तर देना कबूल कर लिया था। उन्हींकी बेटी भा के साथ वह रेडियो में अपनी आवाज़ भी दे आई थी।

विद्यार्थी-जीवन से वह गोरखपुर रेडियो से जुड़ी थी। युवा-जगत् के लिए गातार प्रोग्राम देती रही थी। एक बार यहां रेडियो में चांस मिल जाए तो संभाल गी, इतना वह जानती थी, लेकिन चांस मिलने में भी तो समय लगता है।

काम ढूंढ़ने का निर्णय लेने के बाद शाहाना ने खुद को छः महीने का समय या। पास की पूंजी इससे ज्यादा के लिए थी भी नहीं। उसने तय कर लिया था : इस बीच अगर वह कोई व्यवस्था न बना पाई तो दिल्ली छोड़ देगी। कहां ाएगी, क्या करेगी, यह अभी सोचा नहीं था, शायद इसलिए कि कोई-न-कोई रास्ता ाल जाएगा, ऐसा उसका विश्वास था या इतने आगे की बात सोचने से उसकी

वर्तमान की योजनाएं भी खलत-मलत होने लगती थीं इसलिए। एक आत्मविश्व
ही था जो मिल गया था विरासत में, पता नहीं अनजान माता-पिता से या उ
भी प्रिय सुलेमान मौसी से। जो पूंजी पास में थी, वह कहां से आई, कैसे आई
चक्कर में न पड़कर उसने सही इस्तेमाल की बात सोची और इसमें वह सफल हुई

यह बात है पांच वर्ष पहले की। अनजाने ही उसने फ्री-लांसिंग की दुनिया
कदम रखा था। आज वह दावा करती है कि एक जमी हुई फ्री-लांसर है और थ
में परसकर भी अगर कोई नौकरी उसके सामने रखी जाए तो अपना काम छो
से पहले वह दस दफा सोचेगी।

इस मुल्क में ऐसा नहीं होगा, वह जानती है। शुरू के तीन वर्ष सड़कों
भटकने के दौरान उसने बड़े-बड़े डिग्रीशुदा लोगों को एक मामूली नौकरी के लि
सिर पटकते देखा था। कई बार उसे ग्लानि भी हुई। उसने अपने-आपसे बा
बार पूछा, खुद को इतना नीचे गिराकर नौकरी ढूंढ़नेवाले कोई काम क्यों न
ढूंढ़ते'''नौकरी और काम के बीच का फासला मिटा क्यों नहीं देते ?

'आखिर नौकरी किसीको क्या दे देगी ?' अपने-आपसे तर्क करती।

'निश्चित रकम, जितना भी मिलना होगा, समय पर मिल जाएगा।' म
कहना।

'अगर जमकर काम किया जाए तो निश्चित रकम यहां भी मिल सकती है

'कहां है काम ?'

'ढूंढ़ते रहे तो मिल जाएगा।'

'उसके लिए खास योग्यता चाहिए'''जान-पहचान चाहिए'''

'यह सब नौकरी के लिए चाहिए, काम के लिए नहीं।'

'नौकरी में सुरक्षा है। एक बार मिल जाए तो जिन्दगी भर के लिए निश्चित
और इसमें मेहनत बहुत है'''

उन्हीं क्षणों में किसी दिन वह मेहनत करने पर आमादा हो गई थी। तब, उस
तय कर लिया था, वह नौकरी नहीं, काम ढूंढ़ेगी। नौकरी ढूंढ़नेवालों की कतार
एक नाम तो कम हो जाएगा। और वह काम ढूंढ़ने लगी थी।

'आदमी मेहनत करता रहे तो एक 'ब्रेक' उसे जरूर मिलता है,' कहीं पढ़ा
उसने और जाने कैसे यही एक वाक्य उसके ज़ेहन में अक्स हो गया था।

प्रभा की मदद से उसे कुछ प्रोग्राम मिल गए थे रेडियो में। बेरोज़गारी

'आवर गेस्ट टुनाइट' में किसीसे बातचीत करनी थी। जिसे बातचीत करनी ो, वह पहुंच नहीं पाया था। गेस्ट के पास वक्त नहीं था कि रिकॉर्डिंग होती। ोग्राम 'लाइव' जाना था। शाहाना अपनी रिकॉर्डिंग करवाकर ड्यूटीरूम में बैठी ो। चेक देनेवाला कहीं चला गया था, प्रोड्यूसर, जिसके साथ वह रिकॉर्डिंग रवाकर निकली थी, बाहर किसीसे बात करने लगी थी।

"शाहाना, तुम्हें कहीं जाना तो नहीं इस समय?" लौटकर प्रोड्यूसर ने पूछा।

"नहीं, क्यों..."

"दरअसल, हमारी एक टॉकर आई नहीं है, स्टाफ में ऐसा कोई है नहीं, एक ोग्राम और कर दो हमारे लिए..."

"लेकिन मैंने तो अभी-अभी रिकॉर्डिंग करवाई है," शाहाना को शुरू-शुरू में ताया गया था कि महीने में एक यूनिट से एक ही प्रोग्राम मिल सकता है।

"उसको तो हम पंद्रह दिन बाद प्रसारित करेंगे। कोई अड़चन आई तो और ागे खिसका देंगे। यह प्रोग्राम 'लाइव' है, टाला नहीं जा सकता।"

"कब करना है?"

"आज ही, अभी दो घंटे बाद।"

"क्या है' प्रोग्राम'?"

"एक साहब को इंटरव्यू करना है 'आवर गेस्ट टुनाइट' में। उसका बॉयोडाटा तुम्हें दे देती हूं। आओ मेरे साथ। लाइब्रेरी में बैठकर उसका परिचय तैयार कर , तीन-साढ़े तीन मिनट का। उसके फील्ड से संबंधित कुछ सवाल बना लो। त प्रोग्राम बीस मिनट का है। बाद में मैं देख लूंगी...कुछ चाय-वाय पियोगी?"

"शुक्रिया...फिलहाल चाय की जरूरत नहीं।"

शाहाना लाइब्रेरी में पहुंचा दी गई। उसने पूरा एक घंटा लगाकर परिचय ार किया, सवाल बनाए जिसमें प्रोड्यूसर साहिबा ने कुछ हेरा-फेरी करवाई। ग्राम जब होने लगा तो किसीको मालूम नहीं था कि शाहाना एक मामूली ग्रेज्यु- : है और ब्राडकास्टिंग का कोई अनुभव नहीं है उसके पास। गेस्ट, सरकारी ़कमे का एक ऊंचा आदमी था जो अभी-अभी तीन महीने की विदेश-यात्रा से टा था। जहां तक शाहाना का सवाल था, उसकी आवाज और आत्मदृढ़ता का

प्रश्न था, आवाज़ नई पर अंदाज़ दिलकश था, पूरे आत्मविश्वास से बोल रही थ
आकर्षण के लिए किसीको और क्या चाहिए ?

इत्तिफ़ाक ही था कि प्रोग्राम बहुत अच्छा गया। प्रोड्यूसर ने रिस्क लिया
किसी नये व्यक्ति को एक महत्त्वपूर्ण काम देकर, यह बात शाहाना को बहुत
में पता चली। वह आज भी उस प्रोड्यूसर के प्रति आभारी है, क्योंकि
माध्यम बनी उस 'ब्रेक' का, जो उस कार्यक्रम के जरिये शाहाना को मिला।

स्टेशन डायरेक्टर को वह कार्यक्रम बहुत पसंद आया। पहला सिलसिला
से शुरू हुआ था। आने वाले 'आवर ग्रेस्ट टुनाइट' प्रोग्रामों में शाहाना को
याद किया गया। पहले किसी-न-किसी के एवज में खानापूरी के लिए। फिर
लिए कि वह पूरे आत्मविश्वास से बोलती है, उसके कुछ पूछने का अंदाज़
अच्छा रहता है, हंसी-मजाक की फुलझड़ियों के बीच वह गम्भीर-से-गम्भीर
ऐसे पूछ जाती है कि बताने वाला उलझन में नहीं पड़ता।

शाहाना समझ गई थी, उसे वह 'ब्रेक' मिल गया है जो जिन्दगी में एक
सबको मिलता है। उसने लगन से काम किया। रेडियो स्टेशन पर उसका
याद रखा जाने लगा।

उन्हीं दिनों उसकी एक मुलाक़ात स्टेशन डायरेक्टर से तय कर दी गई।
उससे मिलना चाहते थे।

कितनी तैयारियां की थीं शाहाना ने उस एक मुलाक़ात की ! कितना-कित
डरी थी !

और जब वह दिन आया।

"नाम की तरह तुम्हारी आवाज भी बहुत अच्छी है।" एक प्याला कॉफ़ी
स्टेशन डायरेक्टर उससे कह रहे थे।

"थैंक्यू सर !"

"पूरे आत्मविश्वास से बोलती हो।"

शाहाना चुप रही।

"तुम्हारी भाषा बड़ी अच्छी है, लच्छेदार। एम० ए० किया है ?"

"नहीं सर, मैं ग्रेज्युएट हूं।"

"प्रारम्भिक शिक्षा ?"

"वहीं एक कान्वेंट में मिली थी।"

"तभी। दरअसल सही अंग्रेजी बोलना बहुत कम लोगों को आता है। बड़े-बड़े लेखक-पत्रकार उच्चारण की गलती कर जाते हैं।"

"..."

"तुम्हारी आवाज़ रेडियो जेनिक है!" उन्होंने शाहाना को अच्छी आवाज़ के लिए बधाई दी।

शाहाना ने आभार प्रकट किया। स्टेशन डायरेक्टर उसे रेडियो कैरियर के लिए कुछ टिप्स देते रहे। फिर उसे भविष्य की शुभकामनाएं देकर विदा कर दिया।

शाहाना की आशंकाओं के खिलाफ यह मुलाक़ात सपाट रही। जितने क़िस्से उसने पढ़-सुन रखे थे, उनके खिलाफ स्टेशन डायरेक्टर बड़ी शराफत से पेश आए। देर तक वह सोचती रही, आखिर किसी व्यक्ति, व्यवसाय को लेकर अफवाहें क्यों फैल जाती हैं? अच्छी बातें इतनी सुस्ती से और चटपटी बातें इतनी तेज़ी से क्यों भागती हैं? जब अच्छे-बुरे दोनों तरह के लोग हैं इस दुनिया में तो दोनों का प्रचार-प्रसार बराबर क्यों नहीं होता? फिर मन में आया, शायद पहली मुलाक़ात के बारे फेंके जाते हैं। इस खयाल के साथ ही इस विषय को लेकर परेशान होना उसने बंद कर दिया।

आनेवाले कुछ महीनों में स्टेशन डायरेक्टर बड़े मेहरबान साबित हुए। कुछ आवासों में फोन करके उन्होंने शाहाना को भेजा, जहां उसे काम मिल सकता था। 'आवर गेस्ट टुनाइट' का प्रोग्राम एक सप्ताह बीच करके उसे नियमित रूप से मिलने लगा।

एक इतिफ़ाक और आया उसके रास्ते में। एक विदेशी 'एन्थ्रोपालिजिस्ट' आए, 'आवर गेस्ट टुनाइट' में। पिछली मुलाक़ातों की तरह यह मुलाक़ात भी प्रसारित की गई।

इसके तीसरे दिन स्थानीय दैनिक 'राइज' से उसे एक खत मिला, रेडियो के पते पर। उससे किसी दिन आफिस में मिलने का आग्रह किया गया था। नीचे

पालिजिस्ट से हुई बातचीत के आधार पर एक लेख मांगा, तत्काल।

शाहाना आंतरिक रूप से सिहर उठी। यह सिहरन खुशी की थी, लेकिन उस दिन, उसी क्षण अपनी खुशी ज़ाहिर न करना भी वह सीख गई।

लेख तैयार करने के लिए उसे कुल चौबीस घंटे का समय दिया गया।

बातचीत का मसौदा उसके पास था। जरूरत थी कुछ संदर्भों की। विषय की थोड़ी-सी जानकारी, कुछ सामयिक पत्र-पत्रिकाओं, अखबारों के रविवासरीय परिशिष्टों से मिल सकती थी...ताकि यह पता चल जाए कि लेख कैसे लिखा जाता है। यह सब उसे किसी अच्छी लाइब्रेरी से मिल सकता था। प्रभा के साथ वह सप्रू हाउस पहुंची। आठ घंटे की मगजपच्ची के बाद कुछ बना तो, लेकिन क्या? यह उसकी समझ में नहीं आया।

एक बार हिम्मत टूटने भी लगी कि कहां फंस गई लिखने-लिखाने के चक्कर में? लेकिन धुन की पक्की थी इसलिए खींच ले गई।

यह भी एक इत्तिफ़ाक था कि लेख पसंद कर लिया गया। पहली बार 'राइज' के संडे पेज पर अपना नाम देखकर उसे लगा, आसमान के तारे उसके आंचल में उतर आए हैं, वह उन्हें संभाल नहीं पा रही है...अपनी खुशी किसीसे बांटने के लिए वह तड़प उठी। भागी-भागी प्रभा के पास गई, लेकिन प्रभा का मूड बहुत खराब था। शायद पति से उसका झगड़ा हो गया था। शाहाना वापस आ गई। उस रात देर तक वह अपनी जिन्दगी, अपने अकेलेपन पर सोचती रही। उसे पहली बार इस बात का एहसास हुआ कि एक की खुशी दूसरे के लिए बेमानी भी हो सकती है।

अब तक उसे सिखाया गया था, दुख अकेले झेलने के लिए होता है, लेकिन खुशी आदमी को बांट लेनी चाहिए। उस दिन उसे लगा, अपना सुख-दुख निहायत अपना होता है, उसपर किसीकी परछाई नहीं पड़नी चाहिए।

'राइज' की प्रति अपने हाथ में लिए-लिए जाने कब तक अपना छपा हुआ नाम देखती रही, फिर सो गई।

शाहाना के अंधेरे भविष्य की एक खिड़की और खुल गई। 'आवर गेस्ट टु नाइट' की मुलाक़ातों को वह भुला सकती है, यह बात उसकी समझ में आ गई।

आनेवाले कुछ दिन उसने स्थानीय पत्र-पत्रिकाओं का चक्कर काटने में बिताए। सम्पादकों से मिली, अपना प्रस्ताव रखा, कुछ राजी हुए, कुछ ने टाल दिया। य

भी एक अनुभव था। शाहाना ने सहेजकर रख लिया।

दूतावासों से संपर्क बना लिया था, जल्दी ही कुछ काम वहां से भी मिलने वाला था। काम की तलाश में घूमते-घूमते शाहाना ने काम मांगने का एक तरीका निकाल लिया था। जहां भी जाती, अपना परिचय देती, कुछ विषय सामने रखती। पूछती अगर किसीकी दिलचस्पी प्रस्तावित विषयों में है''न किसी तरह का लाव-लगाव, न भूमिका। अगर किसीको कुछ पसंद आता तो बात आगे बढ़ाती वरना वापस''फिर दस्तक देने के लिए दूसरा दरवाजा ढूंढ़ती।

उसका नाम अधिकतर जगहों पर अपरिचित नहीं था लोगों के लिए। वह समझती थी कि काम मांग रही है, भीख नहीं मांग रही। आखिर जो लोग कुर्सियों पर बैठे हैं दूसरों पर एहसान जताने की स्थिति में, उन्हें भी तो कभी काम की तलाश रही होगी। उन्होंने भी तो किसीका एहसान ढोया होगा, यह तो एक परंपरा है, आज एक व्यक्ति दूसरे के लिए कुछ करता है, कल दूसरा तीसरे के लिए करेगा और यह सिलसिला चलता रहेगा जब तक दुनिया चलेगी। इसमें हया-शर्म की गुंजाइश कहां थी, एहसान भी कहां था? जिन्हें काम करवाना है, उन्हें कोई-न-कोई काम करनेवाला चाहिए। काम की क्षमता रखनेवाले हर व्यक्ति का हक काम पर बनता है, फिर उसे मौका क्यों न मिले? तब उसे निश्चित रूप से नहीं मालूम था कि काम मिलने के बदले कुछ अतिरिक्त देना भी पड़ता है। हो सकता है, यह लेन-देन का चक्कर किन्हीं कमजोर क्षणों में किसी गरज़मंद ने चला दिया हो और तब यह नियम बन गया। कोई और आपके लिए कुछ करता है तो उसका बदला आपको वहीं-का-वहीं चुकाकर आगे बढ़ जाना पड़ता है। पीछे मुड़कर देखने-वाले या सिलसिला जोड़कर अपेक्षा रखनेवाले बेवकूफ माने जाते हैं।

'राइज' के अतिरिक्त दो स्थानीय पत्रिकाओं में शाहाना को कुछ काम मिला। उसकी व्यस्तता बढ़ने लगी। प्रभा के घर पर मिला हुआ बिस्तर उसके लिए पर्याप्त नहीं था। उसे एक कमरे की जरूरत महसूस हुई, जहां बैठकर वह पढ़-लिख सके। अपने हिसाब से जागे-सोए। जब तलब हो, एक प्याला चाय-कॉफ़ी बना ले। अपने हिसाब से खाए-नहाए''शाहाना ने तय किया, तीन महीने इसी तरह काम चलता रहा तो वह प्रभा से बात करके अलग एक बरसाती ले लेगी।

ी, शाम को प्रभा उसे आकर ले जाती। दोनों कॉफ़ी हाउस में बैठतीं, टी
स आबाद करतीं। कभी प्रभा नहीं आ पाती तो शाहाना अकेले फैमिली केबिन
ठ जाती। एक प्याला कॉफ़ी के साथ खुली आंखों चारों ओर का नजारा करती।
ा खामोशी में बीत जाता ···

स्टेशन डायरेक्टर में उसे गॉड फादर की इमेज दिखाई पड़ी। नियमित रूप
ह उनसे पन्द्रह-बीस दिन में एक बार मिलती रही। कामों के नये संदर्भ, परि-
के नये सूत्र उसे मिलते रहे।

उन्हींमें से एक थे अनवर साहब। देखते ही शाहाना पर जान छिड़कने लगे।
ली मुलाक़ात में ही तीन घंटे उसे केबिन में बिठाए रखा। स्टेशन डायरेक्टर
० वासु से मिले आश्वासनों के नैतिक बल पर वह अनवर साहब के संस्मरणों
झटका बर्दाश्त करती रही···

"आदमी बुरा नहीं है, थोड़ा मुंह का कच्चा है," उन्होंने कहा था, "उसे ठीक
हैंडिल करना। मेरे बाद वही बैठेगा इस कुर्सी पर···"

शाहाना बड़े उत्साह से मिली थी। 'वासु साहब की कुर्सी पर बैठनेवाला बुरा
हीं हो सकता' के अंदाज में। और पहली ही मुलाक़ात के बाद बाहर निकली तो
सका सिर घूम रहा था। उस दिन उसने तय किया कि काम मिले या भाड़ में
ए, दुबारा वह अनवर साहब की शक्ल नहीं देखेगी।

लेकिन एक दिन प्रोग्राम खत्म करके जा रही थी कि प्रोड्यूसर ने उससे कहा,
नये डायरेक्टर तुमसे मिलना चाहते हैं।"

"वासु साहब चले गए?"

"हां, उन्हें गए हफ्ता हो गया।"

शाहाना को एक झटका लगा, "सर बिना बताए चले गए!" वह अपने-आपसे
ोली। लेकिन इधर कुछ दिनों से वह खुद भी तो नहीं मिल पाई थी।

उनसे मिलने के लिए शाहाना का मन मचल पड़ा। न जाने किन क्षणों में
सके मन में एक विश्वास जन्मा था कि काम के बाजार में आनेवाली कठिनाइयों
नजात पाने में वासु साहब उसकी मदद कर सकते हैं। उसने तय किया, यहां से
ाते समय वह उनके घर का पता ले लेगी और जल्दी ही जाकर उनसे मिलेगी।
फ़िलहाल तो उसे अनवर साहब से मिलना था।

की तलाशी ली—एनासिन-एस्प्रो कुछ है तो···लेकिन उसकी जरूरत नहीं पड़ी। वक्त ने उसका साथ दिया। उसके पहुंचते ही डायरेक्टर जनरल का फोन आया और माफी मांगते हुए अनवर साहब को जाना पड़ा। एक मिलाजुला एहसास लेकर शाहाना वापस आ गई। अगली मुलाक़ात उसी दिन तय हो गई थी और जब शाहना मिली तो वह मुकाबले के लिए भली प्रकार तैयार थी।

अनवर साहब के रियाजी जुमलों को सच मानकर मन का तनाव बढ़ाने की जरूरत नहीं थी, रूमानी चाशनी में ईंट का जवाब पत्थर से देना था।

"पहली मुलाक़ात' में ही बहुत कुछ सीखा था सर, आपसे। आपको तो मैं अपना उस्ताद मानती हूं···" कुछ कह-सुनकर अनवर साहब हावी हों, इससे पहले ही शाहाना ने मोर्चा संभाल लिया।

"सर-वर का चक्कर छोड़ो, मैं तो अपने टॉकरों को अपना दोस्त मानता हूं। मुझे मेरे नाम से पुकारा करो।" शाहाना की खिलती मुसकुराहट पर अनवर साहब हजार जान से कुर्बान होकर बोले।

"ओ० के० सर···सॉरी···अनवर···" शाहाना को ये चार अक्षर दोहराने में पता नहीं कितनी ताकत लगानी पड़ी, लेकिन जब दोहरा चुकी तो जैसे कोई बहुत बड़ा 'लम्प' गले के नीचे उतर गया। वह फिर जैसी-की-तैसी हो गई।

उस दिन की बातचीत वह लगातार सजग रहकर 'हां-हूं' के साथ सुनती रही। चलने लगी तो शुक्रगुजार हुई।

"आती रहना। कुछ आगे भी डिसकस करेंगे।"

"जरूर।"

"आई थिंक हाई ऑफ यू!"

"शुक्रिया अनवर साहब! मुझे खुशी है कि मेरे बारे में आपकी राय इतनी अच्छी है। ऐसी सलाहीयत आजकल देखने में नहीं आती।"

"मुझे उम्मीद है, कुछ और नये कार्यक्रमों में तुम्हारा सहयोग हमें मिलेगा?"

"आपके स्टेशन को मुझसे शिकायत नहीं होगी। फिर मुलाक़ात होगी, खुदा हाफिज···"

अनवर को दुबारा कुछ कहने का मौक़ा दिए बग़ैर वह केबिन से बाहर आ

"अगली वार," केबिन के अन्दर झांककर उसने कहा और दरवाजा वन्द कर
गा।

अनवर साहव कुछ बुदबुदाए जरूर लेकिन शाहाना ने सुना नहीं। न ही उसके
में कोई उत्सुकता थी।

उस शाम वह फिर देर तक अनमनी रही। वासु साहव से मिलकर मन
नी आस्थाएं डगमगाईं। एक गुमान पैदा हुआ था कि जेहन के वल पर आदमी
पनी जगह वना सकता है, वह वेमानी लगा। उसने अपने-आपको समझाया
नवर जैसे ही लोग अपनी-अपनी शाखों पर बैठे हैं और उन्हींके बीच से गुजरना
उसे।' पुरुष की एक सुन्दर-सुघड़ 'प्रोटेक्टर' की तसवीर जो अपने मन में व
हेजकर रखना चाहती थी, उसमें कहीं दरार पड़ गई।

कुछ परेशानियां जेहन में पैदा हुईं। मन में वितृष्णा जागी। तजुर्बे की गुर
ान थी, सव कुछ नागवार गुजरा। कुल दो दिन लगे अपने-आपको संभालने में
कर अनवर साहव और उन जैसी कई और हस्तियों को उनकी उपयुक्त जग
ठा देने का दम-खम लेकर शाहाना उठ खड़ी हुई।

उसका नाम चूंकि पत्रिकाओं से जुड़ गया था इसलिए रेडियो में उसकी पू
हले से ज्यादा होने लगी। हिन्दी-उर्दू, दो यूनिटों से उसके नाम वुलावा आया
ह खुशी-खुशी गई। जो भी उससे मांगा गया, लिखकर दिया उसने, वहस-मुव
हसे में हिस्सा लिया, भेंटवार्ताओं पर आधारित प्रोग्राम किए। कुछ तुकवन्दिय
ी कर डालीं।

पता नहीं किसने उड़ा दिया था कि वह वासु साहव की रिश्तेदार है। व
रिटायर जरूर हो गए थे लेकिन प्रभावशाली थे। हाथी मरकर भी सवा लाख क
होता है। मंत्रियों के वीच उठना-वैठना था उनका। जिसका कोई काम कहीं अटक
हो, वह उनसे वनाकर रखना चाहता था, उनके लिए कुछ करना चाहता था। वै
ी उनसे वनाकर रखना वहुतों के लिए भला था। और इस अवसरवादी नीति
शाहाना का फायदा होता चला गया।

एक दिन अनवर साहव फिर टकरा गए। दरअसल, रेडियोवालों ने ही कु
प्रेसवालों को वुला रखा था। 'आमने-सामने' प्रोग्राम में कोई मिनिस्टर आ र
था। प्रेसवालों को उससे वातचीत करनी थी। शाहाना को भी उसमें फ्रीलां
पत्रकार की हैसियत से शामिल होने के लिए कहा गया था।

"मिलीं नहीं उसके बाद ?" भीड़ में फिसलते हुए अनवर साहब शाहाना के पास आ गए थे, "कैसी हो ?"

"दुआ है अनवर साहब, आपके मिजाज कैसे हैं ?"

अनवर साहब और पास आ गए। कान के पास मुंह ले जाकर फुसफुसा "कोई गुस्ताखी हो गई मुझसे कि खफ़ा हो गई ?"

"अरे नहीं अनवर साहब, दरअसल, मैं कहीं बाहर चली गई थी।" झू बोलना फिर बड़ा आसान लगा।

"कल आओ, नई सीरीज चलाना चाहते हैं, कुछ डिसकस करेंगे।"

"कल तो नहीं हो सकेगा, कल बहुत काम है, इस हफ्ते नहीं।"

"तो अगले हफ्ते सही।"

"उससे अगले हफ्ते।"

"बहुत देर हो जाएगी।"

"आपको जल्दी है ?"

"कितने दिन हो गए तुमसे मिले, बात किए।"

"ओ···आप तो जानते हैं अनवर साहब, मैं फ्री-लांसर हूं। और यह नौकरी चौबीस घंटेवाली होती है। जितना कुआं खोदेंगे, उतना ही पानी मिलेगा। इन दिनों काम थोड़ा ज्यादा आ गया है।"

"बदल गई हो।"

"बदलना दुनिया का चलन नहीं है ?" शाहाना मुसकुराई।

"दोस्तों के लिए थोड़ा वक्त तो निकालना चाहिए।"

"थोड़ा नहीं, आपकी दोस्ती ज्यादा वक्त मांगती है अनवर साहब···और बेअदबी माफ करें, मेरे पास वक्त बहुत कम रहता है।"

वह मुलाक़ात अनवर साहब से आखिरी मुलाक़ात थी। इसके बाद उस यूनिट का कांट्रैक्ट शाहाना के पास नहीं आया। 'आवर गेस्ट टुनाइट' किसी और को दे दिया गया। एक सिलसिला टूटने का धक्का तो लगा लेकिन कहीं राहत भी मिली।

फिर बहुत दिनों बाद उसने सुना, अनवर साहब की बदली हो गई।

बासु साहब से वक्त लेकर वह उनके घर पर मिली, फिर अकसर मिलती रही।

ी बार सोचकर तो गई थी कि बहुत-सी बातें करेगी। मन का सारा गर्दोगुबा
ाल देगी लेकिन वहां के शांत-स्निग्ध वातावरण में उसका कुछ भी कहने व
नहीं हुआ।

"मुझे पता था, तुम एक दिन मिलने जरूर आओगी।" वासु साहब उसे देख
मुसकुरा पड़े थे।

"आप तो चुपचाप चले आए सर! मुझे तो आपके आने के एक सप्ताह ब
ा चला।"

"तो क्या मैं आने से पहले बाजे बजवाता, अखबार में छपवाता?" बासु साह
हाना को देखकर खुश नजर आए। उसे अपनी स्टडी में ले जाकर बैठाया
नी पत्नी से उसका परिचय कराया।

नारायणा का दो बेडरूमवाला यह डी० डी० ए० फ्लैट शाहाना को स्वर्ग-
ा। वासु-दम्पति के दो बच्चे बड़े होकर अपनी जिन्दगी अलग-अलग जी रहे थे
ड़की कलकत्ते और लड़का बम्बई में था। जिन्दगी के चौथे चरण में साथ-साथ
ी पूरी जिन्दगी का हिसाब लगाते-लगाते बासु-दम्पति ऊब चुके थे। उनके य
ाने-जानेवालों की कमी नहीं थी, लेकिन जो आते, वे गरजमंद लोग थे। शाहा
जी हवा के एक झोंके की तरह उनके घर आई थी। उस दिन चार घंटे बिता
ब वह वापस चली तो उसे लगा, इस घर के शांति-सुख को ऊब की घुटन से बच
लिए ताजी हवा का झोंका बनकर उसे यहां बार-बार आना होगा। फिर क
ही। उसके मन की बात इतनी जरूरी नहीं थी कि यहां की पवित्रता भंग
ाए।

उस दिन मौसी बहुत याद आई। बचपन का दो कमरों वाला घर याद आ
ोगिया साड़ी का पल्ला सिर पर डाले खुरपी लेकर खोद-खाद करती सुलेम
ौसी की तसवीर बार-बार आंखों में उभरी।

"आदमी को खाली कभी नहीं बैठना चाहिए।" वह कहा करती थीं।

"आराम भी तो जरूरी होता है मौसी!" वह प्रतिवाद करती।

"पूरी रात बिस्तर पर पड़े-पड़े क्या करती हो?"

"तब तो नींद आई रहती है।"

"आपको काम ढूंढने की बीमारी है।"

मौसी मुसकुरा पड़ीं :

"काम ही एक ऐसा दोस्त है शाहाना, जो दगा नहीं देता। सिर्फ वक्त की पूंजी मांगता है और तमाम जिन्दगी दिमागी परेशानियों से उबारे रहता है।"

शाहाना समझने लगी थी कि कितना टूटने के बाद मौसी इस नतीजे पर पहुंची होंगी जो उनके सामने यूंही आ गए थे। बिना किसी प्रतिवाद या जिद के शाहाना उनकी असलियत पहचानने लगी थी। तिल-तिलकर चुभनेवाले शूलों का दर्द, एक एक सांस पर उभरता बेगानापन, एक अजनबी दुनिया के अजनबी मोड़ पर खड़े होने का एहसास···कितना कुछ मौसी ने अकेले झेल लिया था। वह जिंदा होतीं तो शाहाना उनका हाथ थामकर खड़ी हो जाती। कहती, 'मौसी, अब तुम अकेली नहीं हो, मैं हूं तुम्हारे साथ···अपनी आंखों का अजनबीपन उतार दो। उनमें पहचान के चिराग जलाओ। हम नये सिरे से इस दुनिया को देखेंगे।'

लेकिन मौसी जहां थीं, वहां से कौन आता है? उसे अपने-आपपर हैरत होती --कहां तो मौसी से अलग होकर एक लमहा बिताने का एहसास भी उसके लिए भारी हुआ करता और अब उनको गए कितने वर्ष बीत चुके थे। वह जिंदा ही नहीं थी, अपने भविष्य की रूपरेखा भी उसने बना ली थी। काश, खुदा ने इस भरी दुनिया में एक मौसी उसकी झोली में रहने दी होती!

वह बी० ए० का इम्तहान दे चुकी थी। उसे नतीजे का इंतजार था। उसने मौसी से कह दिया था, वह आगे नहीं पढ़ेगी। मौसी को यह बात अच्छी नहीं लगी थी लेकिन उन्होंने कुछ कहा नहीं था। नतीजा निकलने पर वह शाहाना को एक घड़ी देना चाहती थीं। बाजार के कई चक्कर लगा चुकी थीं, उनकी पसंद की घड़ी नहीं मिल पा रही थी।

हॉस्टल में नौकर-चौकीदारों को छोड़कर सब चले गए थे। अकेली मौसी और शाहाना बची थीं। इनके पास जाने की कोई जगह नहीं थी। शामें मिसिस चैटर्जी के घर और बाकी समय हॉस्टल की वीरानियों में गुम रहना उनकी दिनचर्या बन गयी थी।

मौसी उस दिन चिलचिलाती धूप में लौटी थीं। पर्स में से कुछ निकालकर अलमारी में रखा। शाहाना ने पूछा तो टाल गई। और दिनों से अधिक खुश थीं। लेकिन शाम होते-होते जो सिरदर्द शुरू हुआ तो नौ बजे रात तक मौसी अचेत हो

ई। डाक्टर आए, मिसिस चैटर्जी आईं, उनके पति, बच्चे सबने शाहाना व
ाया। डाक्टर ने सलाह दी अस्पताल में दाखिल कराने की। मौसी को
ई थी।

तीसरे दिन मौसी ने आंखें खोलीं। उस समय शाहाना बैठी थी, बुझी-
ौसी का कलेजा फट पड़ने को हुआ। अगर उन्हें कुछ हो गया तो उनके जि
ह टुकड़ा किन हाथों में जाएगा? मौसी की आंखों में एकदम से गंगा-जमुन
ाई। उन्होंने कमजोर-सी आवाज़ में शाहाना को पास बुलाया।

शाहाना चौंक पड़ी।

"मौसी···" वह उनकी ओर झुकी, फिर जैसे कुछ याद आ गया हो।

"मौसी, मैं सिस्टर को खबर कर दूं, आपको होश आ गया है···
चलने के लिए उठी।

"अभी रुक जा शानू···यहां आ मेरे पास···"

शाहाना स्टूल खिसकाकर बैठती हुई मौसी के चेहरे पर झुकी।
अपने कमजोर हाथों से उसका सिर थामकर अपने सीने पर रख लिया
हाथ दहक रहे थे।

"या खुदा, मेरी इस बच्ची का खयाल रखना···" वह अपने-आप
रही थीं।

शाहाना ने अपना सिर उठाने की कोशिश की लेकिन मौसी
गिरफ्त भी उसके लिए बहुत ज्यादा थी। वह पड़ी रही उसी तरह।

"मैंने तेरे लिए कुछ किया नहीं शानू, तुझे कुछ भी न दे पाई···"

"मौसी···"

"कहीं जाने की कोई जरूरत नहीं बेटा! खुदा की रहमत हो तुझपर, र
मत रहे, यहीं रह मेरे पास···" मौसी की गिरफ्त एक बार जकड़कर ढीली प

शाहाना ने धीरे से अपना सिर उठाया। इस बार मौसी ने कोई प्रतिव
किया। उसने मौसी के बेतरतीब बाल ठीक किए। आंखों से बहते हुए आं
मौसी की बंद आंखें खुलीं। दोनों ने एक-दूसरे को खुली नजर से देखा
रही। फिर धीरे-धीरे मौसी ने आंखें बंद कर लीं।

इसके बाद उनकी आंखें फिर नहीं खुलीं। दो दिन मौसी और पड़ी र
ताल में लेकिन होश दुबारा नहीं आया।

मिसिस चैटर्जी की मदद से ही शाहाना ने मौसी का अंतिम संस्कार किया। हॉस्टल के कमरे खाली किए। मौसी का सामान जरूरत भर रखकर बाकी बेच दिया गया। कुल एक महीना और रही शाहाना उस शहर में मिसिस चैटर्जी के पास। फिर कुछ परिचय-पत्र लेकर दिल्ली चली आई। यहां मिल गई, बचपन की सहेली आभा की बड़ी बहन प्रभा। प्यार से घर ले गई। कुछ दिनों बड़ी-छोटी उम्रों का भेद बना रहा। फिर दोनों सहेलियां बन गई।

अब शाहाना अपनी जिन्दगी अपने ढंग से जी रही है। इस जिन्दगी का कोई नक्शा नहीं था उसके पास। जैसे-जैसे वक्त-परिस्थितियां बदलीं, यह नक्शा अपने-आप उभर आया था। पांच वर्ष पहले इस नई जिन्दगी के मोड़ पर जब वह आकर खड़ी हुई थी तब उसका क्या होगा, उसने सोचा भी नहीं था। सच तो यह है कि सोचने की गुंजाइश नहीं थी। उसके सामने एक खुली जिन्दगी थी जिसे अच्छी तरह जीने का पाठ उसने बचपन से पढ़ा था। मौसी की जोड़ी हुई पूंजी से छः महीना-साल भर का खर्चा वह आराम से चला सकती थी, बगैर किसी आमदनी के, और इतनी असमर्थ वह नहीं थी कि इतने दिन में कुछ भी न कर पाती। बीत गए थे वे दिन, वे बरस, जब सुलेमान मौसी ने किसी कीमती अमानत की तरह उसे छिपाकर रखा था, सहेजा था, उसके चेहरे पर पड़ने वाली एक-एक शिकन पर हजार जान से कुर्बान हुई थीं। अब तो वह थी, उसकी खुली जिन्दगी थी, दुनिया की चुनौतियां थीं।

सुलेमान मौसी की आखिरी नजर वह आज भी अपने एकांत क्षणों में महसूस करती है। उसे लगता है, किसी दूसरी दुनिया में मौसी अगर कभी मिलीं तो पूछेगी, 'जिन्दगी से डरकर मैं भागी तो नहीं मौसी, तुम्हारी सीखों को अंजाम तो दिया, कोई ऐसा काम तो नहीं किया जिससे नजरें झुकानी पड़े···लेकिन मौसी, सारी उम्र तुमने तनहा सफर कैसे किया ?'

तनहाई से शाहाना को लगाव नहीं। वह चुपचाप उसके रास्ते में आ गई थी और शाहाना ने उसे ओढ़ लिया था। भागकर भी कहां जाती। एक बार भागने का सिलसिला शुरू हो जाता तो जिन्दगी भर पांव न रुकते। दर-दर भटकती, कुछ हाथ

उसकी आंखों में झांकती है।

"लोग एहसासों के डर से भागते रहते हैं जिन्दगी भर।" परिमल की अ
में गंभीरता उभरने लगती है।

"मेरे साथ चलनेवाले एहसास बड़े खूबसूरत हैं।"

"कभी किसीका बुरा पक्ष भी देखती हो?"

"जब कुछ सोच कर नहीं पाती तब अपना ही बुरा पक्ष सामने आकर
हिसाब मांगने लगता है।"

परिमल उसे मुग्ध-भाव से देर तक देखता रहता है। वह सोचता है, शा
उसकी जिन्दगी में एक खास तरह की ताजगी का पैगाम लाई है। शाहाना के
परिमल के साथ बिताए हुए पल वह नेमत है जिसके पास रहने पर जिन्दगी से
पड़ने की ताकत मिलती है। एक दिन किसी मामूली मौके पर बेहद मामूली ढ
यह गैर-मामूली शख्सियत उसे मिल गई थी, जिसे 'आवर गेस्ट टुनाइट' में
इंटरव्यू किया था। इससे ज्यादा वह कुछ भी याद रखना नहीं चाहती। पह
आकर चुपचाप बैठ जाने या कुछ समय साथ बिता लेने के अलावा और कोई जि
उसे परिमल से नहीं चाहिए। परिमल भी शायद यही चाहता है, इस विषय में
ने कभी कुछ कहा-सुना नहीं, दोनों उस जादू के सामने विवश हैं जो बगैर कुछ
सुने दोनों के सिर चढ़ गया है। जब मिलते हैं तब अपनी-अपनी लीकों से ट
मिलते हैं, जैसेकि अलगाव कभी था ही नहीं।

शाहाना सोचती है, सुलेमान मौसी होतीं तो परिमल के बारे में क्या कह

परिमल जब पहली बार उसके कमरे में आया था तब मौसी की तसवी
सामने खड़ा होकर उन्हें देखता रहा था।

"कौन हैं यह?" उसने पूछा था।

"मौसी हैं।"

"बड़ी सुंदर हैं…!"

"हैं नहीं, थीं।"

"सॉरी…!"

परिमल आगे कुछ कहता, इससे पहले ही शाहाना बोल पड़ी थी, "माता-
के नाम पर यही मौसी हैं मेरी, जिन्होंने खुद कांटों की राह चलकर मेरे लिए
चुने थे।" उसका गला भर आने को हुआ था।

परिमल ने उसका चेहरा अपनी हथेलियों में ले लिया था, "मेरा इरादा तुम्हें दुखों की याद दिलाने का नहीं था···आई एम सॉरी···!"

अपने दोनों हाथ परिमल की हथेलियों पर रखकर शाहाना खड़ी रही थी। वक्त का एहसास जाता रहा। दोनों एक-दूसरे की आंखों में पनाह के चन्द लमहे ढूंढ रहे थे, जिनकी उन्हें तलाश थी।

इसके बाद परिमल ने मौसी का जिक्र फिर नहीं छेड़ा।

शाहाना को दो कमरों की एक बरसाती लेकर रहते हुए तीन महीने बीत चुके थे।

रेडियो की एक प्रोग्राम-एक्जीक्यूटिव थीं मिस मालती। शाहाना की फ्री-लांसिंग में एक दिन उन्होंने एक नया अध्याय जोड़ा।

"बहुत कुछ करना पड़ता है शाहाना, इस दुनिया में अपने पैर टिकाने के लिए, खास तौर पर जब आगे-पीछे कोई न हो। इज्जत की रोटी कमाने की राह कांटों से भरी है।" एक प्याला कॉफ़ी पर उन्होंने शाहाना को बताया था।

शाहाना चुपचाप उन्हें देखती रही।

"सुना है, अलग मकान लेकर रहने लगी हो?"

"हां दीदी, काम बढ़ने लगा था, कभी-कभी रात भर जागकर काम करना पड़ता है, वहां इतनी जगह भी नहीं थी कि मैं अकेली रह सकती, मेरी वजह से उन्हें परेशानी भी थी और फिर आखिर कब तक मैं उनके सिर बोझ बनी रहती?"

"तुम्हें काम इतना मिल जाता है?"

"फिलहाल तो मिल रहा है, आगे का पता नहीं!"

"तुम चाहो तो 'घोस्ट राइटिंग' का काम मैं तुम्हें दिलवा सकती हूं। वैसे तो मैं यह ठीक नहीं मानती, लेकिन लिखने से कलम मंजती है। पैसे अच्छे मिलते हैं।"

देया था।

शुरू के तीन महीने शाहाना मिस मालती के लिए 'घोस्ट राइटिंग' करती रहे
टूटे-फूटे अलफ़ाज़ को सलीके से जोड़ देना, व्याकरण ठीक करना, भूत-भविष्य का भे
सही कर देना, बिखरी अनुभूतियों को सहेज देना, भाषा दुरुस्त करना। बस यही

मिस मालती को शॉर्ट स्टोरी लिखने का शौक था। शाहाना जैसी प्रतिभा
लड़के-लड़कियां उन्हें कुर्सी के माहात्म्य से मिल जाते थे। अब तो वह जानी-मा
स्टोरी राइटर थीं। पैसों की बात तय नहीं हुई थी। मिस मालती ने जब-जित
दिया, शाहाना ने कबूल कर लिया। तीन महीने बाद जब पास का काम खत्म
गया तब उन्होंने शाहाना की मुलाक़ात नन्दीजी से करा दी।

रूमानी पोइट्री में नन्दीजी का खासा दखल था। रोमांस की पूंजी चुक
तो प्रोज में उतरने के ख्वाब देखने लगी थीं वह। भरी-पूरी थीं, भगवान का दि
सब कुछ था—पैसा, इज्जत, शोहरत···।

"एक महीने मेरे साथ काम करो, तब पता चलेगा तुम चल पाओगी
नहीं ?" शाहाना से बातचीत करने के बाद उन्होंने कहा था।

शाहाना ने उनकी शर्त मान ली। उस ट्रायल के एक महीने के पांच सौ रु
मिस मालती ने तय करवा दिए थे।

किसी भी आफिस की तरह शाहाना ठीक दस बजे नन्दीजी के घर पहुंच जा
और पांच बजे वहां से चल पड़ती। नन्दीजी ने अपनी विशाल कोठी का
कमरा उसके हवाले कर दिया था।

एक मेज, तीन कुर्सियों का वह दफ्तर शाहाना को बुरा नहीं लगा था। बी
में नन्दीजी आती-जाती रहतीं यह देखने के लिए कि वह क्या कर रही है। अ
दिन क्या करना है, इसपर बातचीत कर जातीं, कुछ देर इधर-उधर की ब
करतीं। शाहाना से उसके बारे में तरह-तरह के सवाल करतीं।

शाहाना को यह सब पसन्द नहीं था, लेकिन एक सलीके से वह सब
बर्दाश्त करती रही। एक महीना तो उसे किसी तरह निभाना ही था।

और जब एक महीना पूरा हुआ, नन्दीजी ने उसे दो सौ रुपये पकड़ाए, अ
बोलीं, "बाकी अगले हफ्ते ले लेना।"

जिस किताब पर नन्दीजी काम करवा रही थीं, उसे पूरा होने में दो मह
और लगने थे। और दो महीनों तक इसी रेट पर काम करने के लिए शाह

...र नहीं थी, लेकिन उसने नन्दीजी से कुछ कहा नहीं। अगले सप्ताह वह उसी भाव से जाती रही।

जैसाकि नन्दीजी का वायदा था, पैसे उसे नहीं मिले।

दूसरे हफ्ते वह नन्दी जी के यहां नहीं गई। सवा चार सौ रुपयों का बिल बना- ... उसने नन्दीजी के पते पर भेज दिया। बिल की एक कापी उसने मिस मालती ...भी भेजी। पांचवें दिन उसे मिस मालती का खत मिला, 'पिछले पैसे ले आओ, ...ो के काम की बात कर लो।'

शाहाना ने मुलाक़ात का दिन-समय फोन पर तय कर लिया फिर पहुंची नन्दी- ...के घर।

दिन भर की सारी विघ्न-बाधाओं के बावजूद शाहाना दस पेज रोज लिख ...ी थी। तीन सौ पेज उसने नन्दीजी के हवाले कर दिए थे। एक हफ्ते का ...र पेज और था। एकसाथ तीन किताबों पर काम चल रहा था। दूसरे दो ...नों के लिए सात सौ रुपये महीने की फरमाइश की उसने। नन्दीजी सात सौ ...ों के लिए सीधे राजी तो नहीं हुई, लेकिन शाहाना से उन्होंने काम करते रहने अनुरोध किया और पैसों की बात मिस मालती के हवाले छोड़ दी।

उस शाम उनके घर से शाहाना सीधे मिस मालती के घर पहुंची। पुराने पैसे मिल चुके थे। आगे की शर्तें उसने उन्हें बता दीं।

"पैसा नन्दीजी के पास कम नहीं है लेकिन कंजूस हैं···पैसा दांत से पकड़ती" उन्होंने कहा।

"दिन का मेरा तमाम वह समय बीत जाता है जब मैं काम की तलाश में कहीं सकती हूं। इससे काम में काम करना मेरे लिए मुश्किल होगा दीदी!" उसने ...नी स्थिति स्पष्ट कर दी।

"इन दो महीनों के लिए सात सौ रुपये महीना मैं तुम्हें दिलवा दूंगी। लेकिन ...ा कुछ करो तो पैसों की बात खुद कर लेना। मैं बीच में नहीं आना चाहती।"

शाहाना आश्वस्त हो गई। आगे उसे नन्दीजी का काम करना भी नहीं था। सम्पर्क की निरंतरता बनाए रखने के लिए मिलते-जुलते रहना जरूरी होता पूरा दिन अगर 'घोस्ट राइटिंग' की नजर कर दिया जाए तो सम्पर्क-साधना होगी?

इस्तेमाल करने में उसे संकोच होता। बड़ी मुश्किल से कहीं आने-जाने का समय निकालती। वह कमी पूरी करने के लिए रविवार को उसे अधिक समय देना पड़ता।

उसने एक आध बार प्रकारान्तर से सुझाया कि जब उसका काम नन्दीजी को पसन्द आ गया है तब वह घर ले जाने दें, इस तरह रात में कर सकती है, काम भी जल्दी खत्म होगा। लेकिन नन्दीजी इस बात के लिए राजी नहीं हुईं।

"यहां रहती हो तो बीच-बीच में मैं भी देखती रहती हूं। अकेले अपने मन से क्या करोगी ?"

शाहाना बोली कुछ नहीं, और तय कर लिया, दो महीने और कुछ नहीं बोलेगी।

दो महीने बाद एक दिन जब वह चलने लगी तो नन्दीजी ने उसे रोक लिया

"आगे कुछ और करोगी ?" उन्होंने पूछा।

"अभी तो काम बहुत जमा हो गया है, तीन महीने से अपने और काम कर नहीं पाई हूं। उन्हें निबटाकर आपसे मिलूंगी।" शाहाना सरासर झूठ बोली उसके पुराने कांटैक्ट टूट रहे थे और कोई काम उसके पास नहीं था।

टुकड़ों में ही सही, नन्दीजी ने पैसे दे दिए थे और शाहाना के पास बैंक में रखने के लिए कुछ रकम जमा हो गई थी।

नन्दीजी के लिए उसने फिर कोई काम नहीं किया। पत्र-पत्रिकाओं के दफ्तर वह फिर छानने लगी, दूतावासों के चक्कर भी लगा आई। रेडियो को ज्यादा वक्त देने लगी। आनेवाले एक सप्ताह में वह एक बार उन सभी जगहों का चक्कर काट आई जिनके लिए उसने काम किया था। उस पूरे सप्ताह उसके पास और कोई काम नहीं था।

खालीपन से भयभीत होकर वह पछताई भी कि नाहक 'प्रेत लेखन' शुरू किया। नाम सतह पर आते-आते फिर डूबने लगा था। शाहाना ने अपने-आप से वायदा किया, चाहे भूखों मरना पड़े, 'घोस्ट राइटिंग' अब नहीं करेगी।

फ्री-लांसर की पूंजी है उसका वक्त। बेहिसाब वह जाया नहीं किया जा सकता था। वक्त का दावेदार कोई एक नहीं। हर शाख पर एक उल्लू बैठा था और साबक़ा उन्हीं उल्लुओं से पड़ना था। जल्दी ही शाहाना इस नतीजे पर पहुंच गई कि पानी में रहकर मगर से बैर नहीं किया जा सकता। इनकी गिरफ्त से फिसल

काम की तलाश नये सिरे से शुरू हो गई। अखबार के दफ्तर, रेडियो के अलग-अलग यूनिट, एकेडेमी, दूतावास, चुने हुए वरिष्ठ प्रकाशक। शाहाना को इन सभी जगहों से काम मिल सकता था। फरमाइशी लेखन, परिचर्चाएं, वार्ताएं, मुलाक़ातें, संकलन, अनुवाद, कापी एडिटिंग, एडिटिंग···कितने ही प्रकार थे कामों के। शाहाना इन सबमें महारत हासिल कर लेना चाहती थी।

अनवर साहब की जगह कोई सिन्हा साहब आए नये स्टेशन डायरेक्टर बन-कर। एक दिन समय तय करके वह उनसे भी मिल आई। हर नये आदमी से मिल-कर उसके बारे में अपनी राय कायम करने की आदत उसने छोड़ दी थी। उसके बारे में कोई क्या सोचता है, इसकी परवाह उसे कभी नहीं थी। सिन्हा से मिलने गई तो बड़े सहज भाव से, बाहर निकली तब भी सामान्य। न काम मिलने की आशा, न उपेक्षित होने का दुख।

"आपने तो हमारे लिए बहुत काम किया है, अचानक छोड़ क्यों दिया ?"
हा साहब ने उससे पूछा था।

"कोई खास वजह नहीं थी, फिर मैं बाहर भी रही काफी दिनों तक।"

बाहर रहने की छूट फ्री-लांसरों के लिए बड़ी कारगर साबित होती है।

"गेस्ट टुनाइट वाला प्रोग्राम आप शुरू करना चाहेंगी?" सिन्हा साहब ने एक

"क्यों नहीं, लेकिन वह तो कोई कर रहा है।"

"उसमें हम एक से ज्यादा नाम रखना चाहते हैं।"

"मुझे कोई आपत्ति नहीं···"

इस मुलाक़ात के बाद उस यूनिट से मिलनेवाले कांट्रैक्टों के बंद दरवाजे शाहाना के लिए एक बार फिर खुलने लगे। काम की गाड़ी रफ्तार पकड़ने लगी थी।

परिवार-नियोजन का देशव्यापी प्रचार हो रहा था। सुरसा के बदन की तरह बढ़ती हुई आबादी पर काबू पाने के लिए लूप आया था परिवार-नियोजन केंद्रों में। आम आदमी तक इसका प्रचार-प्रसार जरूरी था। अखबार-रेडियो की चीख-पुकार शुरू हो गई थी।

शाहाना को 'न्यू इंडिया' के संपादक का एक खत मिला। परिवार-नियोजन पर उन्हें एक फीचर चाहिए।

रेडियो के लिए तीन कार्यक्रम वह कर चुकी थी इस विषय पर। कुछ पुस्तिकाएं, कुछ पम्फलेट उसने जमा कर लिए थे। फीचर के लिए कुछ तसवीरें, कुछ विशेषज्ञों, कुछ डाक्टरों की राय जरूरी थी। आम आदमी इसके बारे में क्या सोचता है? महिलाएं क्या सोचती हैं? जिन्हें लूप लग चुका था, उनके अनुभव क्या थे? जिन्हें लगना था, वे कितनी तैयार थीं? कितना दबाव था उनपर?…ये सब जानना जरूरी था। इसके लिए फील्ड वर्क लम्बा-चौड़ा था।

इस फीचर में शाहाना ने पन्द्रह दिन लगाए। अस्पतालों के परिवार-नियोजन केंद्रों में गई। लूप लगवाने के लिए लम्बी कतारों में खड़ी औरतों से मिली, डाक्टर नर्सों से बातचीत की—कहीं पत्रकार की हैसियत से, कहीं लूप लगवाने के प्रति उत्सुक एक आम औरत की हैसियत से। अलग-अलग आयु और आय-वर्ग की महिलाओं से मिली। परिवार-नियोजन के बारे में उनकी राय जानी। नियोजन के लिए वे खुद क्या करती हैं, इस विषय में भी जानना चाहा।

अजीबोगरीब अनुभव हुए इस लेख की तैयारी के दौरान, लेकिन लेख जब तैयार हुआ तो एक दस्तावेज बन गया अपने ढंग का अनोखा, दिलचस्प। 'न्यू इंडिया' के रविवासरीय परिशिष्ट के तीन अंकों में यह लेख छपा किश्तों में। अखबारी दुनिया में एक हलचल मच गई। युवा वर्ग को वह पसंद आया। लेख का एक-एक अक्षर दिलचस्पी से पढ़ा गया। बुजुर्गवार कुछ मौन रहे, कुछ तटस्थ रहे, कुछ बेहद नाराज हुए, "यह परिशिष्ट बंद कर दिया जाना चाहिए और इस तरह के अश्लील लेखकों के नाम काले रजिस्टर में डाल देना चाहिए।"

हुआ दरअसल यह था कि शाहाना ने घरेलू महिलाओं से बातचीत ज्यों-की त्यों रख दी थी। परिवार-नियोजन के लिए कौन क्या करता है, इसका चिट्ठा उन्हीं के शब्दों में बयान कर दिया था। और महज़ इतनी-सी बात के लिए उसका लेख पोर्नोग्रैफी की संज्ञा पा गया। पहले झोंक में बिक जाने के बाद 'न्यू इंडिया' की ब

न वह किसीकी बधाई से उत्साहित हुई, न किसीकी प्रशंसा से प्रभावित 'न्यू इंडिया' के आफिस भी नहीं गई। सारे खत उसके घर उन्हीं लोगों ने पोस्ट क दिए थे। उसने एक-एक खत ध्यान से पढ़ा भी लेकिन जवाब किसीको भी न दिया।

उन्हींमें एक खत था 'आफ्टरनून' के संपादक सैम्युअल का। लेख उन्हें पसं आया, किसी दिन आफिस में आकर उससे मिलने को कहा था।

इस खत की उपेक्षा नहीं हो सकती थी। इससे एक नया दरवाजा जुड़ा हु था जहां दस्तक देने का मौका शाहाना को अभी नहीं मिला था।

एक सुबह लंच से पहले वह दाखिल हुई 'आफ्टरनून' के दफ्तर में।

सैम्युअल खड़े होकर तपाक से मिले। खुद को उसकी लेखनी का मुरी बताया।

अदब से शाहाना शुक्रगुजार हुई। उत्सुकता से मन-ही-मन उनके व्यक्तित्व का विश्लेषण करती रही।

चाय-कॉफ़ी की औपचारिकता के बाद सैम्युअल साहब धीरे-धीरे खुलने लगे बातचीत की शुरुआत अध्यात्म से हुई थी और पूरे तीन घंटे का समय बिताकर शाहाना जब उठी तो सैम्युअल, सैम बनकर उसकी हस्तरेखाएं पढ़ चुके थे। उसका भविष्य उन्होंने करीने से उसके सामने रख दिया था। हस्त-रेखाएं पढ़ने के बहाने शाहाना की दोनों हथेलियां बारी-बारी पैंतालिस मिनट तक उनकी हथेलियों में

श्राम पा चुकी थीं। पूजा के आदर्श धरातल से प्रेम पोर्नोग्रैफी के गर्त में अ
गिर चुका था।

"खासे दिलचस्प हैं आप...!" चलते समय शाहाना ने एक कॉम्प्लीमेंट
हफा उनके सामने लापरवाही से फेंक दिया था।

"हमारे लिए कुछ लिखना शुरू कर दीजिए, दिलचस्पी के दायरे हम ब
गे।" उन्होंने लपाक से जवाब दिया था और केबिन का दरवाजा खोलकर त
ी तरह निकल गए थे। इस दौरान शाहाना के बेहद करीब आना नहीं भूले
नका बायां हाथ कुर्सी खींचकर खड़ी हुई शाहाना की दाईं जांघ छूता हुआ नि
या था, जैसे जाने की रफ्तार में इस तरह की बातें होना कोई आश्चर्य नहीं थ

'बास्टर्ड !' उसके होंठ बुदबुदाए थे।

अचानक हो गई इस बात में शरारत की बू थी। और शाहाना किसी मोगा
ं नहीं थी। उसने मन को एक झटका दिया और सैम के पीछे धीरे-धीरे बंद
केबिन के दरवाजे को पूरा खोलकर बाहर का हॉल पार करती वह 'आफ़्टरनून
आफिस से नीचे आ गई थी।

उस दिन कहीं और जाने का मन नहीं हुआ तो सीधे घर आ गई। थोड़ी
इधर-उधर करती रही। दुबारा नहाई, खाना खाया और 'जैकीओ' पढ़ते-पढ़ते
गई। 'ब्लडी बास्टर्ड' रह-रहकर उसके होंठ बुदबुदा रहे थे और वह मन-ही
अहद कर रही थी कि 'आफ़्टरनून' के लिए काम कभी नहीं करेगी।

शाम को उठी तो उसका नजरिया एकदम बदला हुआ था। इस फैसले प
वह 'आफ़्टरनून' के लिए काम नहीं करेगी, उसने अपने-आपको पचास गा
दीं। फ्री-लांसर अगर किसीके छूने भर से मुरझाने लगे तो हो चुकी फ्री-लांसि

सैम्युअल से दूसरी मुलाक़ात तू-तड़ाक और 'लेन-देन' की भाषा तक
आई। शाहाना इस फन में माहिर न सही, जानने-समझने के लिए कुछ भी अ
लेने की क्षमता थी उसमें। सैम के पास अनुभवों का पुलिन्दा था और शाहा
पास सुनते रहने का धैर्य। उसे अपने पैर जमाने थे और जब सारा माहौल ही
था तो अकेले सैम्युअल को ही दोषी क्यों ठहराया जाए। दोनों की निभने लगी

मौसी कहती थीं, जहर छूने से नहीं, खाने से मरता है आदमी। अगर
लांसिंग के मैदान में पैर जमाना था तो एक नहीं, हजार जहर उसे छूने थे और
बात धीरे-धीरे वह स्वीकार करने लगी थी। अगर उसकी जरूरत का फायदा

सैम के सुझाव पर शाहाना ने एक कॉलम लिखने की योजना बनाई। नाम
रखा गया 'कॉन्फिडेंशियल'। इस कॉलम में पाठक किसी भी तरह की अपनी समस्या
क सकता था, जिसका उत्तर अखबार की ओर से कॉलमिस्ट को देना था। पहले
ीन-चार अंकों में विज्ञापन छपे। तब खत आने शुरू हुए। सैम के साथ घंटों बैठ-
ठकर शाहाना ने वे खत छांटे जिन्हें कॉलम में लेना था। फिर उनके जवाब लिखे।
रू-शुरू में कॉलम का एक स्तर निर्धारित करने में सैम ने बड़ी मदद की। फिर
ॉलम चल पड़ा। सैम को लेकर उपजा हुआ शाहाना के मन का आक्रोश धीरे-
ीरे घटने लगा। इस बीच वह ज्यादा खुल भी गई। सैम के प्रति खटके की संभा-
ना उधर लगातार कम होती जा रही थी।

दिन, हफ्ते, महीने बीत गए···एक दिन कुछ जरूरी खत सैम को दिखाकर वह
ाने के लिए तैयार खड़ी हुई तो सैम अपनी कुर्सी छोड़कर उसके पास आ गया।
ाथ मिलाने के अंदाज में उसने शाहाना का हाथ थामा और एक झटके से उसे
पनी ओर खींच लिया। छः फुटी ऊंचाई के कद्दावर सीने पर जब वह टिकी तो
म की बांहें उसे घेर चुकी थीं। धौंकनी की तरह चलते सीने को उसने अपने दायें
ाल पर महसूस किया। सैम ने उसका निर्विकार चेहरा अपनी हथेलियों में भर-
र ऊपर उठाया :

"मेरी जान, देखती नहीं, पहली मुलाक़ात से ही मर रहा हूं तुझपर···।"

केबिन के दरवाजे पर किसीने ठुक-ठुक किया। सैम छिटककर अलग हो
या। चपरासी चाय की दो प्यालियां लिए दरवाजा खोलकर अंदर आने लगा
।।

"इतनी देर क्यों लगाई तिवारी," सैम ने चपरासी को डांटा, फिर शाहाना
ो संबोधित करके कहा, "लीजिए, चाय आ गई है तो पीकर ही जाइए।"

उबलते आक्रोश को विवेक के वजन से दबाकर शाहाना बैठ गई।

एक बार उसने अपने मुरीद की ओर देखा। इस तरह मरनेवालों को चिर लेकर ढूंढ़ना नहीं पड़ता। इज़हार के चन्द लटके इनके खजाने में हमेशा तैय रहते हैं। जहां अपना उल्लू सीधा होते देखा, वहीं चालू हो जाते हैं।

वह आराम से बैठकर चाय पीने लगी।

सैम की हरकत पर इस बार शाहाना ने खुद को परेशान नहीं किया। उ दिन के बाद अगले कुछ हफ्तों तक जब कॉलम लेकर गई तब जानबूझकर सैम उसके केबिन में नहीं मिली, आते-जाते उसीने शाहाना की ओर देखा, मुसकुराय हाल-चाल पूछने की औपचारिकता निभाई और चला गया।

शाहाना ने ध्यान नहीं दिया, और गंभीरता से अपने कॉलम में लग गई।

दफ्तर के एक कोने में उसके लिए एक मेज डाली गई थी। हफ्ते में एक दि आकर वह उसपर बैठती, अपनी चिट्ठियां पढ़ती, जरूरी, गैर-जरूरी, बहुत जरू के निशान लगाती। मूड होता तो बैठकर लिखने भी लगती।

कॉलम चल निकला था। रोज की डाक पचास की संख्या पार करने लगी थी लोकप्रियता के आधार पर एक सीमा तक शाहाना आश्वस्त होने लगी थी। ए खास तरह का सुकून उसे मिलने लगा था उन खतों का जवाब लिखने में। इतन तसल्ली भी कम नहीं थी।

'हड्डी की तलाश में घूमते कुत्ते कहां नहीं…उनके सूंघने या भौंकने पूर्णिमा अमावस तो नहीं बन जाती…' उसने अपने-आपको कई बार आश्वास दिया।

हर रविवार को 'कांफ़िडेंशियल' नियमित रूप से आने लगा था। डेढ़ सौ रुप प्रति किश्त उसे मिलते थे। महीने में चार हफ्ते होते तो छः सौ रुपये, पांच होते त साढ़े सात सौ।

पहले वह हफ्ते के किसी भी दिन 'आफ़्टरनून' आ जाती, फिर उसने एक दि तय कर लिया। हर शनिवार बारह से तीन वह अपनी निर्धारित मेज पर बिताने लगी। धीरे-धीरे विभाग के लोगों से उसका परिचय हुआ। फिर हलकी-फुलकी बातें, हंसी-मजाक भी चलने लगा।

आने-जाने वालों से उसका परिचय कराया जाता, "हमारे यहां 'कांफ़िडेंशियल' देखती है—शाहाना चौधरी।"

पड़ता था। एक दिन अपनी ही धुन में सीढ़ियां चढ़ रही थी कि पीछे से सुनाई पड़ा :

"आप भी लिफ्ट इस्तेमाल नहीं करतीं ?"

शाहाना ने घूमकर देखा—सैम साहब सीढ़ियां चढ़ते आ रहे थे।

"पहली मंजिल के लिए लिफ्ट क्या इस्तेमाल की जाए···" शाहाना उनके आने तक अपनी सीढ़ी पर खड़ी रही, फिर साथ-साथ ऊपर चढ़ने लगी।

"कहां रहती हैं आप ?"

"क्यों ? मैं तो हर हफ्ते नियमित रूप से आ रही हूं।"

"मेरे लिए कोई वक्त निकाला नहीं तो मैं क्या जानूं, आप आईं या नहीं।"

"आज मिलकर जाऊंगी।" शाहाना मुसकुराई।

"पक्का ?"

"जी हां, पक्का।"

सैम ने लंबे-लंबे डग भरे और आगे बढ़ गया। शाहाना अपनी रफ्तार से अपनी मेज तक पहुंची और हस्बेमामूल अपने ख़तों में उलझ गई।

काम निबटाकर जब चलने को हुई तो यह बात उसके दिमाग से उड़ गई कि सैम से मिलकर जाना है। और ऐसा उसी दिन नहीं, उसके बाद तीन-चार बार और हुआ। कभी वह सचमुच भूल गई, कभी उसने भूलने का नाटक किया।

"अफसर की अगाड़ी और घोड़े की पिछाड़ी से दूर ही रहना चाहिए," एक दिन 'आफ़्टरनून' का क्लर्क किसी दुखी लेखक को समझा रहा था जो सैम साहब की नजरों पर कभी चढ़ा रहा होगा, अब गिर चुका था और दुबारा उठने की कोशिश कर रहा था।

शाहाना को यह बात कितनी माफिक लगी थी ! वह जानती थी, जिस दिन सैम आमादा हो जाएगा, उस दिन तो कोई-न-कोई फैसला लेना ही होगा, जितने दिन मामला टल जाता है उतना ही अच्छा। और वह भूलने का नाटक करती जा रही थी।

उस दिन साढ़े ग्यारह बजे एक रिकॉर्डिंग थी रेडियो में। स्टूडियो खाली नहीं हो पाया इसलिए थोड़ी देर हो गई। बाद में प्रोड्यूसर के साथ एक प्याला कॉफ़ी पीने लगी तो और भी वक्त लगा। बारह की बजाय दो बजे के करीब 'आफ़्टरनून' के दफ्तर पहुंची तो एकसाथ कई आवाजें सुनाई पड़ीं, "सैम साहब आज सुबह से

"ऐसी बात नहीं है बॉस !"

"छोड़ो यह बॉस-वॉस का चक्कर, कहां थीं तुम ?"

"आप मुझे पूछ रहे थे आज ?"

"हां, महीनों से तुमसे बात नहीं हो पाई थी। हम साले अच्छे उल्लू बने।"

"मैं समझी नहीं !"

"तुम इतनी बेवकूफ नजर तो नहीं आतीं।"

"आदमी जो नजर आता है, वही तो नहीं होता।"

"मैंने तो सोचा था कि कॉलम लिखने लगोगी तो साथ बैठने का वक्त ज्यादा मिलेगा, बातें करेंगे।"

"सैम साहब, कुछ काम आ गया था इधर।"

"अब ऐसा भी क्या कि महीने में तुम्हें एक बार भी वक्त न मिले। मैंने भी की है फ्री-लांसिंग।"

"कोई खास बात थी ?"

"कई बातें थीं···रोज़ सोचकर आता था, आओगी तो बताऊंगा। और आपका कोई अता-पता ही नहीं।"

"चलिए, अब बता दीजिए।"

"अब इतना हमें याद थोड़े ही है। इधर दो लड़कियों से मुलाक़ात हुई थी, तुम्हें बताना चाहता था, पिछले हफ्ते यहां आई भी थीं, सोचा था, तुम आओगी तो मिलवा दूंगा। बड़ी दिलचस्प लड़कियां थीं।"

"सुना डालिए फिर।" शाहाना ने कुछ इस अंदाज़ में कहा कि बला सिर से उतर ही जाए तो अच्छा।

"अभी तो ऊपर जाना है। आधे घंटे में आ रहा हूं। आज डिच मत करना, वरना···"

"नहीं···आप हो आइए, मैं भी तब तक अपना काम निबटाए ले रही हूं।"

"बड़ी कामी हो गई हो आजकल।"

शाहाना ने मुसकुराकर सैम की ओर देखा, बोली कुछ नहीं।

उस शाम 'आफ़्टरनून' के दफ्तर में शाहाना को सात बज गए। बनारस की किन्हीं दो बहनों का किस्सा था जो पहली मुलाक़ात में ही सैम साहब पर मरने लगी थीं। एक ने उनके चरणों की धूल से अपनी मांग भर ली थी, दूसरी यूंही

"इतनी योग्यता अभी हासिल नहीं कर पाई हूं।"

"मेरे लिए तुम योग्य हो। सबके लिए कौन कहता है? महीने में कम-से-कम एक बार हंसती-मुसकुराती मेरे पास आओ। हम लोग बैठेंगे, बात करेंगे···थोड़ी देर के लिए सब कुछ भूल जाएंगे।"

"कोशिश करूंगी।"

"कोशिश नहीं, वायदा करो।"

"आज हैं तो बैठे हैं, कल किसने देखा है? जब हम कल के बारे में जानते ही नहीं तो वायदा किस बात का करें?"

"फलसफे की बात छोड़ो, कहो कि आऊंगी।"

"कोशिश करूंगी।"

शाहाना के जेहन में वे तमाम लेखिकाएं एक-एक कर उभरने लगीं जो दिन-दिन भर अंदर केबिन में बैठी सैम से संबंध जोड़ती रहती हैं। जब निकलती हैं तो होंठों की लिपस्टिक या तो उड़ चुकी होती है या अनुमान से फिर थोप ली गई मालूम पड़ती है। कई होंठों पर जीभ फिराती केबिन से बाहर आती हैं। एक तो हथेली से होंठ दाबे तेज कदम चलती हुई बाहर हो जाती है। सैम ने ही बताया था—मिस कपूर है वह। अड़तीस बरस की हो गई, कहीं शादी नहीं हो रही है। क्योंकि माता-पिता के पास दहेज के पूरे पैसे नहीं हैं। एम० ए०, पी-एच० डी० है, कहीं नौकरी भी नहीं मिल रही है···एक और है, मुश्किल से बीस-इक्कीस बरस की होगी। सैम के दोस्त की बेटी है। 'आफ्टरनून' में आती है तो मुग्धा नायिका बन जाती है।···लेखिका बनने की हवस में आने वाली औरतों का हिसाब शाहाना कभी नहीं जोड़ पाई। न जाने कितनों से सैम उसे मिलवा भी चुका था।

उन्हींमें एक थीं किरन हंस। सैम ने परिचय कराया था, "मेरी बड़ी अच्छी दोस्त हैं," फिर शाहाना की ओर मुखातिब होकर, "शाहाना हमारे यहां 'कांफ़िडेंशियल' लिखती है। बड़ी सुलझी हुई खुले दिमाग की लड़की है।"

दोनों को खुद परिचित होने के लिए छोड़कर सैम बाहर चले गए और जब लौटे तो मुसकुराते हुए आग्रह किया, "तुम दोनों दोस्त बन जाओ।"

किरन हंस मुसकुराई।

"दोस्त ऐसे भी बनवाए जाते हैं?"

किरन का मुसकुराता हुआ चेहरा शाहाना को अच्छा लगा। फिर काफी दिनों

सैम कहता जा रहा था :

"औरत आखिर क्या है—एक कोटर जिसमें प्रवेश पाने के लिए आदमी जमीन-आसमान के कुलावे मिलाता रहता है। उसी कोटर के अलग-अलग नाम हैं ···उसे शहरी कोटर कहो···देहाती कोटर कहो···पढ़ा-लिखा या अनपढ़ कोटर कह लो···इन्टेलेक्चुअल कोटर कह लो। मर्द स्साला उसीके लिए बेचैन रहता है। मैं तो इतनी लुगाइयों से मिलने के बाद इसी नतीजे पर पहुंचा हूं कि सबको नापो। दिन-दिन भर यहां इनकी भीड़ में घिरकर आदमी क्या करेगा? बगुला भगत बनकर अपनी पाकीजगी का ढिंढोरा पीटना मुझे पसंद नहीं, इसलिए मैं नापने में विश्वास करता हूं।···वह एक कुन्तल मेहता हैं। मैं आया ही था यहां कि झपट पड़ीं मुझपर। तीन महीने तक मेरा चैन हराम किए रही। यहां टेलिफोन, घर पर फोन···अब शादीशुदा आदमी हूं। घर की जिन्दगी तो मुझे मिलनी चाहिए। वह तो बीवी खुले दिमाग की है, माइंड नहीं करती···करती भी हो तो जाहिर नहीं करती···वरना सैम साहब कभी के निकाल दिए गए होते घर से···नाक में दम कर दिया था उसने···एक दिन तो धमका गई, नहीं आओगे तो चैन नहीं लेने दूंगी···मैंने भी सोचा, पता नहीं क्या करे स्साली। ऊंची जगहों पर उठना-बैठना है उसका। दुश्मन बनाने से फायदा···"

"उनके पति क्या करते हैं?"

"किसी कम्पनी में मैनेजिंग डायरेक्टर है। अकसर दौरे पर रहता है। अब बोलो, महीने का तीन-चौथाई जब मर्द बाहर रहेगा तब बीवी क्या करेगी? वैसे औरत बुरी नहीं है।"

बिना किसी शर्त आत्मसमर्पण करनेवाली कौन-सी औरत आदमी को बुरी लगेगी? शाहाना सोचने लगी। दुश्मन भी अगर दोस्ती का हाथ लगातार बढ़ाता रहे तो एक दिन दोस्त बन सकता है···जो स्त्री लगातार किसी मर्द के पीछे पड़ी उसके पौरुष को चुनौती देती रहे, वह बुरी कैसे हो सकती है···?

"मिस शाहाना चौधरी···माई फ्रेंड-फिलासफर···क्या मैं आपसे पूछ सकता हूं कि आप कहां हैं?" शाहाना की स्थिर मुद्रा जब एक ही दिशा में बहुत देर तक केन्द्रित रही तब वर्तमान की एक चाबुक मारते हुए सैम ने कहा।

"मैं कुछ सोचने लगी थी।" शाहाना धीरे से मुसकुराई।

"क्या?"

"जरूर।"

"मेरे बारे में तुम्हारी क्या राय है ?"

शाहाना को लगा, इस मोड़ पर अगर वह झिझक गई तो गड़बड़ हो जाएगी। लपाक से बोली :

"भले आदमी हैं आप, किसीका बुरा नहीं सोचते, संवेदनाएं समझते हैं, टिप-टाप महिलाएं आपको घेरे रहती हैं, किसी-किसीके डर से तो आप केबिन छोड़कर भाग जाते हैं, इतनी लुगाइयों से मिलने के बाद उन्हें नापने का निर्णय लिया है आपने, आपके साथ काम करने का अपना एक मजा है, बस, थोड़ा चालू हैं आप और कोई बात नहीं।" एक बेवकूफ-गंवार लड़की की सादगी-से शाहाना मुसकुरा पड़ी।

सैम ने वहीं से एक फ्लाइंग किस उड़ा दिया।

"मुझसे मिलती रहा करो मेरी जान, मैं तुम्हें कोटर-पुराण का माहिर बना दूंगा।"

"उससे क्या होगा ?"

"तुम कोटर-विशेषज्ञा बन जाओगी।"

"फिर…"

"तुम्हारा ज्ञान बढ़ेगा। दुनिया को बेहतर समझने की क्षमता पैदा होगी तुममें।"

"इससे आपको क्या फायदा होगा ?"

"क्यों ? यह सब मैं अपने ही लिए तो करूंगा।"

"कैसे ?"

"तुम मेरी सेक्रेटरी बनोगी…कोई भी लुगाई मेरे पास आने से पहले तुमसे मिलेगी फिर तुम उसे लेकर मेरे पास आओगी…"

"फिर ?"

"फिर क्या…आगे की बात वक्त आने पर बताऊंगा। कुछ पता है, सात बज रहे हैं…बड़ी देर हो गई।"

"शिकायत आप कर रहे हैं, मैं नहीं…"

"दुबारा कब आओगी ?"

"अगले हफ्ते।"

"सफल पत्रकार बनने के लिए बियर पीना जरूरी है ?"

"क्यों नहीं, बियर पीना, व्हिस्की पीना, सिगरेट, बीड़ी से धुआं छोडना…ये सब पत्रकारों की खासियत होती है।"

"और ?"

"और क्या ?"

"आप ही ने तो एक दिन कहा था सफल बनने के लिए, आजकल एक ही रास्ता है—अगर आप लड़की हैं, जवान हैं…तो सीधे जाकर बॉस पर जान छिड़कने लगिए, आपको कलम पकड़ने की तमीज न हो, आप महान लेखिका बन जाएंगी। अब ये बीड़ी, सिगरेट, व्हिस्की कहां से आ गई ?"

"आपसे वह भी तो न हो सका।"

"आपको क्या पता ?"

"अच्छा, मुबारकें ! तो ले लिया अपने चंगुल में आपको भी ?"

"आपको क्या तकलीफ हो रही है ?"

"कुछ नहीं, मुझे क्या तकलीफ होगी ?"

"चेहरे का रंग तो उतर गया एकदम।"

"वह तो अपनी नादानी पर कि आपको तीसमारखां समझ बैठा था।"

"आपके तीसमारखां समझने से मुझे सुरखाब के कोई पर तो नहीं लगे।"

"लगेंगे भी नहीं। जो लोग सुरखाब के पर लगने के लिए तीसमारखां बनते हैं, उनका यही हाल होता है।"

"क्या ?"

"यही जो आपका हुआ है।"

"मेरा क्या हुआ है ?"

"कतार में खड़ी हो गई न आप भी जाकर।"

"किस कतार में ?"

"दीक्षा लेने वालों की।"

"कैसी दीक्षा ?"

"इतने दिन से आप 'आफ़्टरनून' में आती-जाती हैं, आपको दीक्षा का नहीं पता ?"

"पता होता तो ले न लेती !"

दोनों खिलखिलाकर हंस पड़े।

शाहाना का मन हुआ, उस दिन सैम की दी हुई वार्निंग की बात प्रवीर को बता दे, फिर उसने इरादा बदल दिया, उस तरह की घटिया बातचीत को वक्त देकर वह खुद को घटिया बनाना नहीं चाहती।

आनेवाले हफ्तों में उनकी मुलाक़ातें पहले से कुछ बढ़ गईं। सी० पी० इनर सर्किल के कुछ चक्कर भी लगाए उन्होंने। बाटा से प्रवीर को जूते ख़रीदवाए, मोनारुपा में कुल्फी खा आई, स्टैंडर्ड के नीचे टहलते हुए सॉफ्टी खाई।

प्रवीर को लेकर उसके नाम के साथ पहले लोग फुसफुसाकर बात करते रहे, फिर उनकी आवाज़ बुलन्द हुई। चेमेगोइयां सरेआम सुनाई पड़ने लगीं :

'आजकल सेन ने एक नई मछली फांसी है।'

'दोनों खुले खजाना घूमते हैं।'

'लड़की तो कुछ खास नहीं।'

तो क्या हुआ, जवान तो है।'
'अरे छंटी हुई है वह भी···खेली-खाई।'
'बड़े तेवरवाली है।'
'इसीसे तो शिकार फांसती हैं इस तरह की औरतें।'
'तो सेन ही कौन दूध का धोया है!'
'नामर्द है स्साला, कभी किसी लुगाई को बांधकर नहीं रख पाया।'
'किसीको बांधकर रखने का दम होता तो कुंआरा क्यों रहता?'
'कुछ नहीं यार, नई-नई लड़कियों को कार में लिए घूमने की आ
।'
'ये बात तो है, उसकी कार में हर छः महीने बाद लड़की बदल जाती है
'चलाए रहता है एक न एक चक्कर।'
'चक्कर वह क्या चलाएगा? लड़कियां इसको उल्लू बनाती रहती हैं।
'गुरु आदमी है।'
'कोई समझदार औरत इसके साथ टिक ही नहीं सकती।'
'देखो, यह नई चिड़िया भी कितने दिन टिकती है!'
शाहाना ने सब कुछ सुना और खामोश रही। भौंकनेवालों के मुंह लग
मतलब नहीं था। रुसवाई सुलेमान मौसी ने कम नहीं झेली थी।
भाइयों के छींटे सुन-सहकर ही शाहाना जवान हुई थी। उसका नाम
कब जुड़ा और कब कट गया, इस ओर उसने कभी ध्यान नहीं दिया
ने एक बात याद रखी थी कि कोई घटिया बात उसके सामने कहने की हि
सीको न पड़े।
उसे देखकर चेमेगोइयों में डूबे हुए लोग अकसर चुप हो जाते। 'आफ्ट
उसके बारे में क्या सुन-कह रहे हैं, इसकी ब्रीफिंग सैम्युअल साहब ही
करते थे।

अपने दायरे में जानी-मानी शख्सियत था प्रवीर सेन। जहां कहीं भी शा
के साथ गई, रास्ता चलते हर कदम पर तो उसे हाथ मिलानेवाले मिले।
तो हर किसीके अभिवादन के हाथ उठे उसकी तरफ। पल भर के लिए

शाहाना 'आफ्टरनून' का काम निपटाकर सीढ़ियां उतर रही

कि इधर से लपककर प्रवीर सामने आ गया।

"जल्दी में न हो तो एक कॉफ़ी हो जाए ?"

"चलो···" शाहाना को कोई जल्दी नहीं थी।

कैफ़ेटेरिया में बैठने का मन नहीं हुआ। दोनों कॉफ़ी हाउस च

कॉफ़ी का आर्डर दिया, और जब कॉफ़ी सामने आ गई, तो दोन

लगीं।

"सुना है, बड़ा कोतवाल एक दिन तुम्हें भाषण दे रहा था ?'

होता तो प्रवीर सैम को बड़ा कोतवाल कहता।

"भाषण देने की उसकी आदत है।"

"मेरे बारे में कुछ कह रहा था ?"

"वह तो सारी दुनिया कह रही है।"

"क्या ? तुम जानती हो ?" प्रवीर को आश्चर्य हुआ।

"उसमें न जानने जैसा तो कुछ है नहीं।"

"तुमने मुझसे कभी जिक्र नहीं किया।"

"जिक्र करने जैसा क्या था उसमें ?"

"क्या कह रहा था मेरे बारे में ?"

"तुम्हारे बारे में मुझसे क्यों कहता ?"

"तरह दे रही हो ?"

"इसमें तरह देने की क्या बात है ?"

"वह कह क्या रहा था ?"

"कुछ ख़ास नहीं।"

"बेख़ास ही सही।"

"कह रहा था, तुम इश्कबाज़ हो। नई-नई लड़कियां फंसाने का रोग है तुम्हें।"

"तुमने क्या कहा ?"

"दूसरों के बीच आपसी क्या बातचीत होती है, यह जानने के लिए तुम क्यों उतावले हो ?"

"अगर वह बात मेरे बारे में है तो उसे जानने का हक बनता है मेरा।"

"मुझसे किसीकी क्या बात हुई, यह न बताने का हक मेरा है।"

"तुम समझती हो, तुम्हारे बताए बग़ैर मुझे पता नहीं चलेगा?"

"पूछ क्यों रहे हो फिर ?"

"क्योंकि दीवारों के कान होते हैं, ज़बान नहीं होती।"

"लेकिन जब बताए बग़ैर तुम्हें पता चल जाता है तब तो दीवारें भी तुमसे बोलती होंगी।"

"बोलती हैं···उनकी भाषा थोड़ी-बहुत मैंने सीखी है।"

"फिर उन्हींसे पूछ लेना···अब यह बकवास बंद करो।"

"तकलीफ़ होती है ?"

"होती है···"

"सैम्युअल साहब के लिए दर्द होता है ?"

"होता है···"

"प्रवीर सेन के लिए कुछ नहीं होता ?"

"प्रवीन सेन अगर इन बेतुकी बातों के प्रवाह में बह जाते हैं तो उनके लिए

"ऐसा ही होना चाहिए तुम पीने वालों के साथ," ठंडे नीबू-पानी का घूंट भरते हुए शाहाना बियर न मिलने की विवशता पर खुश हुई।

"जिस दिन होटल-रेस्तराओं में शिवांबु दिया जाने लगेगा, उस दिन पूछूंगा आज का हिसाब..."

"छि:, कितने गंदे हो तुम..."

"इसमें गंदगी की क्या बात है ?"

"शिवांबु होटल-रेस्तराओं में क्यों दिया जाएगा ?"

"चलो खाली गिलास पकड़ा दिया जाएगा और वेटर बाथरूम का रास्ता दिखाया करेगा।"

"बंद करो यह बकवास।"

"क्यों ? लोग अपना-अपना गिलास भरकर चले आएंगे, फिर इसी तरह बैठकर सिप करेंगे।"

"प्रबीर सेन, आपका दिमाग सही तो है ?"

"क्यों ? मेरे दिमाग को क्या हो गया है ?"

"आपके पास कोई दूसरी बात नहीं है ?"

"जब आप नीबू-पानी पिलाएंगी तो दूसरी बात कहीं जेहन में रह जाएगी ?"

"यह शिकायत आप उन नेताओं से कीजिए जो शिवांबु के प्रताप से आज भी साठे के पाठे हैं...जिसने आप शराबखोरों को नीबू-पानी या जलजीरा पीने पर विवश किया है..."

"यार, तुम्हारा शब्द-ज्ञान बड़ी तेजी से बढ़ रहा है..."

"क्यों...क्या हुआ ?"

"साठे का पाठा...कहां सुना था ?"

"कहीं भी सुना हो, तुम समझते हो, शराफत से बोलने वालों के पास शब्द नहीं होते ?"

"खयाल कुछ ऐसा ही था, लेकिन अभी-अभी बदल गया।"

"बोर न करो, बोलो, और क्या खबर है ?" शाहाना ने पांव की चप्पल एक ओर कर दी, और हरी-ठंडी दूब पर पैरों को हलके-हलके सहलाने लगी।

प्रेस-क्लब की हरी दूब पर कुर्सी डाले, नंगे पांव घंटों बैठे रहने का अपना सुख है, खास तौर पर अगले दिन जब छुट्टी हो और सप्ताह की सारी जिम्मेदारियां आप अच्छी तरह निभा चुके हों।

"तुम्हारे मतलब की एक बात है।" प्रवीर बोला।

"अभी तक बताया क्यों नहीं ? जल्दी फूटो अब…"

"आप कुछ सुनने के मूड में कहां थीं ? आज तो तलवार खींचे खड़ी हो, गोया मैंने कोई बड़ा गुनाह किया है।"

"उल्टे चोर कोतवाल को डांटे ?"

"तो आप भी कोतवाल हो गई ?"

"जब आप चोर बन गए तो मैं कोतवाल भी न बनूं ?…बकवास बन्द करो। बताओ मेरे मतलब की बात ?"

"बता दूं ?"

"भाड़ में जाओ।"

"अच्छा, गुस्सा न हो। बताता हूं।"

प्रवीर ने कहा जरूर कि बताता हूं लेकिन बताया नहीं। शाहाना भी खीझकर चुप अपना नीबू-पानी पीती रही।

तब प्रवीर ने पहल की :

"अंग्रेजी के एक प्रकाशक हैं बम्बई के, यहां एक नया दफ्तर खोल रहे हैं…"

"कब ?"

"एक तरह से खोल चुके हैं।"

"कहां ?"

"यहीं, हैली रोड पर।"

"हैली रोड पर तो बहुत-से दफ्तर हैं।"

"जिस दिन तुम्हें जाना होगा, ठीक-ठीक पता दे दूंगा

"बाकी तो सब उनके नुमाइंदे होंगे।"

"देख लूंगी, वैसे इसके लिए मैं आपकी आभारी हूं।" शाहाना ने नाम-पत्र
ओर इशारा किया।

"आभारी रहना कोई बुरी बात नहीं होती, वैसे आप वहां कब जाएंगी?

"जब जाऊंगी तब बता दूंगी।"

"जी हां, बड़ी मेहरबानी होगी। वहां मेरा एक वाक़िफ़ है, अगर जरूरत
तो..."

"धन्यवाद, जरूरत नहीं पड़ेगी।"

"आत्मविश्वास बड़ी तेजी से बढ़ रहा है आपका!"

"आप अगर गाहे-बगाहे नजर लगाना बंद कर दें, और तेजी से बढ़ सक
है।"

"हां, बड़े कोतवाल को गुरु मानने का कुछ फायदा भी तो मिलना चाहिए

"प्रवीर सेन, एक बात याद रखिए कि आप उसके प्रतिद्वन्द्वी नहीं हैं।"

"जानता हूं।"

"मैं कहती हूं, आप नहीं जानते।"

"मेरा खयाल है कि मैं जानता हूं, लेकिन अगर आप कुछ और जनाना चाह

"वह कौन है ?"
"जिसका जादू आपके सिर चढ़कर बोल रहा है।"
"तुम उसे बगुला क्यों कहते हो ?"
"मछलियां फांसनेवाले को क्या कहूं ?"
"कितनी मछलियां फांसी हैं उसने ?"
"एक को फांसने के लिए तो लगातार जाल फेंके जा रहा है…"
"फंसी कितनी हैं ?"
"मैं क्या उसका असिस्टेंट लगा हूं ?"
"हिसाब तो रखते हो।"
"मेरी सेहत इन बातों से खराब नहीं होती।"
"परेशान क्यों हो फिर ?"
"एक मछली की बेवक्त शामत आ रही है इसलिए।"
"तुम्हें दर्द क्यों है ?"
"काज़ी समझ लो।"
"शहर का अन्देशा है ?"
"आदत से लाचार हूं।"
"चुप रहो, अफवाहें नहीं फैलाते।"
"मूंड़ लिया है अच्छी तरह…"
"मान लो मूंड़ लिया है, तुम्हें क्या ?"
"कुछ नहीं, मुझे क्या ?"
"फिर जले क्यों जा रहे हो ?"
"तो क्या मग्न होऊं ?"

जल्दी-जल्दी गाड़ी लॉक करके वह शाहाना के पीछे-पीछे ऊपर आ गया।

शाहाना ने बैग अपनी मेज पर रखा और रसोई में चली गई। थोड़ी देर बाद आई तो उसके हाथ में कॉफ़ी के दो प्याले थे।

"यही है तुम्हारी कढ़ी?" प्रवीर ने हाथ बढ़ाकर कॉफ़ी का प्याला ले लिया।

"आज, इसे ही कढ़ी मान लो, वैसे कढ़ी का वायदा पक्का।"

शाहाना ने मेज की दराज से रीजेंट किंग का डिब्बा निकाला और एक सिगरेट सुलगाकर प्रवीर के सामने दीवान पर बैठ गई। प्रवीर की दिलचस्पी पान-सिगरेट में कभी नहीं रही। वह बीड़ी का मुरीद था।

"तुम बड़े कोतवाल की बात से परेशान हो?" खामोशी जब लम्बी होने लगी तब शाहाना ने पूछा।

"परेशान नहीं हूं लेकिन चिन्ता जरूर है।"

"क्यों?"

"अपने लिए नहीं।"

"मेरे लिए?"

"हां···तुम्हारा कॉलम अच्छा चल रहा है, अगर कोतवाल के बच्चे ने बंद

कर दिया तो तुम्हारे पैरों तले से एक अच्छी जमीन चली जाएगी।"

"मैं उसे बंद नहीं करने दूंगी।"

"सरेंडर करोगी ?"

"नहीं।"

"घाघ है। तुम उसे नहीं जानतीं।"

"जानती हूं, घाघ से ज्यादा झक्की है।"

"इसीलिए तो खतरा है।"

"इसीलिए खतरा नहीं है।"

"क्या बात कर रही हो ?"

"ठीक कह रही हूं।"

"शाहाना चौधरी, अभी आपने दुनिया देखी नहीं है।"

"जितनी देखी है, अच्छी तरह देखी है।"

"जहां इसका मतलब पूरा नहीं हुआ, वहां दूध की मक्खी की तरह लेखक-कॉलमिस्टों को निकाल फेंका है।"

"मैं लेखक नहीं हूं।"

"कॉलमिस्ट तो हो, उन्हें भी यह पनपने नहीं देता।"

"मैं वह भी नहीं हूं।"

"पता नहीं क्या कह रही हो तुम ?"

"पता हो, यह जरूरी भी नहीं।"

"चलो हम अपना मिलना-जुलना कम कर देते हैं।"

"बड़े कोतवाल से डरते हो ?"

"डरूंगा क्यों ?"

"जानते हो, आज तुम भीगी बिल्ली की तरह बात कर रहे हो ?"

"कारण है। मैं फिर कहूंगा शाहाना, तुम उसे नहीं जानतीं।"

"शाहाना चौधरी किसीके रहमोकरम की मोहताज नहीं है प्रवीर सेन"

"कॉलम बंद हो जाएगा तब क्या करोगी ?"

"मैं फ्री-लांसर हूं।"

"तो ?"

"एकसाथ कई दरवाजों पर दस्तक देती हूं, किसी एक जगह माथा

"बासु साहब की बड़ी पहुंच है, तुम रेडियो में कोई नौकरी क्यों नहीं कर लेती ?"

"पहुंच बासु साहब की है, और नौकरी मैं कर लूं ?"

"तुम्हारे संबंध अच्छे हैं उनसे।"

"अभी संबंधों को भुनाने की नौबत नहीं आई है।"

"फ्री-लांसिंग में बड़ी दिक्कतें हैं।"

"तुम कहना क्या चाहते हो ?"

"कुछ नहीं। बड़ा अपसेट हो गया हूं।"

"किस बात पर ?"

"बड़ा कोतवाल किसी मौके की तलाश में है।"

"रहने दो"

"यहां का काम बंद हो, इससे पहले तुम्हारे पास काफी काम हो जाना चाहिए।"

"मेरे पास काम की कमी नहीं।"

"फिर भी ?"

"फिर भी क्या ? रेडियो से काम मुझे लगातार मिल रहा है और अब किसी अधिकारी के पास बैठकर उसके झूठे लतीफे नहीं सुनने पड़ते, न किसीके प्रेम-संस्मरण मुझे संवेदना की गोली से पचाने पड़ते हैं।"

"इस व्यवसाय का कोई भरोसा नहीं, कभी काम मिलता है तो मिलता चला

ा है, नहीं मिलता तो एकदम नहीं मिलता। और कोई बात नहीं।"

"तुम खामख्वाह मेरे लिए परेशान मत हो, देखो, अगर सारे काम बंद भी ह
तो एक रेडियो से इतना कर लूंगी कि अकेली जान बसर हो जाए।"

"रेडियो वाले कौन-से दूध के धोए हैं?"

"तुम दूध के धुलों के पीछे क्यों पड़ गए हो? कौन है दूध का धुला? तु
?" शाहाना को अब गुस्सा आने लगा।

प्रवीर अपलक शाहाना का तमतमाया चेहरा देखता रहा।

"मैं तुम्हारी इज्जत करता हूं शाहाना!" काफी देर बाद उसने कहा।

"कहकर उसे कम मत करो।"

"अंदर-ही-अंदर आफिस में बहुत कुछ चल रहा है।"

"जानती हूं।"

"इसीलिए मैं चाहता हूं, उस प्रकाशक से तुम मिल लो।"

"मिल लूंगी।"

"मुझे बताना, क्या बात हुई?"

"श्योर। अब, एक शाम के लिए बहुत हो गया, मुझे लेकर परेशान होना बं

"नहीं प्रवीर, इस रिश्ते का कोई नाम नहीं।"
"दोस्ती ?"
"नहीं, दोस्ती से थोड़ा आगे है यह रिश्ता।"
"अंतरंगता ?"
"उससे पीछे है।"
"आखिर कोई तो नाम दो !"
"इसे अनाम ही रहने दो। नाम के कई पहलू होते हैं, और मैं नहीं चाहती, ा यह रिश्ता कई चेहरोंवाला हो।"
शाहाना की बातें कभी-कभी सुननेवालों को अवाक् कर देती हैं। उस दिन : भी अवाक् रह गया था।
"मुझे गलत मत समझना।" बहुत देर बाद उसने कहा था।
"इस तरह की बहस में दुबारा नहीं पड़ोगे तो नहीं समझूंगी।"
प्रवीर ने यह बात फिर कभी नहीं उठाई। उसके मन में इस तरह के सवाल उठे या नहीं, यह कोई नहीं जानता। दोनों का अनाम संबंध बड़ी सहज गति ो बढ़ता रहा। जितना एक, दूसरे से बता देता, उससे आगे बढ़कर कोई नहीं, दोनों को एक-दूसरे से कोई अपेक्षा नहीं थी, मिलते तो घंटों साथ बैठे न मिलते तो महीनों मुलाक़ात नहीं होती। व्यक्तिगत स्तर पर बातें फिर नहीं हुईं। दुनिया के हज़ार विषय थे बात करने के लिए, और दोनों यह े थे।
उस दिन जब प्रवीर चला गया तब शाहाना ने दिन की डाक देखी। रेडियो क कांट्रैक्ट था—पाक्षिक समाचार-समीक्षा का। वह बोर हो गई। बारह की एक समाचार-समीक्षा तैयार करने के लिए अब उसे पंद्रह दिन के

ार टटोलने थे। समाचारों का चुनाव करना था कि किसे लिया जाए, किसे
। जाए'''कांट्रैक्ट जरा झटके से खिसकाया था कि वह नीचे जा गिरा। दो
। पुस्तिकाएं थीं प्रकाशकों की—प्रकाशन-सूची, एक अमेरिकन लाइब्रेरी का
स्ट एराइवल' था।

शाहाना ने सारे कागज एक ओर खिसका दिए। डायरी खोली और दूसरे करने वाले कामों की सूची भरने लगी। मेज से खिसककर जो कांट्रैक्ट नीचे पड़ा था, उसका स्थान दूसरे दिन की सूची में सबसे ऊपर था।

'एक दिन और बीत गया' के अंदाज में वह मेज से उठी और सोने की तैयारी ी लगी।

५

किरन हंस अमूमन उसी दिन आतीं 'आफ़्टरनून' के दफ्तर में, जिस दिन
हाना आती। उसकी मेज के पास आकर घड़ी भर रुकतीं, फिर सैम की केबिन
घुस जातीं। केबिन में जाने से कभी पहले, कभी बाद में, एक प्याला कॉफ़ी पीने
लिए शाहाना से कहतीं और वह अकसर चली जाती। ऐसे ही एक दिन'''

"यह तुम्हारा बॉस कैसा आदमी है ?" पूछने लगीं।

दोनों ने 'आप' की औपचारिकता 'तुम' की सहजता पर उतार ली थी।

"क्या बात है ?" शाहाना ने सवाल का जवाब सवाल से दिया।

"वैसे ही पूछ रही थी।"

"वैसे ही कुछ पूछने वाली तुम नहीं दिखतीं।"

"यार, नहीं बताना तो मत बताओ, चिंदी की बिंदी क्यों निकाल रही हो ?"

शाहाना अपनी शोख आंखें उनके चेहरे पर टिकाए रही, फिर बड़ी संजीदगी
कहना शुरू किया, "गुण-अवगुण किसमें नहीं होता ? पढ़ा-लिखा है, तेज है'''
वेदनाएं समझता है। थोड़ा चालू है तो क्या हुआ ?"

किरन हंस की आंखों में भी एक चमक आ गई, " 'चालू है' से तुम्हारा क्या
तलब ?"

़छ दिन करके देखो, पता चल जाएगा।"
हुत किया है यार, और पता भी है। आज रोटियां बनाने लगी हूं तो इसका यह नहीं कि मैं जानती नहीं कुछ।"
ने ऐसा दावा तो नहीं किया।"
ोस्तों से भेद-भाव नहीं रखना चाहिए आदमी को।"
ेद-भाव कौन रख रहा है?"
ाब तू मुझसे पूछ कि उसने तेरे बारे में क्या कहा है तो मैं एकदम बता

़स तरह की बातों की अहमियत बढ़ाकर हम अपना ही वक्त बरबाद
"

ुम्हें उत्सुकता नहीं होती कि कोई तुम्हारे बारे में क्या कह रहा है?"
़सरे मेरे बारे में कुछ कहते हैं, इसके लिए मैं अपना वक्त क्यों जाया करूं?"
ुझे तो होती है। शायद मैं तेरी तरह इंटेलेक्चुअल नहीं हूं इसलिए।"
ुमसे यह किसने कह दिया कि मैं इंटेलेक्चुअल हूं?"
अब इतना भी नहीं समझती मैं कि कोई कहेगा कुछ?"
'आफ़्टरनून' के लिए फिलहाल तुम क्या कर रही हो?" शाहाना ने विषय ़या।
आज ही बात हुई है, ड्रामा-रिव्यू के लिए।"
कोई अच्छा ड्रामा देखा इधर?"
एक देखा था पिछले हफ्ते।"
कौन-सा?"
'लोग उदासी'?"
कैसा लगा?"
लोगों के विचार मेल नहीं खाते, लेकिन मुझे तो अच्छा लगा।"
'लोगों के विचारों से क्या होता है? जो खुद को लगेगा, वही तो लिखोगी।"
'कभी-कभी इसका भी लोग बुरा मान जाते हैं। सवाल पूछते हैं, कुछ अच्छा ा क्यों? नहीं अच्छा लगा तो क्यों?"
'इसीलिए तो कहती हूं, दूसरों की परवाह करके अपना वक्त जाया नहीं चाहिए।"

"लेकिन बातचीत करते होंगे ?"

"अपने जरूरत भर की बातें सुनने की आदत-सी पड़ गई है।"

"किसी दिन मेरे घर आ न, मेरे पति से मिलकर खुशी होगी तुझे। बड़े अच्छे हैं, मिलनसार।"

सैम की बताई हुई ग्रुप थिरेपी वाली बात शाहाना के दिमाग में ताजी हो गई।

उसने किसी दिन आने की बात कहकर विषय बदल दिया। किरन हंस को विदा करके अपनी मेज पर वापस पहुंची तो लोग बात कर रहे थे।

किरन हंस 'आफ्टरनून' की ड्रामा क्रिटिक नियुक्त हो गई थीं फ्री-लांस बेसिस पर।

रोजी कृपाशंकर का मायूस चेहरा शाहाना के सामने आ गया। अभी दो हफ्ते पहले की तो बात थी, केबिन से बाहर निकलकर सैम ने सबके सामने कहा था कि ड्रामा-रिव्यू रोज़ी लिखा करेगी। इन दो हफ्तों में क्या हो गया ?

शाहाना ने रोज़ी की मेज पर कई बार नजर फेंकी कि अगर वह उसकी ओर एक बार भी देख ले तो वह नजर देखकर समझ जाएगी, इस रद्दोबदल का कारण क्या है।

लेकिन रोजी सिर झुकाए किसी समाचार में डूबी हुई थी। शाहाना को लगा, उस समय अगर कुबेर आकर अपना खजाना भी लुटाने लगें तो उसका ध्यान नहीं

टूटेगा।

शाहाना की नजरें सामने खुले पत्रों पर फिसल रही थीं, लेकिन उसका दिमाग अतीत के दरीचों में भटकने लगा था।

उस दिन उसे रेडियो के लिए एक टॉक लिखनी थी, उसी दिन रिकॉर्डिंग थी। सुबह कई लोगों से मिलना था। घर से जल्दी चली थी। सोचा था, 'आफ़्टरनून' में ही बैठकर लिख लेगी, लेकिन मेज पर बैठकर काम करना संभव नहीं हो पाया। एक तो उस दिन काफी भीड़ थी, दूसरे वह खुद भी कई जगह भाग-भागकर थक चुकी थी। ज्वाइंट एडीटर का केबिन खाली था क्योंकि वह लंबी छुट्टी पर चले गए थे। शाहाना ने सोचा, एकांत में बैठकर वहीं लिख लेगी।

अपने कागज-पत्र लेकर वह केबिन तक पहुंची। दरवाजे को अंदर ठेला तो लगा, कोई चीज अड़ी हुई है। उसने थोड़ा जोर से ठेला। कुर्सी खिसकने की खड़-खड़ाहट हुई और दरवाजा खुल गया।

अंदर का दृश्य देखकर शाहाना स्तब्ध रह गई।

दोनों हथेलियों में चेहरा छिपाए रोज़ी बच्चों की तरह फूट-फूटकर रो रही थी। शाहाना ने अंदर दाख़िल होकर दरवाजा बंद कर लिया और उसी दरवाजे से टिककर खड़ी हो गई। कुछ देर यूंही खड़ी वह फफकती हुई रोज़ी को देखती रही फिर उसने कुर्सी दरवाजे से टिकाई, आगे बढ़कर पर्स मेज पर रखा और रोज़ी के पास आकर उसने अपना दायां हाथ उसके कंधे पर रखा।

रुलाई का वेग फूट पड़ा। रोज़ी का सिर शाहाना के सीने तक आ गया। शाहाना की उंगलियां रोज़ी के कटे बालों में हलके-हलके फिसलने लगीं।

लगभग आधा घंटा लगा जब रोज़ी की हथेलियां उसके चेहरे से हटीं। शाहाना ने मेज पर ढककर रखा पानी का गिलास उसके सामने रख दिया। रोज़ी ने दो घूंट पानी पिया और केबिन के पिछले दरवाजे से बाथरूम की ओर चली गई।

लौटकर आई तो बालों में ब्रुश फिर चुका था, होंठों पर लाली थी, इतना अधिक रोने से आंखें सूजी जरूर थीं लेकिन आंसुओं से धुलकर चेहरा निखर आया था।

प्रशंसा की हकदार। जब कृपाशंकर एक हलकी बीमारी के बाद खुदा को प्यारे हो गए तो उनकी जवान बेवा को सैम्युअल साहब ने सरेआम सीने से लगा लिया। बीवी ने बोले :

"देखो डार्लिंग, अगर हम रोज़ी की मदद करेंगे तो कल कोई तुम्हारी मदद के लिए भी आएगा। जिन्दगी का क्या भरोसा? मान लो मुझे कुछ हो जाए···"

सैम की यह सीख उसकी बीवी ने सिर माथे पर रख ली। चारों तरफ कहती फिरी कि पिछले जन्म में सैम कोई पैगम्बर जरूर था। किसीका दुख उससे देखा नहीं जाता। हर मुसीबतजदा की मदद करना उसकी आदत बन चुकी है। उसकी नेकनामी अपने एहसानों का बदला नहीं चाहती।

रोज़ी और सैम को लेकर आगे बढ़नेवाली अफवाहों को बड़ा धक्का लगा इससे। रोज़ी के गिर्द सैम का सुरक्षा-कवच दृढ़ हो गया।

ज़मीन-आसमान एक करके सैम ने रोज़ी को 'आफ़्टरनून' में नौकरी दिलवाई।

इस काम में छः महीने लग गए, लेकिन सैम लगा रहा जब तक रोज़ी ने आकर रजिस्टर पर दस्तखत नहीं कर दिए।

पहले दिन अपने केबिन में बुलाकर बधाई देते हुए सैम ने रोज़ी को बांहों में भर लिया था :

"बड़ी उम्मीदों के साथ तुझे यहां लाया हूं रोज़ी! शंकर मेरा दोस्त था, लेकिन तुम मेरी जान थीं। उसी दिन से जिस दिन मैंने तुम्हें पहली बार देखा था, इतने बरसों बाद आज तुम्हें हासिल कर पाया हूं। जानेमन, खत्म कर दो मन की उदासी। भूल जाओ उसको जो अब कभी नहीं आ सकता। उसे देखो जो सामने है, उसे भोगो जो मिल रहा है। खुश रहो, मुझे भी खुश रखो। यही तुम्हारा काम है यहां।"

सैम के आगोश में रोज़ी ऐसे सिमटी रही जैसे कोई बेजान गुड़िया हो; जिसे कहीं भी रख दिया जाए, वह चुपचाप पड़ी रहेगी। अपनी जिन्दगी में घटित होने वाली सारी बातों का हिसाब ही उसे गड्ड-मड्ड लग रहा था। कुछ सोचती-समझती इससे पहले ही उसके संरक्षण की बागडोर सैम ने अपने हाथ में ले ली थी।

रोज़ी के साथ ही 'आफ्टरनून' में दो अप्सराएं और आई थीं, ऊंची-ऊंची सिफारिशें लेकर। रोज़ी न अप्सरा थी, न उसकी कोई सिफारिश थी। लेकिन सैम ने रूप और सिफारिश, दोनों को नजरअंदाज करके मैनेजमेंट से रोज़ी को मांग लिया था।

"खूबसूरत चेहरे काम नहीं करते, मुझे तो ऐसा आदमी चाहिए जो प्रोफेशन को समझता हो," उन्होंने कहा था इस बात के बावजूद कि वह जानते थे, रोज़ी को पत्रकारिता की वर्णमाला भी उन्हें ही सिखानी होगी।

"आप सीधे क्यों नहीं कहते कि आपको प्रोफेशनल चाहिए!" जनरल मैनेजर ने मजाक किया था।

सैम भी मुसकुराए थे :

"यह जुर्रत कोई नहीं करेगा।"

"आदमी के मन का कोई भरोसा नहीं।"

"डार्लिंग, जब तक मैं दफ्तर की इस कुर्सी पर बैठा हूं तब तक मेरे खिल जाने का जोखिम कोई नहीं उठाएगा। तुम नाहक परेशान मत हुआ करो। अ किसीने कुछ देखा भी तो अनदेखा कर देगा।"

"काम का भी तो हर्जा होता है!" रोज़ी ने एक कमजोर-सी दलील रखी

"इस आफिस में अगर तुम मन लगाकर दो घंटे काम रोज़ कर दो तो दिन के लिए काफी है।"

"आफिस की एक मर्यादा भी होती है।"

"बेकार की बातों में लगी रहती हो," सैम उस दिन रोज़ी से पहली बार चि था, "हम कौन मर्यादा तोड़ काम कर रहे हैं? आजकल के जीवन का एक ख अंग है, मिलना, प्यार करना···" उसने रोज़ी को पूरे वेग से अपनी बांहों में स लिया था। उसका माथा चूमते हुए बोला था, "बेकार के पचड़े में न पड़ा कर समय बड़ा कीमती है, भागता जा रहा है। इसे जियो। इसका फायदा उठाओ।

रोज़ी सहम गई थी।

अपनी गिरपत ढीली करके सैम ने रोज़ी का माथा फिर से चूम लिया था

"आज से तुम हमारी सेक्रेटरी जनरल हो। नम्बर वन। इस केबिन में अ वाली हर लुगाई पहले तुम्हारे पास आएगी, तुम उसे पास कर दोगी तब वह पास आएगी। फिर हम एक ग्रुप बनाएंगे। मिल-जुलकर सब कुछ करेंगे।"

नौकरी पर आने के छः महीने बाद रोज़ी की नौकरी पक्की हो गई थी। स ही एक इंक्रीमेंट मिला था। सम्पादकीय मण्डल से उसे रिपोर्टिंग में डाल दि था। इससे लगभग ढाई सौ रुपये महीने की उसकी आमदनी बढ़ गई थी।

'आफ़्टरनून' में जितना सम्मान रोज़ी को मिला, उतना शायद सैम की बी को भी नसीब नहीं हो पाया था। हॉल के दरवाजे से अंदर प्रवेश करती तो स चेहरे खिल पड़ते, जैसी खिली बहार लेकर आई हो। लोग कुछ पूछते या कहते कितना सम्मान जताते, कितना अपनापन दिखाते कि कभी-कभी रोज़ी को ब अजीब लगता। कुछ दिनों तक तो वह बेवकूफी की हद तक उनसे प्रभावित ह रही, फिर उसे धीरे-धीरे पता चल गया कि ये व्यवहार 'हाथी के दांत' हैं, दि के लिए और सैम्युअल की नजर में ऊपर उठने के लिए।

लगभग दो हफ्ते बाद सैम्युअल साहब लौटे। दफ्तर आए तो आव देखा न ताव, दनादन फायरिंग शुरू हो गई। सबको अयोग्य करार दिया गया। न किसी-को लिखने की तमीज थी, न पत्रकारिता की। कौन लेख कब जाना चाहिए, इसकी तो वर्णमाला ही 'आफ्टरनून' में किसीको नहीं मालूम थी। यहां तक कि भाषा भी लोग नहीं जानते। सैम्युअल ने भरे हॉल में खड़े होकर जोर-जोर से कहा, "आप लोगों से बेहतर भाषा मेरा बच्चा लिख लेता है।"

रोजी उस दिन किसी दफ्तर के काम से ही बाहर गई थी, शायद किसीको इंटरव्यू करना था, या कहीं से कुछ तसवीरें लानी थीं छांटकर। लौटी तो सैम नहीं था केबिन में, एकसाथ ही कई आवाजें उसे सुनाई पड़ीं :

"आज तो मरवा दिया सबको आपने मिसेज शंकर !"

"क्यों, क्या हुआ ?" रोज़ी को फिर भी नहीं लगा कि बात उतनी गम्भीर हो चुकी है।

"सैम साहब आपे से बाहर हो रहे थे उस लेख के पीछे।" एक साहब बोले।

"किस लेख के पीछे ?"

"वही, जिसकी जगह आपने अपना कॉलम लगाया था।"

"लेकिन..."

"

"दरअसल, वह लेख सैम साहब खुद ही शैड्यूल कर गए थे। उसका विज्ञाप
भी चला गया था···"

"यह बात किसीने बताई नहीं मुझे ?"

"कौन बताएगा आपको ?" न जाने कहां से सैम्युअल साहब अवतरित हे
गए, "आपको यहां काम करते दो साल हो गए हैं, यह बात आपको मालूम होनं
चाहिए कि मैगजीन सेक्शन के अगले बारह अंकों में क्या जा रहा है। कभी पल
के अपना ही अखबार देखतीं आप तो आपको पता चल जाता कि वह लेख वि
पित हो चुका था। कॉलम ? क्या महत्त्व है उसका ? अखबार के लिए क
जरूरी नहीं होते ?" सैम के गुस्से से फट पड़े चेहरे को रोज़ी ने अपनी पथ
आंखों से एक बार देखा फिर उसने सिर झुका लिया।

सैम और भी बहुत कुछ कहता रहा, कुछ खास उसके लिए, कुछ सामू
रूप से सबके लिए। रोज़ी समझ गई, जिस काम के लिए उसे नौकरी दी गई
वह काम ठीक से निभ नहीं पाया है। और अपना विरोध ज़ाहिर करके सै
ऐलान कर दिया है कि उसके धैर्य की सीमा खत्म हो गई है।

सैम को जवाब देने का कोई मतलब नहीं था। उसके खिलाफ एक मोर्चा
तैयार हो गया था, जो सैम की नाराजगी का फायदा उठाना जानता था।
दिन से रोज़ी का रवैया बदल गया। उसकी खिलखिलाती हंसी खामोशी में ब
गई। अपने पूरे दफ्तरी परिवेश के प्रति वहां आने के बाद पहली बार सज
गई।

रोज़ी के प्रति सैम के व्यवहारों में ठंडक आने लगी। वह उससे नजर ब
लगा। कभी आते-जाते सामने पड़ जाता तो तमतमाया हुआ चेहरा लेकर नि
जाता। अपने एक-दो चमचों को छोड़कर उसने किसीको केबिन में नहीं बुला
उस दिन के बाद एक खास तरह का तनाव 'आफ़्टरनून' में सबने महसूस कि
था, लेकिन किसीमें इतनी हिम्मत नहीं थी कि कुछ करे।

रोज़ी अगर चाहती तो सैम की ठंडक में गुनगुना सुरूर भर सकती थी। अ
आप केबिन में जाकर उससे मिलती, उसके सीने से लगकर रो पड़ती, अपने
की माफ़ी मांगती और सैम अपने-आपको महानतम घोषित करते हुए उसे सी
लगाकर माफ कर देता। सब कुछ सामान्य हो जाता। लेकिन रोज़ी ने ऐसा
किया। इस तनाव से उसे परेशानी है, यह भी उसने जाहिर नहीं किया, बल्कि अ

काफी अरसा इसी तरह बीत गया। क्रोध की दहकती आग चिनगारी बन गई फिर राख के ढेर में जाने किधर दब गई। सैम ने अपने-आप रोज़ी को माफ कर दिया। कम-से-कम ऊपर से रोज़ी का व्यवहार भी सामान्य हो गया। 'आफ़्टरनून' में उनका सम्मान धीरे-धीरे वापस आने लगा। दरार अगर कहीं थी तो रोज़ी के मन में, और उसे कोई देख नहीं सकता था।

उन्हीं दिनों एक विस्फोट फिर हुआ। न जाने किस बात पर सैम चिढ़ गए और बमबारी फिर शुरू हो गई। रोज़ मीटिंगें बुलाई जाने लगीं, उन मीटिंगों में नाम ले-लेकर एक-एक की फज़ीहत होती। लेकिन चूंकि सभी शामिल थे उसमें, इसीलिए किसीने अलग से इस बात का बुरा नहीं माना। रोज़ी ने एक बार फिर राहत की सांस ली। सैम की घटिया सहानुभूति के टूट जाने का उसे कोई दुख नहीं हुआ।

इसी आलम में शाहाना आई थी 'आफ़्टरनून' में कॉलमिस्ट बनकर। उसने रोज़ी के रुतबे की बात सुनी, सैम से उसके संबंधों की बात सुनी···मन-ही-मन इस पूरे माहौल में रोज़ी की भूमिका की बात सोचती रही। उसने किसीसे कुछ कहा नहीं, लेकिन रोज़ी के प्रति हमदर्दी उसके मन में औसत से ज्यादा थी और यह बात उसने महसूस की। वह रोज़ी के कुछ और करीब आना चाहती थी। उसके सुख-दुख में शामिल होना चाहती थी। लेकिन कोई मौका नहीं आ रहा था सामने।

तभी एक दिन तीसरा विस्फोट हुआ था। सैम की किसी 'जान-जान' लेखिका की रचना रोज़ी ने बुरी तरह काट-पीट दी थी। चार पृष्ठों की बकवास को दो पृष्ठों में तराश दिया था।

छपे हुए लेख का आकार देखकर सैम साहब आपे से बाहर हो गए थे। असल, पहला प्रूफ और छपा हुआ लेख मेज पर फैलाकर उन्होंने रोज़ी को केबिन में बुलाया और शुरू हो गए। सामने कोई मोहतरमा बैठी थीं। यह बात रोज़ी को बाद में पता चली कि वही उस लेख की लेखिका थीं।

उस दिन खुद पर जब्त पाना मुश्किल हो गया था। ज्वाइंट एडीटर के कमरे

में जाकर रोज़ी फूट-फूटकर रोई थी।

शाहाना और रोज़ी के बीच की खामोश दीवार उस दिन अपने-आप ढह गई थी।

शाहाना और रोज़ी जब भी समय मिलता, एक प्याला कॉफ़ी के लिए चली जातीं। शाहाना एक हमदर्द श्रोता की तरह और रोज़ी एक मुक्त वक्ता की तरह। जितनी देर में कॉफ़ी आती, दोनों बैठकर सिप करते-करते उसे खत्म करतीं। रोज़ी विवरणसहित सैम की गैरवफ़ादारी के किस्से सुनाती और शाहाना उसे ध्यान से सुनती।

रोज़ी ने स्वीकार किया था कि शुरु में शाहाना उसे एकदम पंसद नहीं आई थी।

'पहले ही क्या कम थीं कि एक और आ गई' के अंदाज में रोज़ी ने शाहाना की ओर देखा था। लेकिन वक्त की परतों के खुलने के बाद जब शाहाना मामूली से हटकर लगी तो रोज़ी ने उसे पास आने दिया, बल्कि खुद भी चलकर उसके नजदीक पहुंची। ऊपर से ज़ाहिर कुछ नहीं हुआ लेकिन दोनों के बीच का फ़ासला न जाने कब अदृश्य हो गया।

'आफ्टरनून' से चलते समय शाहाना ने आखिरी बार रोज़ी की मेज की ओर ग्व किया।

वह जा चुकी थी।

शाहाना ने तय किया, घर चलकर रोज़ी को फोन करेगी। लेकिन उसकी जरूरत नहीं पड़ी। अभी वह कमरे में दाखिल हुई ही थी कि टेलिफोन की घंटी बजने लगी।

टेलिफोन रोज़ी का था। वह पूछ रही थी कि अगर शाहाना खाली हो तो वह आ जाए।

शाहाना खाली थी।

लगभग आधा घंटे बाद दोनों सहेलियां कमरे में धुएं के छल्ले उड़ा रही थीं।

"तूने उससे पूछा नहीं ?" शाहाना पूछ रही थी।

"क्या ?" रोज़ी ने प्रश्न किया।

"किरन को वह कॉलम क्यों दिया उसने ?"

"उसकी मरजी थी, दे दिया। इसमें पूछना क्या था ?"

"वह कॉलम तुझे मिलना था।"

"तो क्या हुआ ? मैं लिखती तो मुफ्त छपता, वह लिखेगी मिलेंगे।"

"पैसों की क्या कमी है उसे ?"

"काम की कमी मुझे भी नहीं है।"

"एक कॉलम हाथ में होने की बात और होती है।"

"नौकरी पक्की है, मेरी बला से वह झाड़ू लगवा ले।"

"ये बात नहीं रोज़ी ! वह तेरे मियां का दोस्त है।"

"दोस्ती का धर्म निभा लिया है हमने।"

"तनाव का रहना किसीके लिए भी अच्छा नहीं होता।"

"तनाव को मैंने न्यौता नहीं दिया है, न ही उसे दूर करने के लिए हो सकती हूं।"

"बहुत नाराज हो गई है ?"

"नाराज होने की बात नहीं है ? दो कौड़ी की औरतों को पास बिठ फिर बुलाकर फज़ीहत करता है।"

"तुम उसे अकेले में समझा दो।"

"क्या समझा दूं ?"

"यही कि कोई गलती हो जाए तो सबके सामने चीखे-चिल्लाए नह में बुलाकर बता दे।"

"तू समझती है, मेरी बात वह मान लेगा ?"

"तुम कोशिश तो करो।"

"कोशिश करे उसकी अम्मा, मैंने उसके बड़े ताव सहे हैं अब नहीं सह

"खामख्वाह लोग बात बनाएंगे।"

"वैसे बात नहीं बनाते ?"

"लोग कहते हैं, सैम ने तुम्हारे लिए बहुत किया है?"

"मानती हूं, लेकिन उस एक किए को कब तक भुनाता रहेगा ? औ मेरे लिए उसने किया, तो उसके लिए भी तो किसीने किया होगा और

हो सकता है, मैं भी किसीके लिए कुछ करने लायक हो जाऊं।"

रोज़ी के तर्क में दम था। शाहाना मुसकुराई।

"नाटक-समीक्षा किरन हंस के पास चले जाने से तुम्हें कोई डिप्रेशन तो होगा ?"

"होना तो नहीं चाहिए, लेकिन अगर हुआ भी तो दस दिन की छुट्टी ले कहीं चली जाऊंगी।"

"उससे क्या होगा ?"

"मन बदल जाएगा।"

"वापस आने पर···"

"बात पुरानी पड़ चुकी रहेगी। धीरे-धीरे मैं भी आदी हो जाऊंगी।"

"यह नहीं हो सकता कि तुम सैम साहब से जाकर कहो कि नाटक-सम तुम करोगी, किरन हंस को कुछ और दे दिया जाए ?"

"नहीं।"

"कोई खास वजह ?"

"तुम जानती तो हो कि सैम को पटाने का एक ही तरीका है।"

"क्या ?"

"ब्लू बुक्स और नंगी औरतों की तसवीरें···या···"

"तो ?"

"तो क्या ? मैं वे किताबें कहां से लाऊं ? तसवीरें कहां से जुटाऊं ?"

"तुम्हें लाने या जुटाने की जरूरत क्या है ? तुम उसकी दिलचस्पी में शा हो जाओ, बाकी काम तो वह खुद ही कर लेगा।"

"तुम भी यही कहोगी ?"

"दुनिया यही कहेगी रोज़ी !"

"मुझसे नहीं होता।"

"तुम सैम को कितने दिनों से जानती हो ?"

"बहुत पहले से।"

"शंकर इसके बहुत नजदीकी दोस्त थे न ?"

"हां।"

"उनकी दिलचस्पी के दायरे उन्हें मालूम थे ?"

"जरूर मालूम रहे होंगे।"

"तुम्हारी-इसकी दोस्ती कब हुई ?"

"सच पूछो तो कभी नहीं। इसने अपनी ही ओर से सब कुछ मान
चूंकि इसके दोस्त की बीवी थी, इसलिए सहज-सुलभ थी। प्योरिटन
लेकिन इधर-उधर मुंह मारना मुझे पसंद नहीं।"

शाहाना की उंगलियों में जली सिगरेट धीरे-धीरे सुलगती रही। उ
किसी अदृश्य बिंदु पर टिक गई थीं।

रोज़ी कह रही थी :

"जब मैं यहां आई थी तो मुझे सेक्स-सेक्रेटरी बना रहा था। कहता
मेरे पास बैठी रहो। सेक्स की फूहड़तम बातें करता। ऐसी-ऐसी हरकतें
कोई स्वस्थ दिमाग कर भी नहीं सकता, अब तुम्हें क्या बताऊं ? मुझे
हुए भी लज्जा आती है। टेलिफोन का रिसीवर हाथ में पकड़ाकर पास
लेता ताकि कोई एकदम से आ जाए तो लगे, मैं फोन कर रही हूं और···
से सारा जिस्म नाप लेता···कहने लायक बातें नहीं हैं शाहाना, लेकि
कुछ सहा। नौकरी को लात मारने की हालत में नहीं थी इसलिए स
कहीं मन में यह बात भी थी कि हो सकता है, बीवी से इसके तन-मन क
बुझती हो इसलिए भड़ास निकालता है···कोई बात नहीं···इसे अपन
लिया था मैंने···लेकिन यह तो सेक्स-गुरु बनने के चक्कर में है। जो लड़
आती है, उसीपर हाथ मारने लगता है। आधुनिका मैं हो सकती हूं, लेकि
नहीं कि इसे भगवान रजनीश मान लूं और ग्रुप सेक्स के मज़े लेने दूं···"

रोज़ी ने एक नई सिगरेट सुलगाई और दीवान पर अधलेटी-सी हो ग

"मुझे तो सेक्स शब्द से नफरत हो गई है···हैरानी होती है कि श
सौंदर्यबोध का आदमी इसका दोस्त कैसे बना ?" रोज़ी ही फिर बोली।

"कभी-कभी मुझे भी हैरानी होती है कि सैम को आदतों का पता इस
को है या नहीं···" बहुत देर बाद शाहाना बोली।

"जहां तक मैं समझती हूं, जरूर है···पिछले दिनों इसके घर में एक

"एक हद तक यह आदमी बेवकूफ भी है।"

"बेवकूफ तो वह सारे जमाने को समझता है।"

"इसीलिए उल्टी-सीधी सारी बातें बता देता है?"

"बातें तो इसलिए बताता है कि डींग मारने का रोग है इसे।"

"एक दिन मुझसे भी कह रहा था कि लड़कों के प्रति कोई आकर्षण नहीं है तो किसी लड़की से ही दोस्ती कर लो।"

"तुमने क्या कहा?"

"कह दिया, सोचूंगी।"

"उसका मतलब यह रहा होगा कि मुझमें क्या बुराई है जो दोस्ती नहीं कर रही हो?"

"जानती हूं।"

"तुम्हें दो टूक जवाब देना चाहिए था।"

"उससे क्या फायदा? घंटे भर उसका भाषण सुनना पड़ता।"

"काश, मैं भी तुम्हारी तरह फ्री-लांसर होती! रोज-रोज इसकी मनहूस शक्ल तो न देखने को मिलती।"

"मन की आंखें बंद कर लो रोज़ी, कहीं कोई दिखाई नहीं पड़ता।...तुम किसीसे दोस्ती क्यों नहीं कर लेतीं?"

"चिराग लेकर तो निकली थी। सोचा था, इसीको 'अपना हमदम, अपना दोस्त' रखूंगी।"

"वैसे आदमी यह बुरा नहीं है। बाहर आकर देखो, खूंखार भेड़िये नजर आएंगे चारों तरफ। सैम तो फिर भी बेहतर है, उतना बेशर्म नहीं, अपनी इज्जत-आबरू से डरता है। कहीं से बुजदिल भी है।"

"किसीको यह मेरे पास भी तो नहीं आने देता। अजीब दो तरफी चाल चलता है, एक ओर कहता है, मुझसे नहीं तो किसी और से ही दोस्ती कर लो। दूसरी ओर किसीसे बात करती हूं तो जल-भुन जाता है।"

"तुझसे प्यार करता हो शायद।"

"हुंह...प्यार करे अपनी अम्मा से! मैं तो सच कहती हूं शाहाना, इसकी अपनी बेटी होती तो उसपर भी यह कोई न कोई प्रयोग जरूर करता।"

"छि:!"

"सच !"

"तो तू किरनवाला कॉलम वापस नहीं मांगेगी ?"

"नहीं।"

"उससे समझौता भी नहीं करेगी ?"

"नहीं।"

"फिर मिलाओ हाथ, एक से दो तो हुए।"

"दो क्यों, दो से तीन कहो।"

"तीसरा कौन ?"

रोज़ी पहली बार मुसकुराई :

"प्रवीर को छोड़ देगी ?"

"ओ···उसे तो भूल ही गई थी।"

"प्रवीर बहुत अच्छा आदमी है शाहाना !"

शाहाना ने गौर से रोज़ी की ओर देखा :

"तुझे कोई गलतफहमी तो नहीं हो रही है ?"

"गलतफहमी क्यों होगी ? क्या यह सच नहीं है ? तेरा अच्छा-भला दोस्त
"

"बेशक, लेकिन मेरा प्रेमी नहीं है।"

"तू किसीसे प्रेम नहीं करती ?"

"करती हूं।"

"वह प्रवीर नहीं है ?"

"नहीं।"

"फिर ?"

"यह बात किसी और दिन। घड़ी देख···"

ग्यारह बज रहे थे। घर जाने का वक्त नहीं था। उस रात रोज़ी शाहाना के

६

प्रवीर सेन ने जिस प्रकाशक से मिलने को कहा था, शाहाना अभी मिल नहीं
ई थी। दो-एक बार फोन करने की कोशिश की, नम्बर मिला नहीं। कुछ काम
ादा था और रोज़ी की परेशानियां भी करीब आ गई थीं। कहीं यह बात भी थी
 वह तय नहीं कर पा रही थी कि किसी प्रकाशक के यहां काम करने में उसका
न रम पाएगा या नहीं। और इसी पसोपेश में तीन महीने बीत चुके थे। अब तो
से वह काम मिलना होगा, मिल चुका होगा। दो महीने से प्रवीर भी बाहर था।
सके जरिये कोई सूचना नहीं मिल सकती थी। फिर भी उस प्रकाशक को एक बार
न करके पता कर लेने में कोई हर्ज नहीं था। एक दिन 'आफ़्टरनून' से ही उसने
न मिलाया और मैनेजिंग एडीटर से मिलने का दिन-समय तय कर लिया।

जिस दिन जाना था, उस दिन सुबह से ही उसका मूड ऑफ था। सोमा तीन
न से नागा कर रही थी, कमरे की सफाई, रसोई के बर्तन, कपड़े सब जहां-के-तहां
 थे। जब काम पर किसीको लगाया नहीं था तब भले सब कुछ खुद कर लिया
रती थी, जब बमुश्किल तमाम एक लड़की मिल गई तो अपने ही कामों से परहेज
ने लगा था उसे। एक बार मन में आया, आज और देखे लेकिन आलस को एक-
रगी झटका देकर वह उठी। कमरे की सफाई, किचन का मसौदा तैयार करने में
फी समय लग गया था। रेडियो के लिए एक समाचार-समीक्षा भी लिखनी थी।
रे अखबार क्रम से लगाकर उसने रख लिए थे। नाश्ते के बाद लिखने बैठी तो मन
ड़ गया। साबुन में भीगे कपड़े उसका इंतजार कर रहे थे। थोड़ी देर बेमन से
म घसीटती रही। पता नहीं क्या समाचार लिए, क्या छोड़े? दस मिनट की
ीक्षा समाप्त कर बाथरूम में पहुंची और कपड़े धोने लगी।

नहा-धोकर कमरे में दुबारा पहुंची तो दो घंटे का समय बीत चुका था। तख्त
 बिखरे अखबार उठाकर उसने एक ओर रखे, किताबें इधर-उधर करके थोड़ी
ह बनाई। सपोर्ट के लिए कुशन कुर्सी से खींचकर छाती के नीचे दबा लिया
र औंधे मुंह लेट गई। इलिया कज़ान का 'एसेसिन' पिछली रात पढ़ना शुरू
या था। छोड़ा हुआ पन्ना खोलकर वह आगे के पन्नों में डूबती गई। समय का
ान जाता रहा।

दो बजे पोस्टमैन ने घंटी न बजाई होती तो वह भूल चुकी थी कि तीन बजे उसे किसीसे मिलने जाना है। रेडियो के चेक की रजिस्ट्री उसने साइन करके रख ली और हड़बड़ी में तैयार होने लगी। सीढ़ियों का दरवाजा जब उसने बंद किया तब ढाई बज चुके थे। अगर स्कूटर न मिला तो टैक्सी में लगभग अट्ठारह रुपये खर्च होने थे। घर से वहां तक की दूरी कुल पच्चीस मिनटों की थी।

देर हो जाने के कारण थोड़ी हड़बड़ी तो थी लेकिन गंभीरता का स्थायी भाव लेकर शाहाना जब उस प्रकाशन संस्थान में पहुंची तो मैनेजिंग एडीटर की कुर्सी पर एक प्रिंस चार्मिंग नजर आए।

"मेरा नाम शाहाना चौधरी है। मैंने फोन पर समय लिया था..."

"जी।"

"सुना है, आपने अनुवाद की कोई योजना शुरू की है ?"

"जी।"

"एक सैम्पल आप मुझसे भी करवा लीजिए।"

"हमारी योजना हिन्दी की है। हम अंग्रेजी से हिन्दी अनुवाद कराने की बात सोच रहे हैं।"

"पुरानी योजना है आपकी...अभी तक कोई मिला नहीं ?"

"कायदे का आदमी नहीं मिला।"

"मुझे देर तो हो गई है लेकिन अगर आप चाहें तो मुझे एक मौका दे सकते हैं।" शाहाना ने अपनी ही सिफारिश की।

"लेकिन आप तो अंग्रेजी में लिखती हैं।"

"मैं हिन्दी में भी लिख सकती हूं।"

"हिन्दी की एज्यूकेशन कितनी है आपकी ?"

"हिन्दी मेरी मातृभाषा है।"

"आप हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं के लिए क्यों नहीं लिखतीं ?"

"वहां पैसा बहुत कम मिलता है।"

"हमारे यहां पेमेंट के रेट बहुत अच्छे नहीं हैं।"

"कितना पे करते हैं आप प्रति पेज ?"

"सात रुपये किसी खास पुस्तक के, वरना नार्मल रेट पांच रुपया प्रति पेज।"

"आपकी फर्म अच्छी मानी जाती है।"

क कह रही हैं।"
श्वास है कि विदेशी फर्में शोषण कम करती हैं, रुपये-पैसों के मामले

मंग का चेहरा तमतमा गया।
हां बेईमानी नहीं होती।" उन्होंने कहा।
ाना कम क्यों ?"
इससे भी कम में काम करने वाले लोग हमें मिल जाते हैं।"
मतलब काम की क्वालिटी नहीं देखते आप लोग ?"
टी हमारी पहली शर्त होती है।"
म पैसों में अच्छे अनुवाद आपको कहां मिल जाते हैं ?"
छिए तो मिलते हैं। कभी-कभी तो इससे कम में भी मिल जाते हैं।"
ीजिएगा, नाहक आपका वक्त जाया किया।"
ने उठने की तैयारी की।
मिंग को उसके अचानक उठ जाने की उम्मीद नहीं थी। उन्होंने हड़-
ारा फेंका :
ाहें तो हमारे मैनेजिंग डायरेक्टर से मिल सकती हैं। हमारे यहां
प से वही तय करते हैं सब कुछ।"
कभी देखूंगी।"
एडिटिंग कर सकती हैं आप ?" मैनेजिंग एडीटर का दूसरा आश्वासन
ा गिरा।
ी कोशिश में शाहाना ठहर गई।
सकती हूं।" उसने जवाब दिया।
की है कभी ?"
साल का अनुभव है मेरा।" शाहाना झूठ बोली।
के लिए ?"
ा ने अपने बैग से एक साफ-सुथरा खुला लिफाफा निकालकर प्रिंस
ओर खिसका दिया।
बायोडाटा है, देख लीजिए।" उसने कहा।
ाांमिंग ने लिफाफे के अंदर से कागज निकाला। फुल स्केप पर टाइप

किए हुए अक्षरों पर उनकी नजर दौड़ने लगी। शाहाना कुछ समय तक प्रिंस चार्मिंग की कागज पर दौड़ती, झुकी नजरों का जायजा लेती रही। लेकिन जब बायोडाटा पढ़ने में उन्होंने जरूरत से ज्यादा समय लगाया तब उसने इलिया कज़ान का 'एसेसिन' खोला और हिप्पियों के हुजूम में माइकेल विण्टर को ढूंढ़ने लगी।

"कितने साल से फ्री-लांसिंग कर रही हैं आप ?" प्रिंस चार्मिंग ने पूछा।

"सात साल से।" शाहाना की नजर किताब से उठकर प्रिंस चार्मिंग के चेहरे पर टिक गई।

"बहुत काम किया है आपने इस अर्से में ?" प्रिंस चार्मिंग ने खुद से ही कही यह बात, फिर एक मिनट की माफी मांगकर चुपचाप केबिन से बाहर हो गए। वह भूल गए कि अनुभव उन्होंने कापी एडिटिंग का पूछा था, फ्री-लांसिंग का नहीं।

शाहाना को कुछ अजीब-सा लगा, लेकिन फिर वह अपनी किताब में खो गई।

लगभग आधा घंटा बीत गया। प्रिंस चार्मिंग नहीं लौटे।

शाहाना ने तय किया, और अधिक इंतजार वह नहीं करेगी। वह उठने को हुई, फिर यह सोचकर कि पांच मिनट और सही, उसकी नजर किताब पर गड़ी रही।

पांच मिनट भी बीत गए।

शाहाना ने किताब बंद कर दी और बेझिझक उठ खड़ी हुई। केबिन के बंद दरवाजे तक पहुंचकर वह डोरनॉब पर हाथ रखने ही वाली थी कि वह घूमता नजर आया। शाहाना दो कदम पीछे हट गई ताकि दरवाजा अंदर की ओर घूम

"जब आपने इतना समय यहां लगाया ही है तो थोड़ा और सही। दरअ
मैं आप ही के बारे में अपने लिटरेरी एडवाइजर की सलाह लेने चला गया थ
शाहाना का बायोडाटा अभी भी उनके हाथ में था, "आप उनसे मिल लें तो अ
हो। इत्तिफ़ाक से वह इस समय खाली भी हैं।"

राज़ी न होने का कोई कारण नहीं था।

शाहाना को लेकर प्रिंस चार्मिंग दूसरी मंजिल के एक अपेक्षाकृत बड़े वे
के सामने जाकर खड़े हो गए। दरवाजे पर दो बार ठक-ठक करके उन्होंने डो
घुमाया और अंदर की ओर ठेला।

"आइए !" उन्होंने पीछे मुड़कर शाहाना से कहा।

एक बड़ी मेज के पीछे जो विदेशी सज्जन नजर आए, वह और चाहे ज
हों, किसी प्रकाशन संस्थान के लिटरेरी एडवाइजर कतई नहीं लगे।

प्रिंस चार्मिंग ने परिचय कराया तो उन्होंने शाहाना की ओर हाथ
दिया।

शाहाना ने ससम्मान अपना दाहिना हाथ आगे किया। हलके झटके से
हाथ मिले, फिर अलग हो गए।

प्रिंस चार्मिंग की भूमिका समाप्त हो चुकी थी। औपचारिक माफी म
वह कमरे से बाहर हो गए।

"मैं डेविड हूं···" लिटरेरी एडवाइजर ने अंग्रेजी में कहा।

"मैं शाहाना चौधरी···"

"आपका बायोडाटा मेरे सामने है, आप, हमारी कंपनी के बारे में
जानती है ?"

"आपकी कंपनी अंतर्राष्ट्रीय ख्याति की है, दो सौ सालों से आप लोग
अपना प्रकाशन चला रहे हैं। आपके कार्यालय देश के सभी महानगरों में है··

थोड़ी देर की खामोशी के बाद :

"हमारे यहां नौकरी करेंगी आप ?"

"निर्भर करता है।"

"किस बात पर ?"

"किस तरह का काम मुझे करना होगा, आपके वर्किंग आवर्स क्या होंगे
कितना पैसा आप मुझे देंगे।"

"इस समय एक कापी एडीटर की जरूरत है हमें और शुरू में तीन महीने तक हम आठ सौ रुपया महीना दे सकते हैं। अगर आपका काम अच्छा रहा तो प्रमोशन की गुंजाइश भी है। दो महीने का बोनस साल में और भारतीय कंपनी रूल के हिसाब से अन्य सभी सुविधाएं। काम का समय सुबह साढ़े नौ से शाम साढ़े पांच तक है। शनिवार, रविवार ऑफ़...लेकिन एक्जीक्यूटिव पंद्रह मिनट पहले आ जाते हैं।"

"कापी एडीटर एक्जीक्यूटिव नहीं होता।"

"वह भी एक्जीक्यूटिव होता है।"

"उसके लिए साढ़े सात मिनट की रियायत होगी ?"

डेविड मुसकुराए :

"मैनेजिंग एडीटर को इतना पावर हम देते हैं कि अगर वह चाहे तो पूरे पंद्रह मिनट की रियायत दे सकता है।"

"मुझे सोचने के लिए वक्त चाहिए।"

"कल बता दीजिए।"

"कल नहीं, परसों तक फोन कर दूंगी।"

"हम ज्यादा इंतजार नहीं कर पाएंगे।"

"काम शुरू करने में मुझे एक सप्ताह का समय लग जाएगा।"

"एक बार पता चल जाए कि आप ज्वाइन कर रही हैं फिर हम इंतजार कर सकते हैं।"

"एक शर्त है।"

"हूं..."

"तीन-चार दिन काम करके देखूंगी, अगर पसंद नहीं आया तो नहीं

।फ़्टरनून' के आफिस में जाकर प्रवीर का पता करे। लेकिन घर से फोन करके बान की जा सकती थी या पता लगाया जा सकता था। बासु साहब की कृपा से ार एक टेलिफोन उसे इतनी जल्दी मिल गया था तो उसका फायदा भी तो ठाना चाहिए। और फोन न भी करे तो दो दिन बाद शनिवार पड़ने वाला था। ीर का पता दो दिन बाद भी लगाया जा सकता था। तीन सौ अड़तालीस पृष्ठों जो किताब उसने रात शुरू की थी, इस समय उसकी पकड़ सबसे ऊपर थी। व कुछ छोड़कर उसे खत्म करना जरूरी था। जैसे-तैसे समाचार-समीक्षा लिख ली थी।

सामने से गुजरता हुआ स्कूटर रोककर वह उसपर बैठ गई। दस-ग्यारह ये का खून उसने कबूल कर लिया।

तीसरे दिन फोन करके शाहाना ने उस कम्पनी की नौकरी कबूल कर ली ौर ठीक एक सप्ताह बाद जब वह प्रिंस चार्मिंग से दूसरी बार मिली :

"मैं जानता था, आप आएंगी जरूर···" शाहाना की आंखों में झांककर प्रिंस ार्मिंग ने कहा।

"भविष्य का खासा ज्ञान है आपको···" शाहाना सहज भाव से बोली।

"खासा तो नहीं, लेकिन थोड़ा-बहुत दखल है···"

"फिर तो किसी दिन आपसे अपना भविष्य भी पूछूंगी !" वह मुसकुराई।

"किसी दिन क्यों···शुभ काम में देर नहीं होनी चाहिए···"

"आज तो मैं पहली बार नौकरी पर आई हूं···पता नहीं···"

"काम इतना मुश्किल नहीं है···आप बेफिक्र रहें···कोई दिक्कत पड़ी तो मैं हां किसलिए हूं···"

"थैंक्यू मि० राय···अब बताइए, मुझे करना क्या होगा ?"

"आपके लिए एक पाण्डुलिपि रखी है···लेकिन इतनी जल्दी क्या है···आज ापका पहला दिन है, आइए आफिस में आपका परिचय करा दूं···"

शाहाना प्रिंस चार्मिंग के साथ सबसे मिल-मिलाकर केबिन में वापस आ ई। उसके लिए एक मेज प्रिंस चार्मिंग के केबिन में लगा दी गई थी।

नौकरी की शुरुआत बड़ी सहज लगी। उस दिन सुबह जल्दी उठ गई थी। समय से चाय पी, अखबार पढ़ा, फिर नहाने-धोने लगी। सोमा सात बजे आ गई ी, उसने एक घंटे में चाय, नाश्ता, लंच···सब कुछ तैयार कर दिया। आठ बजे

लंच का पैकेट बैग में डालकर शाहाना चल पड़ी थी नौकरी करने, जै
बचपन में स्कूल जाया करती थी।

दिन भर एक जगह बंधकर बैठना उसे बड़ा नागवार गुजरा। दोपहर
बार-बार उसकी नजर घड़ी पर पड़ती रही।...

शाहाना अखबारों के खुले-खुले दफ्तरों की आदी हो गई थी। घंटों ए
ठहरी भी नहीं थी। यहां एक केबिन में प्रिंस चार्मिंग के साथ बंद होन
अजीब-सा लगा। लेकिन वह पाण्डुलिपि पर आंखें गड़ाए अपनी प्रतिक्रिया ि
रही। एक दिन के साढ़े सात घंटों में उसे पचास पेज की एडिटिंग करन
आधा घंटा लंच के लिए था। शाहाना ने उस दिन सत्तर पेज देखे थे लेकिन ि
उसने पचास पेज के बाद ही लगा दिया था। जितना करना था, उससे ज्या
खैरख्वाही वह जाहिर नहीं करना चाहती थी। पांच बजते-बजते उसने पाण्
एक दिन का काम खत्म करने की घोषणा में बंद कर दी।

लंच में प्रिंस चार्मिंग बाहर गए थे। उन्होंने शाहाना को भी आमंत्रित
लेकिन उसने विनम्रता से उन्हें मना कर दिया। अपना लंच वह मेज पर बै
खा गई थी। कम्पनी की ओर से दो प्याला मुफ्त कॉफ़ी की व्यवस्था थी--ग
और चार बजे। उस एक दिन की थकान और बोरियत के बावजूद शाहा
मन-ही-मन तय किया, कुछ दिनों काम वह करती रहेगी। शनिवार को का
बन्द रहती थी, 'आफ्टरनून' का सिलसिला आसानी से चल सकता था।

कम्पनी की एक साल ग्यारह महीने की नौकरी ने शाहाना को बंधे-बं
कुछ पैसे हर महीने देने के अलावा एक इत्तिफ़ाक दिया जिसने उसकी आ

वह इण्डियन एक्सप्रेस की ओर बढ़ने लगी। मानक भवन के बगल वाले स्टैण्ड से कोई टैक्सी शायद मिल जाए या आई० टी० ओ० के स्टैण्ड पर कोई स्कूटर मिले।

'अच्छी नौकरी है यह···पूरा दिन कम्पनी की नजर करके अगर तीन-चौथाई स्कूटर-टैक्सी की नजर करना पड़े तो इंसान क्या हवा-पानी पिएगा ?' वह अपने-आपसे बार-बार पूछ रही थी।

खूनी दरवाजा पार करने के बाद मानक भवन के टैक्सी स्टैण्ड तक जाने के लिए उसने सड़क पार करने की बात सोची। ट्रैफिक देखने के अन्दाज में सिर घुमाया तो एक फिएट आकर उसके बेहद पास खड़ी हो गई।

"आपको कहीं छोड़ सकता हूं ?" कार के बायें दरवाजे का शीशा नीचे करके जो आवाज बाहर आई, वह काफी संभ्रांत लगी।

शाहाना ठिठक गई, थोड़ा झुककरउसने बोलनेवाले की ओर देखा। लेकिन अंधेरा था। कुछ सोचने-समझने से पहले उसका हाथ डोरनॉब तक पहुंच गया। कार अंदर से अनलॉक कर दी गई। वह जाकर ड्राइव करने वाले की बगल में बैठ गई और कार ने स्पीड पकड़ ली।

आई० टी० ओ० के चौराहे पर लालबत्ती थी। ट्रैफिक की कतार में फिएट भी खड़ी हो गई।

"इस रूट पर आप कहां तक जाएंगे ?" शाहाना ने पूछा लेकिन उसकी नजर सामने सड़क पर टिकी थी।

"आपको कहां जाना है ?" जवाब में एक सवाल सामने आया।

किसीने किसीकी तरफ देखा नहीं।

"जाना तो मुझे नेहरू प्लेस की तरफ है लेकिन इस बीच जहां भी आपके लिए सुविधाजनक हो, मुझे छोड सकते हैं।"

"मैं आसानी से आपको ओबेराय तक छोड़ सकता हूं और थोड़ा रास्ता बदल दूं तो मूलचन्द तक छोड दूंगा। मुझे फ्रेंड्स कालोनी जाना है···"

"ओबेराय तक ठीक है···तकलीफ के लिए माफी चाहती हूं।"

"तकलीफ की क्या बात है, मैं तो उधर ही जा रहा था···"

प्रगति मैदान के पास से गुजरते हुए शाहाना ने घूमकर अपनी बगल में बैठे उस संभ्रांत आवाज के मालिक की ओर देखा।

"शायद मैं आपसे पहले भी मिल चुकी हूं···।" अचानक वह कह बैठी और र तरकश से अचानक निकल गए तीर की तरह जुमला वहीं छोड़कर सामने क पर निर्विकार भाव से देखने लगी।

अपने ज़ेहन पर वह लगातार जोर दिए जा रही थी कि जिसकी कार उसके ान का निदान बनकर आई है, जिस संभ्रांत आवाज ने सहायता की पहल की उसका मालिक कौन है और वह उससे कहां मिली है ?

शाहाना को फौरन कोई जवाब नहीं मिला। लेकिन जब वह संभ्रांत आवाज के कानों में पड़ी :

"आप शायद रेडियो में काम करती हैं ?" उससे कहा गया।

शाहाना के सामने से विस्मृति का परदा हट गया।

"आप मि० साहनी हैं न ?" उसने पूछा।

"याददाश्त बड़ी तेज है आपकी।"

"आपको मैंने 'आवर गेस्ट टुनाइट' में इंटरव्यू किया था···" शाहाना को याद गया।

"जी हां, आपसे मिलने का वह दिन मुझे आज भी याद है।···इधर क्या मैच ने आई थीं ?"

"जी नहीं, दरियागंज में कुछ काम था। मैच का ध्यान ही नहीं था वरना ा ही निकल गई होती।"

"कुछ लिखती भी तो हैं आप ?"

"जी हां, 'आफ़्टरनून' में एक कॉलम लिखती हूं···।" कम्पनी की नौकरी ाना छिपा ले गई।

"कैसा लगता है आपको अपना काम ?"

"अच्छा लगता है।"

"यह कॉलम तो पसंद किया जाता होगा ?"

"जी हां, लेकिन आपको कैसे मालूम ?"

"मैं पत्रकार या लेखक न सही, एक अच्छा पाठक हूं। पाठकों की दिलचस्
इस तरह के कॉलमों में ज्यादा होती है। वैसे आपके एडीटर मेरे वाक़िफ़ हैं।"

"सैम्युअल साहब ?"

"जी हां, सैम्युअल, वही तो एडीटर हैं आपके ?"

"मेरे नहीं, 'आफ़्टरनून' के।" शाहाना मुसकुराई।

साहनी साहब ने घूमकर शाहाना की ओर देखा। बोले नहीं।

शाहाना ने देखा, कार ओबेराय पार करके लोधी होटल की ओर बढ़ी जा र
थी।

"कितने दिन से लिख रही हैं आप 'आफ़्टरनून' का कॉलम ?"

"कई साल हो गए···"

"उसके लिए क्या रोज जाना पड़ता है ?"

"जी नहीं, मेरा कॉलम हफ्ते में एक बार आता है···मैं हफ्ते में एक ब
जाती हूं।"

"बाकी समय···"

"कभी रेडियो, कभी दूसरी पत्र-पत्रिकाओं में।"

"इसका मतलब आप फ्री-लांसर हैं ?"

"जी हां···"

"फ्री-लांसिंग चल जाती है मजे में ?"

"थोड़ा रिस्की है···"

"रिस्क आपको अच्छा लगता है ?"

"रिस्क लेनेवाला कभी जिन्दगी से ऊबता नहीं।"

"रिस्क लेने की भी एक उम्र होती है शाहाना···"

शाहाना ने चौंकपर साहनी साहब की ओर देखा।

"आपकी याददाश्त बड़ी तेज है।"

"क्यों, क्या हुआ ?"

"लगभग दो वर्ष पहले मैंने आपको इंटरव्यू किया था, उसके बाद हम फिर
कभी नहीं मिले, लेकिन आज भी आपको मेरा नाम याद है ?"

"कभी-कभी एक पल की मुलाक़ात आदमी जन्म-जन्मान्तर है..."

"वह मुलाक़ात व्यक्तिगत होती है।"

"कोई भी मुलाक़ात व्यक्तिगत बाद में बनती है।"

मूलचन्द का चौराहा सामने था। साहनी साहब ने कार एक

"माफी चाहता हूं, आज जरा जल्दी में हूं वरना घर तक छो

"बहुत-बहुत शुक्रिया, इतना भी जरूरत से ज्यादा है..." बाहर आ गई।

कार का दरवाजा बाहर निकलकर बंद करने के बाद जब व को अंतिम धन्यवाद देने के लिए झुकी तो साहनी साहब मुसकुरा

"मैं तुम्हारे नाम का अंतिम शब्द भूल गया हूं।" उन्होंने कहा

"चौधरी, शाहाना चौधरी है मेरा नाम..."

"मैं परिमल हूं—परिमल साहनी..."

शाहाना जाती हुई कार को पल भर देखती रही। वह मन-साहनी की शुक्रगुजार हुई कि अपना नाम उन्होंने बता दिया। इत दिमाग का एक हिस्सा लगातार यह सोचने में व्यस्त था कि साहनी क्या है?

उसने सड़क पार करके स्कूटर लिया और स्कूटरवाले को पत गई।

उस दिन भी बृहस्पतिवार था। अगरबत्ती मौसी की तसवीर के दोनों लगाकर वह अपलक उसे देखने लगी। कितनी जान थी मौसी की आंखों में ! रहा था, एकदम से बोल पड़ेंगी।

"तेरा नाम ऐसा है शानी कि एक बार कोई सुन ले तो आसानी से भूल सकता।" वह प्यार से शाहाना के माथे पर झुक आई लटें समेटते हुए कहतीं।

"लोग कहते हैं, मैं मुसलमान हूं।" एक दिन शाहाना ने अनजाने मौसी के पर बहुत बड़ा आघात कर दिया।

मौसी तड़पकर चुप हो गई थीं।

"क्यों मौसी, मैं मुसलमान हूं ?"

"मुसलमान होना कोई गुनाह नहीं बेटा !"

मौसी की आवाज में इतना दुख, इतना दर्द था कि शाहाना को एक लगा, उसने एक गलत सवाल कर दिया है। वह भागकर मौसी के पास गई। गले में बांहें डालकर उनकी आंखों में झांकने लगी।

"मेरे नाम का मतलब समझा दो मौसी ?"

"तेरे नाम का मतलब एक बहुत बड़ा राग है बेटा ! जिस आदमी को का थोड़ा भी ज्ञान होगा, वह तेरे नाम की अहमियत अच्छी तरह समझ जाए

शाहाना का मन हुआ, पूछे कि उसके नाम के आगे सुलेमान न रखकर च क्यों रख दिया गया है, लेकिन अभी-अभी चोट खाई मौसी को दुबारा आहत की हिम्मत उसके पास नहीं थी।

मौसी से कुछ पूछने के, अपने अतीत के बारे में जानने के मौके उस पहले भी आए थे, लेकिन हमेशा, शाहाना ने पाया कि मौसी इस बात क जाती हैं या उन्हें इससे बेहद तकलीफ होती है। मन में उत्सुकता कम न लेकिन दुखी मौसी को और दुखी करने का एहसास कहीं ज्यादा था इसलिए श अपने मन की बात कभी नहीं कह पाई। माता-पिता की शख्सियत सभी लड़कियों की जिन्दगी में होती है, यह बात वह कोशिश करके भूल गई थी। जेहन में किसी भी नाते-रिश्ते के नाम पर एक ही तसवीर उभरती है, और सुलेमान मौसी की। मौसी के आंचल में उलझ-उलझकर उसका बचपन हुआ था, किशोरावस्था यौवन की दहलीज पर खड़ी हो गई थी, और ऐसे में फायदा उठाते हुए हमेशा इस विषय को टाल जाने वाली मौसी इस बार भी

"कभी-कभी एक पल की मुलाक़ात आदमी जन्म-जन्मान्तर तक या है..."

"वह मुलाक़ात व्यक्तिगत होती है।"

"कोई भी मुलाक़ात व्यक्तिगत बाद में बनती है।"

मूलचन्द का चौराहा सामने था। साहनी साहब ने कार एक किनारे

"माफी चाहता हूं, आज जरा जल्दी में हूं वरना घर तक छोड़ आता

"बहुत-बहुत शुक्रिया, इतना भी जरूरत से ज्यादा है..." शाहाना बाहर आ गई।

कार का दरवाजा बाहर निकलकर बंद करने के बाद जब वह साह को अंतिम धन्यवाद देने के लिए झुकी तो साहनी साहब मुसकुराए।

"मैं तुम्हारे नाम का अंतिम शब्द भूल गया हूं।" उन्होंने कहा।

"चौधरी, शाहाना चौधरी है मेरा नाम..."

"मैं परिमल हूं—परिमल साहनी..."

शाहाना जाती हुई कार को पल भर देखती रही। वह मन-ही-मन साहनी की शुक्रगुज़ार हुई कि अपना नाम उन्होंने बता दिया। इतनी देर दिमाग का एक हिस्सा लगातार यह सोचने में व्यस्त था कि साहनी साहब क्या है ?

उसने सड़क पार करके स्कूटर लिया और स्कूटरवाले को पता बता गई।

उस दिन भी बृहस्पतिवार था। अगरबत्ती मौसी की तसवीर के दोनों ओर लगाकर वह अपलक उसे देखने लगी। कितनी जान थी मौसी की आंखों में! लग रहा था, एकदम से बोल पड़ेंगी।

"तेरा नाम ऐसा है शानी कि एक बार कोई सुन ले तो आसानी से भूल नहीं सकता।" वह प्यार से शाहाना के माथे पर झुक आई लटें समेटते हुए कहतीं।

"लोग कहते हैं, मैं मुसलमान हूं।" एक दिन शाहाना ने अनजाने मौसी के दिल पर बहुत बड़ा आघात कर दिया।

मौसी तड़पकर चुप हो गई थीं।

"क्यों मौसी, मैं मुसलमान हूं?"

"मुसलमान होना कोई गुनाह नहीं बेटा!"

मौसी की आवाज में इतना दुख, इतना दर्द था कि शाहाना को एकदम से लगा, उसने एक गलत सवाल कर दिया है। वह भागकर मौसी के पास गई। उनके गले में बांहें डालकर उनकी आंखों में झांकने लगी।

"मेरे नाम का मतलब समझा दो मौसी?"

"तेरे नाम का मतलब एक बहुत बड़ा राग है बेटा! जिस आदमी को संगीत का थोड़ा भी ज्ञान होगा, वह तेरे नाम की अहमियत अच्छी तरह समझ जाएगा।"

शाहाना का मन हुआ, पूछे कि उसके नाम के आगे सुलेमान न रखकर चौधरी क्यों रख दिया गया है, लेकिन अभी-अभी चोट खाई मौसी को दुबारा आहत करने की हिम्मत उसके पास नहीं थी।

मौसी से कुछ पूछने के, अपने अतीत के बारे में जानने के मौके उस दिन से पहले भी आए थे, लेकिन हमेशा, शाहाना ने पाया कि मौसी इस बात को टाल जाती हैं या उन्हें इससे बेहद तकलीफ होती है। मन में उत्सुकता कम नहीं थी लेकिन दुखी मौसी को और दुखी करने का एहसास कहीं ज्यादा था इसलिए शाहाना अपने मन की बात कभी नहीं कह पाई। माता-पिता की शख्सियत सभी लड़के-लड़कियों की जिन्दगी में होती है, यह बात वह कोशिश करके भूल गई थी। उसके जेहन में किसी भी नाते-रिश्ते के नाम पर एक ही तसवीर उभरती है, और वह है सुलेमान मौसी की। मौसी के आंचल से उलझ-उलझकर उसका बचपन किशोर हुआ था, किशोरावस्था यौवन की दहलीज पर खड़ी हो गई थी, और ऐसे मौके का फायदा उठाते हुए हमेशा इस विषय को टाल जाने वाली मौसी इस बार भी चुप-

चाप खिसक गई, जैसेकि दुनिया में उनकी जरूरत भी क्या थी ?

शाहाना को जाननेवाले बुजुर्गों का खयाल है कि मिस सुलेमान उसकी न मौसी नहीं थीं। शाहाना उनके दूर के रिश्ते की बहन की बेटी थी जिसने कि हिन्दू से शादी कर ली थी। मिस सुलेमान ने अपनी बहन से उसकी पहली बेटी मा ली थी, जिसे पाल-पोसकर वह अपनी जिन्दगी का अकेलापन बांट लेना चाह थीं। कुछ लोग यह भी कहते थे कि मिस सुलेमान की किसी बेहद नजदीकी दो की अवैध संतान है वह, जिसे अनाथालय में डाला जाए इससे पहले ही मौसी उ लाई थीं। खुद कुंवारी थीं इसलिए उसे बहन की बेटी कहकर पालने-पोसने लगीं कहनेवाले तो यह भी कहते थे कि शाहाना का बाप मिस सुलेमान का प्रेमी जिसने विवाह का वायदा करके मिस सुलेमान का सब कुछ हासिल कर लिया औ जब वह खट्टी-मीठी डकारें लेने लगीं, सुबह-सुबह उल्टियां करने लगीं तो भाग गर हुआ। कई बरस बाद मौसी को पता चला कि वह अमीर औरतों का 'गिगोलो' ब गया है, लेकिन मौसी एक रूढ़िवादी हिन्दुस्तानी औरत की तरह उसे फिर भ प्यार करती रहीं। सारी जिन्दगी कुंवारी रहने की कसम खा ली उन्होंने। कुंवा मां बनकर किसी दूरदराज की जगह जाकर बेटी को जनम दिया, लेकिन लोकला के डर से उसे अपना न कह सकीं और बहन की बेटी कहकर पालने लगीं।

अफवाहों में जितनी भी सचाई हो, शाहाना पर एक ही छत्रछाया बनी रही सुलेमान मौसी की। मौसी के अलावा शाहाना के जेहन में एक मामाजी की तस्वी उभरती है जो दोनों की जिन्दगी की एकरसता तोड़ने कभी खुद आ जाते, कभ दोनों को अपने पास इलाहाबाद बुला लेते। उनकी बांहों में झूल-झूलकर सो जा का सुख शाहाना को किसी परीदेश के चमत्कार जैसा लगता। मामा की सुनाई हु कहानियां उसे आज भी याद है—जहीं का फल, हंस चरानेवाली राजकुमारी,

लड़कियां-टीचरें सब अपने घर चले जाते तब शाहाना मन-ही-मन विसूरती···आखिर वे कहीं क्यों नहीं जाते? लेकिन मौसी से कुछ कहने-पूछने की हिम्मत नहीं थी उसके पास। गर्मी की छुट्टियों में कभी दो महीने के लिए वे इलाहाबाद जातीं। साल में दो बार रक्षा-बंधन और भाई-दूज पर मामा आते। लड़कियों के हॉस्टल में लड़कियों रहें या न रहें, मामा के ठहरने की गुंजाइश चूंकि नहीं थी इसलिए जब वह आते तो दो-एक दिन के लिए मौसी ही चली जातीं भाई से मिलने, किसी होटल में या किसी परिचित के घर। शाहाना छोटी थी तब वह भी जाती मौसी के साथ, जब बड़ी हो गई तो मौसी अकेली जाने लगीं।

शाहाना को हॉस्टल से अपना जाना या मामा का आना अच्छा लगता, क्योंकि तभी थोड़ा परिवर्तन आता दिन-रात में। सोने-उठने का समय टलता, दिन-रात के कार्यक्रम बदलते···वरना वही गर्ल्स हॉस्टल के दो कमरे, ज्यादा-से-ज्यादा चुप रहनेवाली सुलेमान मौसी और बचपन की मासूमियत से उठ-गिरकर समझदार बनती शाहाना।

शाहाना कोशिश करके भी याद नहीं कर पाती कि मौसी को कभी कोई बात बेहद अच्छी या बेहद बुरी लगी हो। उनकी प्रतिक्रिया हमेशा एक थी—खामोशी। चाहे वह कमरों की सफाई कर रही हों, कपड़े धो रही हों, या बावर्चीखाने में हों—मौसी कभी गुनगुनाई हों, शाहाना को याद नहीं।

बावर्चीखाने के पीछे वाली जमीन को कटीले तारों से घेरकर मौसी ने किचेन-गार्डेन बनाया था शायद इसलिए कि सब्जियां बाज़ार से खरीदनी न पड़ें। रोज एक ही सब्जी खा-खाकर शाहाना थक जाती, कभी वह भी न होती तो खाली दाल-चावल बनता रसोई में···शाहाना की भूख मर जाती लेकिन वह बहुत पहले समझ गई थी कि स्कूल की टीचरी में जितने पैसे मौसी को मिलते हैं, उनसे वह दोनों वक्त की सब्जी का जुगाड़ नहीं कर सकतीं। इसीलिए कभी दाल की जगह दाल का सूप भी सामने आता तो वह उसमें डुबकी लगा लेती। खाना सामने आता तो पूरे मन-प्राण से खुदा की रहमत के लिए हाथ फैलाती, मौसी के साथ उसकी शुक्रगुजार होती कि जैसे आज दिया पेट भरने को, वैसे ही कल भी देना।

मौसी से शाहाना ने कभी किसी बात की शिकायत नहीं की। शाम को स्कूल से लौटकर एक गिलास ठंडा पानी पीने के बाद जब मौसी खुरपी लेकर अपने किचेनगार्डेन में खोद-खाद शुरू करतीं तो शाहाना चुपचाप माली का हजारा उठा

लाती और पौधों को पानी देने लगती।

पहली बार जब शाहाना के हाथ में उन्होंने हजारा देखा तो नाराज हो गई थीं।

"यह हजारा कहां से उठा लाई ?" उन्होंने पूछा था।

"माली का है मौसी !"

"पूछकर लाई है ?"

"जी..."

"जरा-सी तो जमीन है अपनी, इतने बड़े हजारे का क्या करेगी ?"

"माली कहता है, हजारे से पानी अच्छा पड़ता है।"

भोली-भाली शाहाना ठिठककर खड़ी हो गई। मौसी मुसकुराकर उसकी ओर देखती रहीं।

"इतना बड़ा हजारा तू उठाएगी कैसे ?"

बड़ा-सा हजारा शाहाना पेट पर लादकर खड़ी हो गई।

"ऐसे..." उसने कहा।

शायद अपनी हंसी, अपनी आंखों का कौतुक छिपाने के लिए मौसी ने मुंह फेर लिया।

मामा की बेरुखी···कारण कुछ भी हो सकता था···

कितनी चिंताएं थीं मौसी के दिल पर ! नन्ही शाहाना को उदास मौसी पर बड़ा-बड़ा प्यार आता। अपनी काली आंखें फाड़-फाड़कर वह उधर-ही-उधर देखती जिधर मौसी अपना खालीपन भरने के चक्कर में घूमती रहतीं। रात को एकटक छत की कड़ियों पर नजर साधनेवाली मौसी का दुख जब उससे बर्दाश्त के बाहर होने लगता तब वह अपना बिस्तर छोड़ धीरे से मौसी की बगल में आकर लेट जाती। मौसी थोड़ी देर ऐसे पड़ी रहतीं जैसे पथरा गई हों, फिर उसे बांहों में भरकर सीने से चिपटा लेतीं। उसके सिर पर थपकी देने लगतीं। उस पल शाहाना को वह सब कुछ मिल जाता जिसके अभाव में रिस-रिसकर उसका बचपन किशोर हुआ था और अब किशोरावस्था यौवन में बदलती जा रही थी।

शाहाना तब पंद्रह पूरे कर रही थी। उस दिन सुलेमान मौसी की तबीयत कुछ ठीक नहीं थी। वह अकेले स्कूल गई थी। लंच में अकेले बैठकर रोटी खा ली थी, वैसे मौसी स्कूल में होतीं तो अपने साथ उसे स्टाफ रूम में बुलाकर खाना खिलातीं। जैसे-तैसे वह दिन कटा था। जब वह घर लौटने लगी तब ऐन हॉस्टल के फाटक पर उसे नन्हा-सा एक बिल्ली का बच्चा दिखाई पड़ा, जैसे कोई चुपके से उसके सामने डाल गया हो कि वह देखेगी और उठा लेगी। शाहाना ने लपककर उसे हथेलियों में भर लिया। खुशी-खुशी कमरे में आई। लेकिन मौसी उसे देखते ही बरस पड़ीं।

"कहां से यह बला उठा लाई ?" उन्होंने पूछा।

असल बात बताई जाती तो मौसी हर हाल वह बच्चा फिंकवा देतीं, उनके दिमाग में एक वहम पैदा होता कि जरूर किसीने टोना-टोटका करके बिल्ली का बच्चा फिंकवाया होगा। शाहाना झूठ बोल गई।

"रास्ते में मिला, स्कूल के पीछेवाली गली में। देखो न मौसी, कितना प्यारा है !"

"बिल्ली है या बिल्ला ?" मौसी की आवाज पहले से नरम थी।

"पता नहीं, देखो न मौसी···" शाहाना ने बिल्ली का बच्चा लेटी हुई मौसी के सीने पर रख दिया।

मौसी उसे पुचकारने लगीं। मन की गहराइयों में दबी हुई ममता सिर उठाकर आंखों के कोटरों से झांकने लगी।

शाहाना को अभयदान मिल गया।

उस दिन से उस घर में तीन प्राणी हो गए। शाहाना ने उसका नाम रखा—बूगी। वह उसे उतने ही लाड़-प्यार से पालने लगी जितने लाड़-प्यार से मौसी ने उसे पाला था।

शाहाना ने बूगी के साथ सुलेमान मौसी की एक तसवीर अपनी मेज पर स्टैंडिंग फ्रेम में लगा रखी है। वह याद आज भी मन में खलिश पैदा करती है जब मौसी के साथ वह इलाहाबाद गई थी अपनी बूगी मिसिस चैटर्जी के घर छोड़कर। और जब छुट्टियों के बाद वापस लौटी तो पता चला, बूगी उसी दिन भाग गई थी।

शाहाना फूट-फूटकर रोई अपनी बूगी के लिए। मौसी को भी उसने कई बार आंसू पोंछते देखा। कितने दिन मिसिस चैटर्जी के घर के आसपास पूछती रही, इस उम्मीद में कि शायद किसीने देखा हो, शायद पता चल जाए।

"कुत्ता होता तो सात समंदर पार करके आ जाता, वफ़ादार होता है। बिल्लियां व्यक्ति नहीं, घर देखती हैं, चली गई होगी किसी और घर।" लोगों ने कहा और कड़वे घूंट की तरह शाहाना को ये बातें सुननी और पचानी पड़ीं।

बूगी की अनुपस्थिति उसकी याद बन गई।

बचपन की एक बात और बहुत सताती है शाहाना को। मेट्रन की एक भतीजी थी रेखा। उसे दिखा-दिखाकर पेस्ट्री खाया करती। शाहाना अपने किंडरगार्टन में इश्कपेचा के नीचे पत्थर पर बैठकर अपना पाठ याद करती और रेखा हर तरह से उसका ध्यान अपनी पेस्ट्री की ओर खींचने की कोशिश करती। शाहाना दबी नजरों से रेखा की ओर देखती और अपने पाठ में उलझे रहने की कोशिश करती।

एक दिन सुलेमान मौसी की नजर पड़ गई। शाहाना को उन्होंने एकदम से अंदर बुला लिया।

कमीज पर गिर पड़ते, कभी मौसी ही लपककर अपने आंचल से सुखा लेतीं।

उस दिन ऐसा कुछ नहीं हुआ। उसे बड़ी देर तक देखते रहने के बाद मौसी अपने काम में लग गई थीं।

दूसरे दिन से बेकरीवाला एक पेस्ट्री शाहाना के लिए रोज़ दे जाने लगा। शाहाना ने मचल-मचलकर मना किया कि उसे पेस्ट्री अच्छी नहीं लगती, लेकिन उसका विरोध मौसी तक नहीं पहुंचा और बेकरीवाले ने खुद इस ओर ध्यान नहीं दिया। हारकर शाहाना पेस्ट्री का मजा लेने लगी।

रेखा को पता चल गया कि शाहाना के लिए भी पेस्ट्री आने लगी है तो वह जल-भुनकर राख हो गई। उसने बाहर आना बन्द कर दिया। शाहाना अपनी पेस्ट्री लेकर सेहन में दो-चार दफा गई लेकिन जब रेखा कहीं नजर नहीं आई तो उसने भी बाहर जाना बन्द कर दिया।

शाहाना अब सोचती है, कितनी दिक्कतें उठाकर मौसी उसकी सुख-सुविधा का सामान जुटाया करती थीं!

मिसिस चैटर्जी के बच्चों के छोटे पड़ गए कपड़े काटकर उसके लिए शरारा, चूड़ीदार, फ्राक, क्या कुछ नहीं बना दिया करती थीं वह! नया कपड़ा तो साल में एक ही बार बन पड़ता—ईद पर। अपने लिए मौसी इतना भी न कर पातीं।

कभी-कभी शाहाना खुद से सवाल करती है, इतना दुख मौसी ने क्यों उठाया?

वह सुन्दर थीं, जवान थीं···विवाह के लिए राजी होतीं तो कोई भी उनका हाथ थामकर खुद को खुशकिस्मत मानता। घर सहेजने में मौसी का कोई जवाब नही था। कमाती ऊपर से थीं। क्या कमी थी उनमें? क्यों चुना मौसी ने अकेलेपन का यह बीहड़ रास्ता?

हर बार जवाब एक ही मिलता। मौसी ने जो कुछ किया, सब शाहाना की भलाई के लिए किया। वह मन-ही-मन तर्क-वितर्क करती। मौसी चाहतीं तो उसे लेकर भी उनका विवाह हो सकता था, लेकिन तब क्या वह इतना प्यार उसे दे पातीं···उसके लिए इतना कर पातीं?

शाहाना इसके आगे नहीं सोच पाती। अगर अपने ढंग से पाल-पोसकर उसे बड़ा कर देना ही मौसी की तपस्या थी तो वह पूरी हो चुकी थी।

मौसी इस दुनिया में बेशक नहीं थीं लेकिन उनकी रूह अगर सैय्यारे के किसी

कोने में है तो शाहाना को देखकर खुश जरूर होती होगी, क्योंकि वह उन्हींके नक्शेक़दम पर चल रही थी।

उन्हींकी तरह अपनी तमाम परेशानियों का हल उसने निकाल लिया है: कभी खाली न बैठना। मौसी के ज़माने में सिलाई, कढ़ाई-बुनाई में वक्त ज्यादा देना पड़ता था। अब शाहाना का ज्यादा समय अपनी मनचाही किताबें पढ़ने में बीतता है, खासतौर पर नौकरी मिल जाने के बाद से अपनी आमदनी का दसवां हिस्सा वह किताबों पर खर्च करती है। उसके वीरान लमहों के साथी उसकी किताबें ही बन गई हैं। पत्र-पत्रिकाओं में समीक्षा के पृष्ठ देखकर वह खरीदनेवाली किताबों का चुनाव करती है। जो पुस्तक अच्छी लग गई, वह तत्काल उसके पास आ जाती है। बाजार में न मिली तो आर्डर बुक हो जाता है।

मौसी के ज़माने में किताबों का जितना अकाल था, अब वह उतने ही गुरे मन से किताबें जमा करती है। आज तक कोई किताब शाहाना ने किसीसे मांगकर नहीं पढ़ी थी। मौसी ने कभी कोई किताब उसे खरीदकर नहीं दी थी और पास-पड़ोस से मांगकर भी नहीं पढ़ने दी थी, शायद इसीलिए शाहाना ने तय किया था कि उसके पास एक खूबसूरत लाइब्रेरी होगी और यह कि अपना सारा समय वह पुस्तकों के साथ गुजार देगी।

किताबों के प्रति सलेमान मौसी की बेताबी अपने मन की मिठास में बदले तो

लेया करतीं, उसे चूम लेतीं, उसका सिर थपकती रहतीं।
ाहाना कुछ बड़ी हुई तो अकसर मौसी से उलझ पड़ती।
भर तो आप कुछ-न-कुछ करती रहती हैं, थोड़ी देर आराम भी तो कर
ए।" मौसी के चेहरे पर थकान की लकीरें पहचानकर शाहाना कहती।
कौन करेगा बेटा ?" जून के महीने में टपकते पसीने की तरह मौसी
टपक पड़ती।
ूंगी।" शाहाना मौसी का हाथ थाम लेती।
तो करना ही है शानी, कौन मैं सारी उम्र तेरा साथ दूंगी ! तू जा,
देख।"
। मौसी का मतलब पढ़ाई-लिखाई से होता। शाहाना कभी उनकी बात
नी किताबों की दुनिया में खो जाती, कभी सुलेमान मौसी को उसकी
र वह काम छोड़ देना पड़ता।
ाहाना छोटी थी तो मौसी ने अपने दो कमरों में से एक को बैठक बना
ूसरे में दोनों सोती थीं। शाहाना जब बड़ी हो गई तब मौसी अपना
चुपचाप बैठक में खिसक गई। शाहाना अकेली छोड़ दी गई अपनी
साथ।
का फर्नीचर नीलाम हुआ तो मौसी ने उसके लिए एक मेज खरीदकर
टाट के कई पुराने टुकड़े धो-सुखाकर आपस में जोड़ लिए और उसे
कमरे की फर्श पर बिछा दिया, गोया कालीन बिछा दिया हो उस कमरे
न की छुट्टी लेकर मौसी ने घर की सफाई की थी, फिर शाहाना का
या था। तब से जब भी बाहर से आती, उनके हाथ में दो-चार फूल होते
ना अगर सामने होती तो उसे पकड़ा देती। न होती तो उसके कमरे में
आती। कभी फूलदान का पुराना फूल निकालकर उसमें लगा देती।
की इन छोटी-छोटी बातों पर शाहाना का दिल उनके प्रति प्यार से
। वह बार-बार खुद से पूछती, 'क्या मौसी की औकात उतनी है जितना
ए करती है ?'
दिन के तीन नमाज हर मौसम में बाकायदा पढ़तीं। त्योहारों पर या
नों में दिन के पांच नमाज हो जाते लेकिन शाहाना पर उन्होंने कभी
ाला कि वह रोजा रखे या नमाज पढ़े। किसी जमाने में मौसी के साथ

रोजा रखने की कुछ कोशिशें शाहाना ने जरूर की थीं। लेकिन मौसी ने भूख लगने के समय पर इसरार करके कुछ-न-कुछ खिला दिया था। जब वा धोने लगी तो यह कहकर बात टाल दी कि बड़ी होकर रख लेना। मौसी नमाज पढ़ना भी नहीं सिखाया। साथ बैठी तो उठक-बैठक करके रह गई। ने उसे समझाया कि उम्र पर आएगी तब रस्म पूरी होगी और रोजा-नमा करने दिया जाएगा। यहां तक कि सरनाम भी उसका चौधरी था जबकि अपने लिए सालेहा सुलेमान लिखा करती थीं। ऐसा क्यों है, यह पूछने की शाहाना मौसी की उम्र भर नहीं जुटा पाई।

बड़ी होने पर इस ओर शाहाना की दिलचस्पी नहीं हुई और मौसी अपनी ओर से कभी रोजे-नमाज की बात नहीं उठाई। यहीं उसे लगा मौसी उसकी मां नहीं हैं। जरूर वह उनकी किसी हिन्दू-सहेली की बेटी रही

मन के किसी अंधेरे कोने से कभी-कभी एक वहम उठता—यह भी सकता है, उसका बाप हिन्दू हो? इस बात की पुष्टि मौसी के सारे जीवन तपस्या से होती है।

"मेरी मां कौन है मौसी?" हिम्मत करके बहुत पहले शाहाना ने पूछा

"मैं हूं तेरी मां?" मौसी ने पास आकर उसे अपनी बाहों में भर लिया

"फिर मैं तुम्हें मौसी क्यों कहती हूं?"

"क्योंकि मौसी मां से ज्यादा प्यार करती है।"

"मेरे पिता···" शाहाना की आवाज एकदम धीमी हो गई थी।

"अब वह नहीं हैं बेटा।"

"क्यों?"

"क्यों? अब मैं तुझे कैसे समझाऊं?"

उसके पिता का नाम कहीं-न-कहीं होगा जरूर। पहले शाहाना सोचती, जाकर कभी पता करेगी। जब थोड़ी बड़ी हुई तो सोचने लगी, अगर पता कर भी लिया तो खास बात क्या हो जाएगी···और वह चुप रह गई। सुलेमान मौसी ने जब एक पूरी उम्र उसपर न्योछावर कर दी तो वही उसकी सब कुछ थीं, बाप का नाम जान भी ले तो क्या फर्क पड़ेगा ?

मजहब के पचड़ों में वह नहीं पड़ना चाहती इसलिए अपने माता-पिता को उसने दिमागी तहों में बहुत नीचे जमा दिया है। उसे याद रहती हैं एक सुलेमान मौसी, जो उसकी माता-पिता दोनों थीं। माता-पिता क्या उनसे ज्यादा करते ?

बृहस्पतिवार की वह रात पूरी तरह सुलेमान मौसी के साथ गुजरी, जागते में उनके बारे में सोचते हुए, सोने के बाद उनके सपनों में।

उस रात मौसी ने उसे सफेद फूलों का एक गुच्छा दिया, खयाल आवारा भटकते रहे। पता नहीं कहां से परिमल साहनी आ गया उसके सामने !

'फूल बड़े प्यारे हैं!' मौसी के भेंट किए फूलों को ललचाई नजरों से देखते हुए उसने कहा।

शाहाना कुछ नहीं बोली। उसने आधे फूल परिमल को पकड़ा दिए। परिमल ने झुककर उसका माथा चूम लिया।

सपना टूट गया। खुली आंखों बिस्तर पर पड़े-पड़े शाहाना न जाने क्या-क्या सोचती रही और हर दूसरे खयाल पर परिमल उसके सामने आकर खड़ा हो जाता।

ा लाऊं ?"

"आप क्यों बनाएंगी जी, आपने इतना किया है, कॉफ़ी मैं बनाऊंगी।'

"खून लगाकर शहीद होने की जरूरत नहीं···आप सुट्टे लगाइए, ब
ी हूं।" वह कमरे से बाहर चली गई।

कॉफ़ी लेकर रोज़ी आई तो शाहाना हाथ-मुंह धोकर कपड़े बदल चु

"यार, इसकी अपनी बेटी होती तो शायद यह उसे भी न छोड़ता।"
एक सिगरेट होंठों से लगा ली।

"क्यों, क्या हुआ ?"

"होना क्या नया है ? कल फिर एक का दीक्षान्त समारोह हुआ।"

"यानी ?"

"बच्ची है यार, एकदम कच्ची। सुबह ग्यारह बजे उसके केबिन में
बजकर पचास मिनट तक की गवाह तो मैं ही हूं।"

"हो सकता है, कुछ बोलकर लिखवा रहा हो !" शाहाना को मालूम
ाव में कोई दम नहीं।

"रहने दे···" रोज़ी ने एक झटके से सिगरेट की राख झाड़ी।

"जाने दे यार, तुझे क्या ?"

"बुरा लगता है···"

"तुझे क्यों बुरा लगता है ?"

"कमाल है ! बुरी बात का बुरा नहीं लगता ?"

"तू क्या करेगी ?"

"कुछ करने की हालत में होती तो कब की कर चुकी होती।"

"हुआ क्या ?"

"कहा तो दीक्षान्त समारोह हुआ।"

"ठीक से बता।"

"अब मान ले कि होता है।"

"तेरा मतलब, वह कहता है कि किसीको अंदर मत आने देना ?"

"हां, कहता है।"

"तेरी इस बात पर किसीको भी विश्वास नहीं होगा।"

"तुझे कर लेना चाहिए।"

"चल कर लिया, फिर ?"

"लौट आई। कोशिश की, बाहर कहीं से करूं टेलिफोन, लेकिन हो नहीं
आफिस छोड़ते-छोड़ते भी थोड़ी देर हो गई। पौने सात के करीब मैं बाहर से
सारा दफ्तर जा चुका था। मैंने सोचा, अंदर चलकर टेलिफोन कर लूं।
चुकी थी। सैम के वहां होने की गुंजाइश नहीं थी। मैंने दरवाजा खोलने से
दस्तक भी नहीं दी। फटाक से दरवाजा खोलकर अंदर दाखिल हो गई।
मन हुआ, बंद करके वापस आ जाऊं लेकिन फिर पता नहीं, क्यों मैं खड़ी
सैम्युअल साहब अपनी सीट पर जमे हुए थे। इनके ठीक सामने, दरवाजे की
पीठ किए रूमा बैठी थी। हाथ में बॉलपेन था, जैसे कुछ लिख रही हो।
सामने कोई कागज नहीं, शाम का परचा था। चार बजे के करीब यह परचा
जाता है। मैंने देखा, परचे का कोना-कोना बॉलपेन की खरोंचों से भर चुका
यानी वह लड़की आड़ी-तिरछी रेखाएं खींचकर दीक्षान्त समारोह के
इंतजार कर रही थी..."

"तू इस दुनिया में नहीं रहती शायद···"

"बदकिस्मती तो यही है कि मुझे इसमें रहना पड़ता है···"

"तो फिर भूल जा इस तरह की बातें। अपना बिजनेस माइण्ड करना सीख ले।"

"पता नहीं, कैसे इतनी पत्थर है तू !"

"जिसे दूर करना या बचा लेना तुम्हारे हाथ में नहीं, उसके लिए परेशान होकर तुम क्या करोगी ?"

रोज़ी चुप रही। मन के आवेग को समझने की कोशिश में शब्द तितर-बितर हो गए।

"देखो रोज़, कुन्तल मेहता से लेकर रूमा सान्याल के बीच अनेक नाम हैं। तुम भी जानती हो, सब जानते हैं। सबकी ज़ुबान पर सैम्युअल साहब के लिए एक ही वाक्य रहता है—बड़े भले हैं बेचारे। तुमने कभी सोचा है कि जब कोई बड़ा भला हो तो बेचारा क्यों कहा जाता है उसे ?"

रोज़ी शाहाना का चेहरा देखती रही।

"मुझे आज तक इस सवाल का जवाब नहीं मिला। इस दुनिया में सैम साहब अकेले नहीं हैं। सत्ता की हर शाख पर एक उल्लू बैठा है। हमारा समाज एक ऐसे दौर से गुजर रहा है जहां पुराने रीति-रिवाज, अदब-तहजीब खत्म हो चुके हैं। नये अभी तय नहीं हुए। इस आलम में जहां तक पहुंच हो, आदमी अपना हाथ साफ करना चाहता है। आज का पुरुष-समाज बौखलाया हुआ है स्त्री को उसके सही परिप्रेक्ष्य में देखकर। स्त्री पर विजय पाने का एक ही रास्ता उसे सूझ रहा है और वह अन्धाधुन्ध उसपर गिरता-पड़ता आगे बढ़ रहा है। जब सैम्युअल साहब स्त्री को नाप लेने की बात करते हैं तब उनके चेहरे पर एक अजीब तरह का दीन-हीन भाव आते नहीं देखा ? उनकी तुच्छता की पराकाष्ठा का आभास तुम्हें नहीं

तरह नहीं सोचतीं। इस इज्जत और मान-मर्यादा का महत्व इनके लिए नहीं है। इनकी इज्जत और मान-मर्यादा अपना नाम छपा हुआ देखने में है। जिन राहों से गुजरकर इनका नाम कागजी दुनिया में पहुंचा है, इससे उन्हें कोई मतलब नहीं ···याकि किसी भी दाम अखबारी दुनिया में शामिल होना इनकी इज्जत है··· अब तुम देखना, कल से रूमा सान्याल भी अन्य दीक्षित विद्यार्थियों के सामने अपने दीक्षान्त समारोह की चर्चा में हमेशा-हमेशा के लिए खामोश हो जाएगी। कभी सैम साहब की बात चली तो बड़ी संजीदगी से मुसकुराकर कहेगी, 'बड़े भले हैं बेचारे।' तुम्हारी सहानुभूति का उसे पता चला तो इस हिकारत से तुम्हें देखेगी जैसे तुम्हींने कोई खराब काम कर दिया हो। बेकार की बातों में अपना दिमाग खराब न करो।" शाहाना का चेहरा एक ठंडे एहसास से पथरा गया। वह चुप हो गई।

रोजी बड़ी देर तक बैठी रही, फिर एक लम्बी सांस लेकर वह शाहाना की ओर मुखातिब हुई :

"फोन करके जब मैं उस केबिन से बाहर आई तो रूमा का झुका हुआ चेहरा बड़ी देर तक मेरे ज़ेहन में उभरता रहा। बड़ी देर तक सैम्युअल साहब का सर्वहारा व्यक्तित्व उठक-बैठक करता रहा।"

"पागल हो तुम।"

"आज वह आफिस नहीं आई थी। लोग बात कर रहे थे कि बीमार हो गई है।"

"सुना है, सैम पंद्रह दिन की छुट्टी पर जा रहा है ?" रोज़ी ने बात बदल दी
"उसकी भी तबीयत बेजार हो उठी है ? आजकल तेरा कैसा चल रह है ?"

"मेरा मन उससे मिल नहीं सकता अब, वैसे कोई खास बात नहीं। एक ठण्ड तनातनी तो बहुत दिनों से है।"

"उस कॉलम के बारे में तूने बात नहीं की ?"

"किरन हंस वाले ? मैं क्यों करती ?"

"तुझे एक बार कहना तो चाहिए।"

"क्या कहना चाहिए ?"

"यही कि उसे तू खुद करेगी। उसने कहा भी था।"

"क्या उसे याद नहीं ? मैं दुनिया भर की फालतू बातें क्यों सुनूं ?"

"थोड़ी बातें सुनने से अगर अपना काम बन जाए तो सुन लेनी चाहिए।"

"तू समझती है, उससे मेरा कोई काम बनेगा ?"

"काम न बने, उसे पता तो चलेगा, तूने प्रोटेस्ट किया।"

"उसे मालूम है। मेरे व्यवहार की ठंडक पाला बनकर उसे मारती रहती है तू क्या सोचती है, जब वह तड़पकर मुझे मिडियॉकर कहता है, तो उसे अपनी मीडियाकरी का बोध नहीं होता ? पढ़ा-लिखा, समझदार है, अकेले में ठंडे दिल से सोचता होगा तो अपनी ग्रन्थियां उसकी समझ में जरूर आ जाती होंगी..."

"इस मोगालते से तुझे कुछ राहत मिलती हो तो कोई बुराई नहीं इसमें।"

"तू समझती है, यह मेरा मोगालता है ?"

"मैं क्या समझती हूं, इससे फर्क नहीं पड़ता, तू ये बता आज थी कहां ?"

"गई थी, जल्दी चली आई।"

"कोई खास बात थी ?"

"नहीं...यूं ही..."

"मैंने कहा न, चुप कर।"

"शाहाना, एक बात मेरी समझ में नहीं आती ?"

"क्या ?"

"तूने अपनी पटरी कैसे बिठाई है इसके साथ ?"

"किसके साथ ?"

"सैमी के···।"

शाहाना चुप रही।

"बता न।" खामोशी लम्बी होने लगी थी।

"बताना क्या है ? इसकी बातों में हिस्सा लेती हूं। इससे बराबर के दर्जे पर हाथ मिलाती हूं। इसकी बकवास सुन लेती हूं, इसपर रौब जमाने के लिए कभी बकवास करती भी हूं। पटरी और कैसे बैठती है ?"

"इसने कभी कोई हरकत की तो होगी।"

"चोर चोरी से जा सकता है, हेराफेरी से तो नहीं।"

"फिर ?"

"फिर क्या ? जल्दी ही मैंने उसके आले में बैठा दिया उसे। उसकी हरकत का कोई असर मुझपर नहीं होता। कुछ उसे खुद ही पता चल गया, कुछ मैंने उसे बता भी दिया।"

करना चाहती हैं, उसे अगर अपनी कमजोरी का पता चल गया तो वह संभल न जाएगा ?"

बड़ी देर तक रोज़ी चुप रही। शाहाना ने भी कुछ नहीं कहा। दोनों अपने-अपने विचारों में गुम कमरे की खामोशी बुनती रहीं।

समय दस से ऊपर हो चुका था। अचानक रोज़ी उठी और गुलाम अली की गज़लों का एल० पी० लगाकर खाना गरम करने चली गई। शाहाना उठी कि खाने की मेज ठीक कर ले। चार कुर्सियों वाली गोल खाने की मेज पर दो बड़ी प्लेटें पहले से औंधी पड़ी थीं, दो बड़े चम्मच दोनों प्लेट के साथ विश्राम पा रहे थे। बीच में एक ढकी हुई हाफ प्लेट शायद सलाद की थी, बीच में नमक-मिर्च की जुड़ी हुई शीशियां, अचार-सिरके की शीशियां, पानी का जग, गिलास सब कुछ यथास्थान।

रोज़ी ने अपना घर कितनी व्यवस्था से चलाया होगा---शाहाना सोचने लगी।

करने को कुछ नहीं था इसलिए एक कुर्सी खींचकर वह रोज़ी के आने का इंतजार करने लगी। गरम हो रही बिरियानी की खुशबू कमरे तक लहक आई थी।

"आजकल तू क्या देख रही है?" शाहाना ने पूछा तो सुबह की चाय पर एक बार फिर 'आफ़्टरनून' आकर ठहर गया।

"कुछ नहीं।"

"यानी ?"

"कहा तो, कुछ नहीं।"

"वहां करती क्या रहती है ?"

"बेरुखी की ठंडी आग में जलती रहती हूं।"

"अब न लगने की या पहले लगने की ?"

"दोनों की।"

"पहले लगता था, क्योंकि मैं एहसानमंद थी, सच पूछा जाए तो आज भी हूं। शंकर के दोस्तों में जितनी इज्जत मैंने इसे बख्शी है और किसीको दी भी नहीं। लेकिन या तो इसे इज्जत चाहिए नहीं या यह उसके काबिल नहीं है। अब सोचती हूं, मैं इसकी एहसानमंद क्यों हूं ? किसीने इसपर भी तो एहसान किया होगा। किसीने इसके लिए भी कुछ किया होगा। वक्त साथ देगा तो मैं भी किसीपर एहसान करूंगी, फिर मानने का चक्कर क्यों चलाया जाए ? यह तो एक सिलसिला है जिसमें बारी-बारी लोग आते रहते हैं।"

"काम की जगह तनाव सेहत के लिए ठीक नहीं।"

"तनाव को मैंने न्योता नहीं दिया।"

"न दिया हो। जब आ गया है तो खातिर-तवज्जोह करके खतम तो कर सकती है।"

"अपनी ओर से जितनी कोशिश जरूरी थी, मैं कर चुकी हूं।"

"सैम से माफी मांगी थी ?"

"माफी किस बात की मांगती ?" रोजी फनफनाकर उठ बैठी।

"जिस बात को लेकर झगड़ा हुआ था।"

"सच तो यह है कि झगड़ा मुझसे हुआ ही नहीं, सीधी बात करने की हिम्मत सैम के पास नहीं है। उसके चमचों ने बताया न होता तो मुझे क्या पता चलता कि वह नाराज हुआ था ?"

जाएगी, उस दिन 'आफ़्टरनून' की आधी समस्याएं खत्म हो जाएंगी।"

"तुझे ताज्जुब होगा यह जानकर, लेकिन रोज़ी, आज तक मुझे नहीं मालूम सैम से तेरी पहली लड़ाई क्यों और कब हुई थी ?"

"मेरी इससे आमने-सामने लड़ाई कभी नहीं हुई।"

"सुनी-सुनाई बातों पर तुझे ग़ौर नहीं करना चाहिए।"

"जब सारे लोग एक मुंह से एक ही बात करें तो उसे नज़रअंदाज़ भी नहीं किया जाता।"

"लेकिन वह बात क्या थी ?"

"बात तो एक बहाना थी यार, सैम की यह पुरानी आदत है।"

"क्या ?"

"शंकर से इसकी आदतों के बारे में थोड़ा-बहुत पता न चल गया होता तो मैंने खुदकुशी कर ली होती यहां आकर।"

"किन आदतों से तुम्हारा मतलब है ?"

"एक हो तो बताऊं।"

"तुम्हारा मतलब किस आदत से है ?"

"जब भी कोई नई बंदी इसके सामने आती है, यह आगा-पीछा देखे-सोचे बगैर बिछ जाता है फिर चाहे वह कानी हो, कनरी हो, बूढ़ी हो, जवान हो, थोड़ी

"सुनी-सुनाई बातें अकसर सच तो नहीं होतीं, लेकिन यह बा

"इसने तुझे काफी आजादी दे रखी थी ?"

"इसमें शक नहीं।"

"फिर तूने बिगाड़ा क्यों ?"

"मैंने नहीं बिगाड़ा।"

"बात क्या थी ?" जानी-सुनी बात एक बार रोजी के मुंह र
लगा शाहाना को।

"तू तो ऐसे पूछ रही है, जैसे तुझे कुछ मालूम ही न हो !"

"मालूम तो है, क्या सच है वह सब ?"

"हां, सच तो है, उतना ही, जितना इसके चमचे सच हैं।"

"कौन है इसका बड़ा चमचा ?"

"वही, जो केबिन के दरवाजे से मेज चिपकाए बैठा रहता है।'

"दयाल ?"

"कुत्ता है स्साला, औरत देखी नहीं कि ऐसे दौड़ता है, जैसे छीछ

"उसे तो सैम अकसर फटकारता रहता है।"

"ऊपर-ऊपर से दिखाने के लिए।"

"नहीं यार !"

"नहीं क्या ? तुमने देखा नहीं, हर फटकार-सेशन के बाद वही
जाता है, जानती हो क्यों ?"

"क्यों ?"

"उसे बुलाकर सैम कहता होगा, तू ही तो एक समझदार है, व

"और अपनी बीवियां लाकर दो-तीन घंटे उसके पास नहीं बिठाएंगे, नंगी औरतों की तसवीरें लाकर उसकी दराज में नहीं रख जाएंगे, न पोर्नो-साहित्य सप्लाई करेंगे।"

शाहाना चुप रही।

"अब चुप क्यों हो गई?" रोज़ी ने कुरेदा।

"सैम से तेरी मुठभेड़ तेरे यहां आने के कितने दिनों बाद हुई?"

"दो साल बाद। तू समझ, दो साल शिवजी के ये सारे बराती, 'आफ़्टरनून' वाले मेरे सामने दुम हिलाते थे कुत्तों की तरह, जानती है क्यों?"

"क्यों की बात छोड़···दो साल दुम हिलाते रहे यही तसल्ली से बहुत ज्यादा है।"

"मैं भी सोचती हूं, दो साल एक लंबा अरसा होता है। ये कम्बख्त पहले क्यों नहीं भौंके?"

"यह क्रेडिट तेरी शख्सियत को है। तेरी शख्सियत इससे पहले उनकी समझ में न आई होगी।"

"शायद। कभी-कभी सोचती हूं, वहीं मुझसे गलती हो गई एक।"

"क्या?"

"जब ये ग़ौर से मुझे जांचते-परखते रहे, मैं उनकी भलमनसाहत पर रश्क करती रही। सच शानी, मैं सोचती थी, खामख्वाह बदनाम करनेवाले उल्टी-सीधी बातें बनाते हैं। कितने-कितने अच्छे लोग होते हैं इस दुनिया में···"

"गलती नहीं रोज़, बाहरवालों से तेरा साबक़ा नहीं पड़ा था न?"

"पड़ा भी होता तो शायद मैं न समझती उनके मन का छल-प्रपंच। सैम से तो पाला पड़ा था, क्या जान पाई मैं इसके बारे में?"

"औरत जात के प्रति इसके रवैये का पता शंकर साहब को भी तो रहा होगा?"

"था···कहते थे, सैमी मुख-मैथुन करता है लेकिन दोस्त अच्छा है।"

"उन अच्छाइयों का सहारा तूने क्यों नहीं लिया?"

"ऐसी कोई अच्छाई मुझे नजर ही नहीं आई, जिसका सहारा लिया जाए।"

"शंकर साहब की बात से तू इत्तिफ़ाक करती है?"

"पता नहीं।"

"मतलब ?"

"कभी लगता है, वह ठीक कहते थे। मूड अच्छा रहे तो सैम दूसरों व
नहीं करता। लेकिन फिर लगता है, यह आदमी उदारता के खोल में एक ता
है। अपने को तरक्कीपसंद माडर्न कहने के चक्कर में इसकी तानाशाही क
पड़ गई है और अब यह धोबी का कुत्ता बन गया है, न घर का न घाट का।"

"तू वाकई बहुत दुखी हो गई है इससे ?"

"अगर मैं एफोर्ड कर सकती तो इसकी दी हुई नौकरी को लात मार व
जाती।"

"उससे क्या होता ?"

"इसका घमंड तो टूट जाता कि कोई इसके मुंह पर तमाचा भी लगा
है।"

"इससे तुझे क्या मिलता ?"

"मेरी आत्मा को शांति मिल जाती।"

"तू पागल है। आखिर काम करने कहीं तो जाती ?"

"कहीं मेरा कोई वाकिफ़ तो न होता।"

घंटों उनके इंतजार में बैठा रहता था, मैं ड्राइंगरूम में झांकने भी नहीं जाती थी
कभी नौकर एक प्याली चाय बनाकर दे आता था, कभी वह भी टाल जाता थ
और आज, वही मेरी जड़ खोद रहा है। जरा-जरा-सी बात नमक-मिर्च मिलाव
पहुंचाता रहता है। तुम्हें पता है, हमारी दोस्ती के अफसाने भी बनने लगे हैं।"

"अंदाजा लगा सकती हूं।"

"सैमी एक दिन ताने दे रहा था।"

"अच्छा!"

"कह रहा था, तुम लेजबियन हो, तुम्हारी दोस्ती किसी आदमी से नहीं सकती···स्साला।"

"दोस्ती जब उससे नहीं हुई तो वह कुछ भी कह सकता है।"

"मुझे तो यह कभी-कभी परवर्ट लगता है।"

"कोई गड़बड़ी कहीं है जरूर।"

"आजकल इसकी मेहरबानी किरन हंस पर ज्यादा है।"

"लेनदेन में विश्वास रखनेवाला आदमी है। जो इसकी जरूरत पूरी करेग
उसकी जरूरत यह भी बजा लाएगा। इसमें क्या है?"

"एक दिन···बहुत पहले की बात है···बता रहा था, किरन और उसका प
दोनों ग्रुप-सेक्स वाले लोग हैं। पता है, जब मैं नौकरी पर आई-आई थी तो ए
दिन इसने मुझे उसके घर भेजा था।"

"अच्छा···"

"यह पता लगाने कि ग्रुप-सेक्स वाली बात सही है कि नहीं।"

"अगर सही हो भी तो एक बार जाने से पता चल जाता है?"

"नहीं, नहीं···उसकी मर्जी थी, मैं दो-चार बार जाऊं। किरन के पति से दोस
करूं, फिर एक दिन वह भी मेरे साथ चलेगा।"

शाहाना ने रोजी की ओर बड़ी-बड़ी आंखों से देखा एक बार, बोली कु

मिजाज का है। मुझे लगा, कहीं हुस्नोइश्क पर उसकी परछाईं भी पड़ जाए तो पथरा जाएं बेचारे हुस्नोइश्क के मारे।"

"आजकल कुन्तल मेहता के क्या हाल हैं ?" शाहाना ने विषय बदलने की गरज से पूछा।

"बाहर गई है, वह भी कुत्ती चीज़ है।"

"क्यों, क्या हो गया ?"

"उसके साथ होना क्या है। वह तो हमेशा की कुत्ती है और रहेगी। घिन आती है जब इस उम्र में चेहरे पर रंगोरोगन पोतकर भटकती हुई आ जाती है जब-तब।"

"ऑनरेरी मालकिन है भई, ऐसे मत बोलो।"

"प्रवीर कहता है तो दोहरी हो जाती है।"

"इस बार प्रवीर को बहुत दिन हो गए। अभी आया तो नहीं ?"

"नहीं···मस्त आदमी है। सैम को तो वही सीधा रखता है।"

"उसीको अपना गुरु मान ले। कम-से-कम 'आफ्टरनून' में तेरी सुरक्षा पक्की हो जाएगी।" शाहाना मुसकुराई।

"रहने दे···बॉस की पंखी रही हूं। अब अगर बॉस की नजर से गिरकर आज संवाददाता को जाऊं तो कल चपरासी भी लाइन में खड़ा हो जाएगा। क्या मैं इतनी गई-गुजरी हूं ?"

"इतनी महान् बात तू तो सोच नहीं सकती, यह किसके दिमाग की उपज है ?"

"इस दुनिया में क्या दो संत हुए हैं ? एक दिन संत सैम्युअल ने यह बात कही।
"

"जरूर तुम प्रवीर के साथ देखी गई होगी।"

"हां, हां, उस महीने वह बाहर गया ही नहीं। जब दफ्तर एक है तो मुलाकात होगी ही। कई बार हमने एकसाथ कॉफ़ी पी···"

"सैम को जलन हुई होगी।"

"जलन तो उसे तिनका खड़कने में भी होती है। एक और बहाना है, शादी करो, माडर्न बनो और किसीसे हंसकर बोल भी दिया तो सिर से पांव तक जल उठता था···"

"था क्या, अब नहीं है ?"

"अब तो कहता है, मुझसे हाथ धो चुका है···कई बार उसने गुस्से में यह बात मुझसे कही है, बार-बार दूसरों से कहता रहता है।"

"इन सभी बातों का अंत हो सकता है रोज़, अगर तू एक बात पर विचार करे।"

"शादी ? है न ? प्रवीर ने भी यह बात कई बार कही है···अगर सही आदमी मिल जाए तो मैं बुरा भी नहीं मानती···लेकिन शंकर क्या दुबारा मिल सकते हैं मुझे ?"

"शंकर न सही, उनके आसपास तक का कोई आदमी तो मिल सकता है।"

"मेरी आदतें बहुत बिगड़ चुकी हैं शानी, मैं किसीके साथ समझौता नहीं कर पाऊंगी अब।"

"वक्त आने पर सब ठीक हो जाता है। जब जिम्मेदारियां आदमी के सिर पड़ती हैं तब वह निभा भी लेता है।"

"शंकर के गुजरने के बाद ही यह विषय उठाया गया था। उन्हींके दोस्तों ने बात शुरू की थी। सैमी भी वहीं था। इसने बड़ा विरोध किया था। बोला, अभी उसे अपने पांव पर तो खड़े हो जाने दो। जल्दी क्या है···अभी तो पति की चिता भी ठंडी नहीं हुई उसके, और अकेले में अपनी बांहों के घेरे में लेकर मुझसे बोला था, 'तुम मेरी हो और मेरी रहोगी।' "

"तू मान-न-मान, सैमी तुझे चाहता है रोज़ !"

"यह मोगालता मुझे भी था। मैंने सोचा था, चलो इसीके सहारे जिन्दगी कट जाएगी। लेकिन किसीके सुख का पदार्थ बनकर जिन्दगी चल सकती है क्या ?"

"जिन्दगी तो चल सकती है, मन नहीं चलेगा।"

"मन का तो सारा कारोबार है, मन ही न चला तो जिन्दगी क्या चलेगी ?"

"बहुत-से लोग मन को बालाएताख रख जिन्दगी चलाते रहते हैं।"

"उनमें मुझे तो नहीं मानती तू ?"

"मैं बता रही थी···"

"कभी-कभी सोचने लगती हूं, एक औरत का शादी करना क्या बेहद जरूरी है ?"

"जरूरी तो नहीं है, लेकिन शादी न करने की कोई वजह होनी चाहिए।"

"क्या इतना काफी नहीं है कि हम अकेले रहना चाहते हैं ?"

"अकेले क्यों रहना चाहते हैं ? दोस्त मिला नहीं इसलिए या हम किसी खास आदमी को पाना चाहते थे, पा नहीं सके इसलिए ?"

"दोनों ही बातें सही हो सकती हैं या इनसे अलग एक तीसरी बात हो सकती है।"

"क्या ?"

"कोई भी। हर व्यक्ति के अपने कारण हो सकते हैं।"

"देखो दोस्त, यह जिन्दगी एक अकेली यात्रा है जहां हम अकेले आते हैं और अकेले ही यहां से हमें जाना पड़ता है। जितने दिन हम यहां रहते हैं उतने दिन तो कोई हसीन साथ होना चाहिए। शादी की बात किसी ज़माने में इसीलिए तो सोची गई होगी।"

"लेकिन आज शादी का मतलब यही है ?"

"यही होता तो सैम साहब जैसे लोगों को सैय्यारे में कोई और जगह ढूंढनी पड़ी होती।"

"फिर..."

"फिर क्या ? उनके बावजूद दुनिया चल रही है और इस दुनिया में सभी सैम्युअल नहीं हैं। रही शादी की बात। अगर कोई तुम्हें भा जाए और शादी करके उसके साथ एक जिन्दगी चला सको तो तुम्हारी खुशकिस्मती।"

"यहां जरूरी साथ है, शादी नहीं, फिर शादी पर ही जोर क्यों ?"

"क्योंकि अफवाहों का मुकाबला सब नहीं कर सकते और साथ का दामन अफवाहों से जुड़ा हुआ है।"

"लेकिन शाहाना डियर, मैं कुवारी कन्या नहीं हूं ?"

"मैं तेरी बात नहीं कर रही।"

"जिन्दा तो मैं भी रहूंगी लेकिन वह जिन्दगी क्या होगी !"

"तू उसे बहुत चाहती है ?"

"आज तक के चाहे हुए सब कुछ से ज्यादा···एक अपवाद के साथ।"

"वह अपवाद है मौसी ?"

"हां···"

"तू शादी नहीं कर सकती ?"

"मैं शादी को जिन्दगी की शर्त नहीं मानती।"

"फिर शादी की सलाह मुझे क्यों देती है ?"

"क्योंकि तू अफवाहों में अपने-आपको गुम करने लगती है। न तू रिश्ते बना सकती है, न चल सकती है।"

"मैं समझी नहीं ?"

"इसमें न समझने जैसी कोई बात नहीं है। बेकार परेशान होकर अपना वक्त जाया करने से बेहतर दो काम हैं तेरे सामने, और तू दोनों को नजरअन्दाज कर रही है।"

"मसलन···"

"एक तो यह कि कोई रिश्ता कायम कर ले किसी कायदे के आदमी के साथ। और नहीं तो जो आग ठंडी पड़ चुकी है, उसीको गरम करने की कोशिश कर।"

"दूसरा काम तो एकदम नहीं हो सकता, पहला भी फिलहाल नहीं सोच पाऊंगी। एक तीसरा काम है जिसके लिए रास्ता निकालने में तू मेरी मदद कर।"

"बोल।"

"मुझे भी अपनी कम्पनी में नौकरी दिलवा दे, मैं सैम्युअल की नौकरी उसके मुंह पर मारकर चली जाना चाहती हूं।"

८

उस दिन शनिवार था। शाहाना जब 'आफ्टरनून' पहुंची तो हंगामा हुआ था। पता चला, सैम साहब भयंकर गुस्से में हैं।

शाहाना समझ नहीं पाई आखिर बात क्या है? अपने लिए निश्चित मे पर्स रखा, थोड़ी देर पड़े हुए पत्र इधर-उधर करती रही। रोज़ी अपनी तल्लीन थी।

"कुछ बताएंगे, सैम साहब क्यों नाराज हैं?" उसने संयुक्त संपा केबिन में जाकर सवाल किया।

"आपके कॉलम में शायद कुछ ऐसा चला गया है जो नहीं जाना चाहिए

शाहाना वापस चली आई। पिछले चार सप्ताहों से लगातार उनका व अवैध संबंधों पर जा रहा था। कॉलम को चलते हुए इतने दिन बीत चुके अपनी सहूलियत के लिए शाहाना ने समस्याओं का वर्गीकरण कर लिया था यह कॉलम शुरू हुआ था तब सैम साहब की मदद से सुझाव वह खुद ही करती थी। आगे चलकर सैम को उसके सुझावों पर विश्वास हो गया तो मद हाथ उन्होंने खींच लिया और शाहाना को खुद लिखने की छूट मिल गई। समस्याएं बहु-आयामी थीं—मानसिक, शारीरिक, वैवाहिक, शिक्षा-कानून संबं सबके बारे में दखल रखना किसी एक व्यक्ति के वश की बात नहीं थी। शा भी इतनी अनुभवी नहीं थी कि दावे से किसी भी विषय पर लिखने बैठ जाए

बहुत सोचने-समझने के बाद उसने अपनी समस्या बाबु साहब के स रखी।

याएं इतनी बीहड़ थीं कि समझ नहीं पा रही थी उन पत्र-लेखकों का समाधान
ैसे करे ? भाई-बहन के संबंध, ससुर-बहू, सास-दामाद, सौतेले मां-बेटे का
। इन संबंधों से पीड़ित पार्टी के खतों का जवाब देना खतरा मोल लेना
ायद इसीलिए वह टालती जा रही थी।

तभी एक ख़त उसे ऐसा मिला जिसके बाद अवैध संबंधों की सारी समस्याएं
ठाने का फैसला उसने ले लिया। ख़त एक उन्नीस बरस की लड़की का था।
कस्बे की उस लड़की के अनुसार, यह उसका पांचवां ख़त था। उसने लिखा था,
गर उसके ख़त का जवाब नहीं दिया गया तो वह जहर खा लेगी 'कांफ़ि-
यल' के नाम पर। उस ख़त में ऐसा कुछ था कि उस हाल ही में बालिग हुई
ान लड़की के लिए शाहाना के मन में हमदर्दी जागी। अवैध संबंधों वाले
में ढूंढ़ा तो उसी लेखिका के चार ख़त और मिले। वह एक उच्च अधिकारी
टी थी। जब वह नौ बरस की थी तब से उसका पिता उसके साथ बलात्कार
रहा था। तपेदिक की मरीज मां सदमे से मर न जाए, इस दहशत से वह
ी बेजुबान बन गई थी। जब वह बच्ची थी तो उसने सोचा, सारे पिता शायद
ही करते हों। बारह-तेरह की हुई तो उसे पता लगा, उसके साथ कुछ गलत
हा है। अब वह युवती है। उसकी जिन्दगी में एक युवक आ गया है, जो
शादी करना चाहता है, लेकिन अपने अपराध का बोझ लिए वह किसी नई
गी की शुरुआत नहीं करना चाहती। उसने पूछा था, वह क्या करे ? अगर
ुवक से सब कुछ बता देती है तो वह निश्चित रूप से वापस चला जाएगा,
बताती तो खुद को अपराधी मानने का वजन बढ़ता जाता है।

शाहाना ने उस लड़की के पांचों पत्रों का मसौदा लेकर एक मनोरोग विशेषज्ञ
ात की और साइकोपैथी पर एक पूरा लेख पांच किस्तों में तैयार किया
ी चार किस्तों तक सब सांस खींचे रहे। इस सप्ताह पांचवीं, यानी अंतिम
न छपी थी 'आफ्टरनून' में।

"क्या लिखती रहती हो तुम उस कॉलम में?" उसे देखते ही सैम्पु बरस पड़े, "तुम्हारा विश्वास करके छोड़ दिया तुम्हारे ऊपर···लगता कॉलम तो तुम बंद करवाओगी ही, मुझे भी नौकरी से निकलवाओगी?

शाहाना कुछ नहीं बोली। सामने की कुर्सी पर बैठी भी नही।

"ये देखो···'कांफ़िडेंशियल' की तारीफ में आए हुए खत···बात तक पहुंच गई है, मुझसे जवाब-तलबी हुई है।"

सैम साहब ने दो खुले पत्र शाहाना के सामने फेंक दिए।

शाहाना खामोश खड़ी रही! न बोली, न खत उठाकर देखने की को

"तुमपर भरोसा किया, उसका नतीजा यह निकला। किसने कह ारह के संबंधों पर लगातार लिखती रहो···'आफ़्टरनून' ने समाज- ेका नहीं लिया है। इसका सण्डे पेज परिवारों में पढा जाता है···"

सैम साहब बड़ी देर तक अपनी भड़ास निकालते रहे। जब वह चु ााहाना कुर्सी खींचकर बैठ गई।

"मैंने अपने मन से कुछ नहीं लिखा है बॉस···सारे खत मय नाम-प ास सुरक्षित हैं, आप जब चाहें देख सकते है।"

"खत जाली भी तो हो सकते हैं।" सैम साहब के गुस्से में कोई ड़ा।

"पहली बार मैंने भी यही सोचा था, इसीलिए उस तरह से सारे ार रखती गई थी।"

"बीच में गैप देकर भी तो उन्हें छापा जा सकता था?"

सैम चुपचाप शाहाना को घूरता रहा, फिर उठकर केबिन से बाहर चला गया।

थोड़ी देर शाहाना इंतजार में बैठी रही, फिर उसने भी अपना पर्स उठाया और केबिन से बाहर आ गई।

सोमवार को उसने कम्पनी से आधे दिन की छुट्टी ली और 'कांफ़िडेंशियल' के खतों का पुलिन्दा ले जाकर सैम की मेज पर पटक दिया।

उसने मन-ही-मन तय कर लिया था कि उस दिन से 'कांफ़िडेंशियल' की कहानी खत्म हो रही है।

सैम बड़ी देर तक पुलिन्दे को उलट-पलटकर देखता रहा। खतों को तारीख, विषय के हिसाब से तरतीब दी गई थी।

ऐसे मौकों पर बोर न होने और वक्त जाया न करने के लिए शाहाना अपने पास कोई-न-कोई किताब जरूर रखती थी। उस दिन भी कैथलीन मैक्लो के 'थार्नबर्ड' में वह डूबी रही।

सैम की आवाज कानों में पड़ी तो उसने सिर उठाया।

वह कह रहा था :

"इस कॉलम को लिखने के दौरान जो भी दिक्कतें तुम्हारे सामने आईं; जो भी परेशानियां तुमने महसूस कीं, उनकी बिना पर एक लेख तैयार कर दो। जरूरत हो तो अपने विशेषज्ञों की राय भी ले लेना। उनका परिचय देना, इससे खाम-ख्वाह टांग अड़ानेवालों की ज़बान बंद हो जाएगी। कांफ़िडेंशियल अभी बंद नहीं होगा, लेकिन खत जो तुम चुनो, उन्हें एक बार दिखा लेना।"

शाहाना का काम बढ़ गया। खतों को पढ़-पढ़कर छांटना, सैम को दिखाना, जरूरत पड़ने पर विशेषज्ञ की राय लेना तब लिखना। कुछ हफ्तों तक शाहाना के वक्त का एक-एक इंच कम्पनी की नौकरी, 'आफ्टरनून' के 'कांफ़िडेंशियल' में बंटा रहा।

व्यस्तता की थकान शाहाना के दिलोदिमाग पर अक्स होने लगी थी। इस बीच रोज़ी भी आई तो बातचीत का सिलसिला नहीं जम पाया।

कम्पनी का काम जितना थका देनेवाला नहीं था, उतना सुबह से शाम तक का समय था। सारा दिन केबिन में बैठे प्रिंस चार्मिंग की उपस्थिति के एहसास में बीत जाता था। शाहाना हर दिन नौकरी छोड़ने का इरादा नये सिर से पुख्ता

करती जा रही थी। बस अग्रिम नोटिस देने की बात तय नहीं कर पा
तीन महीने की नोटिस न देकर पैसा ही दे दिया जाए, इस विषय प
विचार कर चुकी थी।

थकी-मांदी उस दिन स्कूटर की तलाश में चलते-चलते वह दिल्ली
कर चुकी थी।

परिमल ने एकदम सटाकर अपनी फिएट खड़ी कर दी, "मैं आप
छोड़ सकता हूं ?" उसने पूछा।

बगैर कुछ कहे-सुने शाहाना कार के खुले दरवाजे से अंदर दाखिल
पिछले कई हफ्तों से वह परिमल को फोन भी नहीं कर पाई थी। हालांकि
उपस्थिति की जरूरत वह कितनी शिद्दत से महसूस कर रही थी।

"कहां चलेंगे ?" प्रगति मैदान पार करते-करते परिमल ने पूछा।

"घर ही चलो।" नपा-तुला जवाब देकर शाहाना चुप हो गई।

परिमल भी कितनी तेजी से उसके इतने करीब आ गया था। गुलमा
और परिमल के खयालों में जाग-जागकर बिताई उस सर्द रात के कुछ
बाद ऐसे ही सड़क पर वह दुबारा मिल गया था, पता नहीं अचानक या ज
कर। किसीके मन की बात कौन जानता है ?

की दूरी पार करके परिमल के बेहद पास आ गया था।

बिना कुछ कहे-सुने दोनों एक-दूसरे से मिलने का इन्तजार करने
शाहाना ने इससे पहले किसी पुरुष के प्रति अपने-आपको इतना विवश नहीं
था और परिमल अपने तमाम अनुभवों के बावजूद एक अजीब-सी ताजगी से
गया था गोया स्त्री-पुरुष संबंधों की दुनिया में अभी-अभी उसने आंख
हो।

झूठे आत्म-गौरव का दामन किसीने नहीं थामा। बिना कुछ कहे-सुने,
दूसरे की जरूरत अपनी जिन्दगियों में स्वीकार करके वे आगे बढ़ गए।

शुरू में उनकी मुलाकातें अनियमित रहीं, फिर नियमित हो गईं, उस ज
की तरह जो इंसान के रोजनामचे में शामिल हो जाती है। अनगिनत शामें
बीतीं, बेहिसाब रातों को परिमल शाहाना के पास देर तक रुका। दोनों की
चीत के मुद्दे बेहद अपने थे, बातें बहुत कम थीं, साथ के लमहों को इंच-दर-इं
लेने की ख्वाहिश ज्यादा। बैठते तो घंटों खामोश बैठे रहते। घूमने निकल
परिमल किसी सुनसान जगह ले जाकर गाड़ी रोक देता। खामोशी के जर्रे-
दोनों अपनी सांसें पिरोते रहते। कभी कहीं जाकर कॉफी पीते, डिनर लेते
वापस आ जाते, शाहाना कुछ पकाती, परिमल एक कुर्सी डालकर रसोई के द
पर बैठा उसे देखता रहता।

"किसी बात से परेशान हो?" परिमल ने पूछा तो शाहाना एकदम अ
वापस आ गई।

"नहीं।" वह बोली, "परेशानी से ज्यादा थकान है।"

"लाओ, अपना हाथ दो।" परिमल ने बायां हाथ स्टियरिंग से हटाकर श
का दायां हाथ थाम लिया। मुसकुराकर शाहाना पास आ गई। उसने परि
आंखों में झांका और सामने सड़क की दूरी नापने लगी।

थकान की परतें सामीप्य की ऊष्मा से खुलने लगीं।

परिमल के साथ मिले हुए समय के चंद टुकड़े शाहाना के लिए अपने
पूरी जिन्दगी होते हैं। हर टुकड़े का एक नया उन्वान होता है। जिन्दगी क
परम्परा में बंधते हुए शाहाना ने कभी नहीं देखा इसलिए उस लीक पर च
बात वह कभी नहीं सोच पाई। पिछले जन्म के किसी भूले हुए संस्कार क
परिमल उसकी जिन्दगी में आ गया था और शाहाना उसके साथ बिताए हु

एक लमहे का हिसाब रख रही थी। मुलाक़ात के इन बेहतरीन कतरों को वह सहे-जती जा रही थी ताकि बाद में कभी जब अपनी जिन्दगी का हिसाब लगाए तो यह न सोचे कि जिन्दगी ने उसके साथ बेइंसाफी की।

परिमल के साथ अपना भविष्य उसने कभी नहीं जोड़ा। वर्तमान भी जहां तक जुड़ गया, उससे आगे जाने की उसने कोशिश नहीं की।

'आफ्टरनून' में स्थापित नया सिलसिला कुछ दिन तेजी से चला। शनिवार का पूरा-पूरा दिन वहीं बीतने लगा। फिर उसमें मंदी आने लगी। 'हमेशा कौन दिन एक-सा रहता है' की तर्ज पर मंदी भी एक दिन खत्म हो गई। कांफ़िडेंशियल का सारा काम शाहाना फिर अकेले दम करने लगी।

सैम साहब का पुराना मूड धीरे-धीरे वापस आ गया।

एक शाम शाहाना से फिर उनकी लंबी बातचीत हुई। इधर की तमाम नई बातों की जानकारी उन्होंने शाहाना को दी। अपने परिवार के किस्से सुनाते रहे, उम्र पर आई अपनी एक रिश्तेदार लड़की का जिक्र करते हुए कहा :

"फूल को खिलते हुए देखा है तुमने कभी ?" उन्होंने शाहाना से पूछा, फिर कहने लगे, "मैंने उसे खिलते हुए देखा है। एकदम खिली हुई जूही लगती है। मैंने ।उसका नाम ही जूही रख दिया है। विश्वास मानो शाहाना, उसके जिस्म से खुशबू आती है। जिधर से गुजरती है, एक संदली हवा का झोंका इंसान मदहोश

वाले की चाहत को थोड़ी आंच की जरूरत पड़ती है, यह सोचकर वह विषय
ाचस्पी लेती रही। उस जूही की कली से मिलने को उत्सुक दिखाई पड़ी।
उस शाम जब वह चलने लगी तब सैम ने उसे रोककर पूछा :
"नहाते समय कभी अपना जिस्म तुमने देखा है ?"
"उसमें देखना क्या है ? आदमी की नजर अपने-आप पड़ जाती है।"
"कभी नहाते समय ध्यान से अपने-आपको देखना, एक-एक अंग अलग-अलग,
ी तरह। इसका एक अपना ही सुख है।"
'देखूंगी' का वायदा कर शाहाना उठ गई।
"देखना, फिर मुझे बताना, कैसा लगा।"
"बताऊंगी।" कहकर उसने सैम से हाथ मिलाया। सैम की पकड़ में उसका
पड़ा रहा, हमेशा की तरह एक हलके झटके के बाद सैम ने उसे छोड़ा नहीं।
ी उत्तेजित आंखें हमेशा से ज्यादा शाहाना के चेहरे पर टिकी रहीं, शाहाना
्लकी बेचैनी हुई।
"प्लीज !" उसने अपना हाथ भरसक खींचते हुए कहा।
"प्लीज क्या ? रोज तुम कोई-न-कोई बहाना मारकर निकल जाती हो।"
"रोज तो मैं आती भी नहीं।" शायद उसके चेहरे पर कुछ विरोधी भाव
ाई पड़े। सैम की पकड़ ढीली पड़ गई और शाहाना ने अपना हाथ छुड़ा लिया।
"आखिर यह लुका-छिपी कब तक चलेगी ? कब तक तुम मुझे बुत्ता देती
गी ?" दयनीयता, कुछ स्वाभिमान, कुछ अपमान मिले-जुले कई भाव एकसाथ
के चेहरे पर दिखाई पड़े।
"उसमें बुत्ता देने की क्या बात है ?"
"और क्या है ? इतने बरस हो गए, अगर मैं तुम्हारे साथ जबर्दस्ती करना
हता तो तुम क्या कर लेतीं ? लेकिन जब मैंने कोआपरेट किया, तुम्हारी मर्जी
तजार किया, अपने मन की चाहत को तरह दी, तब तुम्हारा फर्ज भी तो कुछ

"तुम्हें उसने बताया तो होगा ?"

"कुछ खास नहीं, और अगर कुछ कहा भी हो तो वह सिक्के का एक पहलू गा। किसी भी बात के कम-से-कम दो पहलू तो होते ही हैं।"

"इस समय तो तुम जा रही हो, किसी और दिन बात करेंगे।"

"श्योर..." और शाहाना केबिन से बाहर आ गई।

रोजी जा चुकी थी। बहुत दिनों बाद प्रवीर सेन नजर आया अपनी सीट पर। गे की दीवार के पार संवाददाता कक्ष तक शाहाना की आवाज नहीं पहुंच सकती ।

अभी-अभी सैम से काम का बहाना करके पिंड छुड़ाया था। प्रवीर के पार्टीशन जाकर उससे बात करना या उसे एक प्याला कॉफ़ी के लिए बुलाना गलतफहमी दा कर सकता था। वैसे तो फोन करना भी खतरे से खाली नहीं था। इधर नंबर लाने से उधर घंटी का बजना, प्रवीर का अपनी मेज से उठकर टेलिफोन सुनने ना, सब कुछ दिखाई पड़ता रहता, लेकिन यह रिस्क लिया जा सकता था। फोन मोश भी हो सकता था।

शाहाना ने प्रवीर का एक्सटेंशन मिलाया और जब प्रवीर ने फ़ोन का रिसीवर ठाया तो 'नीचे आओ' कहकर उसने रिसीवर रख दिया, और बगैर किसीसे हे-सुने वह 'आफ्टरनून' के हॉल से बाहर हो गई।

प्रवीर नीचे आ गया तो दोनों कॉफ़ी हाउस में जाकर बैठे।

"आजकल तुम्हारी सहेली बड़ी गुमसुम रहने लगी है!" प्रवीर ने कॉफ़ी का

"इसीलिए अब हर तरफ से आंखें मींच ली हैं,

"क्या करूं ? कुछ देखने से डर लगता है।"

"तो आंखें फोड़ लो, हमेशा के लिए छुट्टी मि

"चलो, वक्त आने पर वह भी कर लूंगा। फि

"मैं कम्पनी की नौकरी छोड़ रही हूं।"

"क्यों ?"

"क्योंकि रोज़ी को वहां काम दिलाना है।"

"इसका क्या भरोसा कि तुम्हारे छोड़ने
मिलेगा ?"

"ऐसा इन्तजाम करने के बाद ही छोड़ूंगी।"

"लगता है, कम्पनी की मालकिन तुम्हीं हो !

"मालकिन तो नहीं हूं, रसूख हैं मालिकों से।'

"लेकिन रोज़ी को यहां क्या तकलीफ है ?"

"शुक्र है, तुमने पूछा तो।"

"कैसी बातें कर रही हो तुम आज···"

"अपनी खुशकिस्मती समझो कि बात कर रही

"वह तो समझ रहा हूं।"

शाहाना कुछ नहीं बोली। दोनों थोड़ी देर खा

"बातें करते हो तीसमारखां की तरह," पहल
फते हो तो महीनों तुम्हारा अता-पता नहीं रहता।"

"अब वह मेरे हाथ में तो नहीं है।"

" 'आफ़्टरनून' में जो कुछ होता रहता है, उसका तुम्हें पता नहीं चलता ?"

"चलता क्यों नहीं, लेकिन मियां-बीवी जब राज़ी हैं तो हम काज़ी क्यों बनें ?"

"मियां-बीवी राज़ी हैं, यह तुम्हें लगता है न ?"

"भई मियां तो शिकायत करता नहीं और जब किसी बीवी ने कुछ कहा नहीं तो हम कैसे मान लें, वह राज़ी नहीं ?"

"बीवी को पता चले कि आपके पास पनाह के लिए आया जा सकता है तब न !"

"तो क्या मैं एक तख्ती लटका लूं गले में ?"

"तुम क्यों लटकाओगे ! तख्ती तो उन बीवियों को लटकाना चाहिए, जिन्हें पनाह की जरूरत है।"

"छिः-छिः, क्या बीवियों के मियां इतने नामर्द हो गए हैं ?"

"नामर्द तो हो गया है आज का नौजवान, जिसको आधी उम्र बिताकर भी कोई लड़की नहीं मिल रही है।"

"और वह लड़की जो उन्हींके नक्शेकदम पर आगे बढ़ रही है ?"

"उस लड़की की उम्र अभी आधी नहीं बीती है।"

"आलम यही रहा तो बीत जाएगी।"

"तो आप क्या उसके इंतजार में बैठे रहेंगे ?"

"क्या करूं, बैठना तो नहीं चाहता लेकिन मेरे सामने विकल्प भी क्या है ?"

"कोई सुझाव दूं तो मानोगे ?"

"रोज़ी भी तो कहीं झुकी है उनके सामने ?"

"है नहीं, थी…"

"आगे भी यह सम्भावना बनी रह सकती है ?"

"कुंवारे रहने पर आदमी वाकई लल्लू बना रहता है।"

"इसमें लल्लू बनने की क्या बात है ? हां, हम यह मान लें
कुंवारी, लड़कियां ज्यादा होशियार होती हैं।"

"आपको पता होना चाहिए कि औरत अपना अपमान
भूलती।"

"रोज़ी का अपमान हुआ है ?"

"रोज़ी के साथ क्या हुआ है, यह आप भूल जाइए।"

"याद क्या रखें ?"

"यह कि रोज़ी जैसी किसी लड़की को अपनाने का प्रस्ताव आ
कभी आया तो उसके अतीत की परवाह किए बग़ैर उसके साथ
बात आप सोच सकते हैं ?"

"यह निर्भर करेगा प्रस्ताव रखनेवाले पर।"

"आपका मतलब ?"

"प्रस्ताव रखनेवाला कितना वक्त मुझे देता है इस नज़रि
लिए…रोज़ी एक अच्छी दोस्त है, दोस्त की हैसियत से उसे जान
भी लगती है लेकिन महज इतने से जीवन-भर का साथ नहीं हुआ
"जीवन-भर साथ की बात सोचने के लिए कह रही हूं, फ़ौर
लिए नहीं। सोचते-सोचते अगर आप किसी नतीजे पर पहुंच
दीजिएगा वरना कोई बात नहीं।"

"इतना तो फेयर है…लेकिन जेन आस्टेन की उपमा तुम कब से

"जब से तुम्हारे जैसे गूंगे-बहरे दोस्तों से पाला पड़ा है।"

अपनी भलाई करना चाहता है।"

"तुमने तो उसे पटा लिया था।"

"वह पटना मुस्तकिल नहीं था, जितने वक्त के लिए था, वह वक्त बीत चुका है।"

"कुछ कह रहा था क्या ?"

"कहता तो वह कब नहीं रहा ! अब मेरे सहने की हद गुजर गई है।"

प्रवीर थोड़ी देर सोचता रहा, फिर :

"फिर कम्पनी की नौकरी मत छोड़ो।"

"क्यों ?"

"यहां भी छोड़ दोगी, कम्पनी भी छोड़ रही हो, तो करोगी क्या ?"

"फ्री-लांसिंग।"

"इस लफंगे देश में फ्री-लांसिंग कभी प्रोफेशन नहीं बन सकता, और लड़कियों के लिए तो एकदम नहीं।"

"मैं आज़माना चाहती हूं।"

"मैं ऐसी राय नहीं दूंगा।"

"फिलहाल मुझे तुम्हारी राय की जरूरत नहीं, जब होगी तो पूछूंगी।"

"तब तक देर हो चुकी होगी।"

"मेरी योजना में देर कभी नहीं होती।"

"अच्छा, अब उठोगी या यहीं जमे रहने का इरादा है ? अभी मुझे लौटकर लिखना भी है।" प्रवीर ने बिल लाने के लिए बेटर को ढूंढ़ने के लिए इधर-उधर नजर दौड़ाई।

"रौब क्यों दे रहे हो ? लिखना है तो जाओ, तुम्हें रोकता कौन है ?"

"अभी आपको घर भी तो छोड़ना होगा, जा कैसे सकता हूं ?"

"घर मैं चली जाऊंगी, आप जाइए।"

"क्योंकि अभी मेरे पास आधे घंटे का समय है। मुझे जिनसे मिलना है, उन्होंने आधे घंटे बाद का समय दिया है।"

"तुम्हें यहां अकेले छोड़ जाऊं ?"

"मैं कोई दूध-पीती बच्ची हूं याकि आप मेरे गार्जियन हैं ?"

"दोनों में से कोई नहीं। एक तीसरी बात यह है कि मैं एक सभ्य-सुसंस्कृत आदमी हूं और हमारी संस्कृति में किसी कन्या को अकेला छोड़कर चले जाना तहज़ीब के खिलाफ माना जाता है।"

"तो अपराधीजी, खामोशी से बैठे रहिए। अब मैं ठीक दस मिनट बाद मैं यहां से उठ जाऊंगी और आपको आपत्ति हो तो भी आप मुझे इंडिया इंटरनेशनल सेंटर तक छोड़ दीजिएगा।"

परिमल के साथ इंडिया इंटरनेशनल सेंटर के कैफ़ेटेरिया में बैठी शाहाना बड़ी देर तक रोज़ी की बात करती रही। उस दिन पहली बार ऐसा हुआ कि बात-चीत का विषय एक तीसरा व्यक्ति बना उनके बीच।

"रोज़ी का नौकरी छोड़कर वहां से जाना कुछ जंचा नहीं। इसका मतलब हुआ वह परिस्थितियों का मुकाबला नहीं कर सकती।" परिमल ने शाहाना से सुनने-समझने के बाद कहा।

"मतलब जो भी हो, इस समय समस्या यही है।"

?"

"अगर वह अकेली रह सके तो शिमला या नैनीताल-रानीखेत में उसके कुछ
रहने की व्यवस्था हो सकती है।"

"इस समय उसका अकेले रहना ठीक नहीं होगा। मानसिक तनाव इतना
रहा है कि हर घड़ी तो उसके फैसले बदलते हैं।"

"कोई ऐसा नहीं कि उसके साथ जाकर कुछ दिन रह सके?"

शाहाना कुछ देर सोचती रही फिर अपने-आप ही उसने विषय समाप्त कर
।

"छोड़ो···कुछ करेंगे।" वह बोली।

उस शाम परिमल को किसी मीटिंग में जाना था। उसके बाद एक काकटेल
थी। दोनों जल्दी उठ गए वहां से।

आने वाले कुछ दिनों में सैम साहब का रवैया रोजी के प्रति तल्ख होता गया
रोजी के लिए शाहाना की चिन्ताएं उसी रफ्तार से बढ़ती गईं। शाहाना
ना की तरह 'आफ्टरनून' गई लेकिन सैम के केबिन में उसने झांका नहीं। जाने
समय भी बदल दिया। पहले दोपहर बाद वहां जाती थी, चारों ओर से घूम-
कर। अब घर से चलकर वहीं पहुंचने लगी सबसे पहले। लंच से पहले का
य वैसे भी व्यस्त गुजरता था। इसलिए सैम साहब से दुबारा मुठभेड़ नहीं हुई।
हफ्ते ऐसे ही गुजर गए।

फिर एक शनिवार···

वह तकरीबन ग्यारह बजे 'आफ्टरनून' के आफिस पहुंची तो सैम साहब जमे
थे। पता चला, कानपुर से मालतीजी आई हैं।

रोजी इनके किस्से सुना चुकी थी। साल में सिर्फ एक बार आती थीं एक दिन
लिए। पतिनुमा एक सज्जन उन्हें सैम साहब के पास तक पहुंचाकर चले जाते।
दिन सैम साहब कोई काम न करते, कोई उनके पास न जाता, दिन भर चाय-
फी के दौर चलते, दोनों एक-दूसरे की दिलजोई करते। शाम को वह जहां भी
ती, सैम साहब की गाड़ी उन्हें छोड़ आती। रोजी ने बताया, यह सिलसिला पिछले
ई वर्षों से चल रहा था।

जिस साल रोज़ी 'आफ़्टरनून' में आई थी, उस साल जब बड़े प्यार से सैम साहब ने रोज़ी को उनके सामने पेश किया :

"मेरे जिगरी दोस्त की बीवी है, मुझे बड़ी प्यारी है माल[illegible] सिखा दो जिससे इसकी जिन्दगी में चन्द खुशियां भी शामिल हो सकें

मालती ने बांह पकड़कर रोजी को अपनी ओर खींच लिया थ[illegible] न होती तो उनकी गोद में गिर पड़ी होती।

उसके बाद मालती जब भी दिल्ली आई, रोज़ी के साथ ही टि[illegible] सुबह-शाम, दोपहर जब भी मौका मिला, उनसे मिलने रोजी के हो[illegible] कभी उनकी गाड़ी आकर उन्हें ले जाती, कभी कॉमन रूम के कोने[illegible] भर के अनुभव का तखमीना मालती के सामने रखते, हर तरह की[illegible] बयान करते। सौ-सौ जान से कुर्बान होकर मालती उनके संस्मरण[illegible] सुनातीं। वक्त हवा के पर लगाकर उड़ जाया करता।

एक दिन रोज़ी के सामने सैम साहब ने मालती के गदराए[illegible] बांहों में भरकर उनके होंठ चूम लिए थे।

"हाय, हाय, उसे क्यों छोड़ रहे हो ?" रोज़ी की ओर इशार[illegible] दोहरी हो गई।

सैम साहब ने आगे बढ़कर रोज़ी को अपनी बांहों में समेट [illegible] ने लपककर केबिन के कुंडे पर हाथ रख दिया था, ताकि बाहर [illegible] खोले तो पता चल जाए।

रोज़ी के होंठों पर देर तक विश्राम पाने के बाद सैम साहब [illegible]

भर लिया। एक मर्द की तरह उसे चूमती-चाटती रहीं। जब उनका सिलसिला खत्म हुआ तब रोज़ी से वही सब करने को कहा गया। रोज़ी ने मालती के पुष्ट सीने में अपना मुंह छिपा लिया था।

लेकिन रोज़ी ने शाहाना से स्वीकार किया था कि मालती के साथ हर तरह के संबंध वह जी चुकी थी। शायद बाकी जिन्दगी भी जीती रहती लेकिन सैम का इरादा तो एक पूरी फौज तैयार करने का था, ताकि एक बेनाम सेक्स-गुरु वह बने रहें और हर तरह की तृष्णा उनके आसपास जलती-बुझती रहे। मालती को इसमें कोई आपत्ति नहीं थी, लेकिन रोज़ी अपने-आपको इतनी आधुनिक नहीं बना पाई। कोशिश उसने जरूर की लेकिन जब मायूसी हाथ लगी तो वह पीछे हट गई। सैम्युअल से उसने कुछ नहीं कहा, लेकिन एक दिन मालती के सामने रो पड़ी :

"मुझसे नहीं होता···मुझे नफरत है इस सबसे।" रोज़ी बिखर गई थी।

मालती ने समझदारी से काम लिया। रोज़ी के आंसू पोंछते हुए उन्होंने उसे सीने से लगा लिया।

"किसको अच्छा लगता है मेरी जान, लेकिन इन साले आदमियों को अपने कदमों पर झुकाने के लिए सब कुछ करना पड़ता है, इन पिल्लों को यह क्यों पता चले कि हम किसी बात में कम हैं? कोई ऐसा काम है जिसे सिर्फ वही कर सकते हैं, हम नहीं?"

रोजी और मालती में पट गई। उसके बाद सैम साहब के साथ मालती की अंतरंग मुलाक़ातों में रोजी शामिल नहीं हुई, मालती ने इस बात का ध्यान रखा, बदले में रोजी ने मालती के दिल्ली आने के बाद की सारी सुख-सुविधाएं जुटा दीं।

पहले सैम ने उत्सुकता जाहिर की, उसके शामिल न होने का कारण पूछा, फिर बिफर गए।

'अपने को समझती क्या है' के अंदाज में उन्होंने रोज़ी को अपने पास खींच लिया। तड़पकर टूटती उसकी नसों में जहर भरते रहे लेकिन जब रोज़ी बर्फ होती गई तो सहमकर पीछे हट गए। कुछ दिनों खामोश जायजा लेते रहे फिर खुद भी ठंडे होने लगे।

शाहाना के मन में उत्सुकता हुई कि क्या इस बार भी मालती रोज़ी के पास ही टिकी है? इधर तीन दिनों से रोज़ी का फोन नहीं आया था और जब शाहाना

। उसके हॉस्टल में फोन करके पता किया तो वह मिली नहीं।

शाहाना अभी अपनी मेज के पास पहुंची ही थी कि सैम साहब का बुलावा आ गया।

वह चुपचाप उनके केबिन में पहुंची।

सैम साहब ने तपाक से शाहाना का परिचय मालती से कराया, "शाहाना चौधरी हमारे लिए काम तो काफी अरसे से कर रही हैं, लेकिन दोस्ती के दायरे में हमारी नई खोज हैं, और आप हैं मालती, पैदाइशी लेखक और पत्रकार।"

शाहाना और मालती एक-दूसरे की ओर देखकर मुसकुराए। मालती ने शाहाना को अपने पास बिठा लिया। दोनों को एक-दूसरे से परिचय होने के लिए छोड़कर सैम साहब केबिन से बाहर चले गए।

ग्यारह से तीन तक का समय काटना शाहाना को उतना बुरा नहीं लगा। लेकिन जब कोशिश करके भी वह तीन के बाद वहां से नहीं निकल पाई तब उसे बड़ी कोफ्त हुई।

उस दिन सैम साहब ने सभी कारण मानने से इंकार कर दिया। मालती ने उसका हाथ पकड़ा तो एक पल के लिए भी उसे उठने नहीं दिया। किसी तरह जब : बजे के करीब वह बमुश्किल तमाम निकली तो उसे अपने-आपपर गुस्सा आ रहा था। सारी दुनिया के प्रति एक आक्रोश भड़क उठने को तैयार था।

उसने स्कूटर पकड़ा और सीधी घर की राह ली।

सैम्युअल साहब का इसरार था कि वह मालती के साथ रुकी रहे, उन्हें अपने घर ले जाए या उनके साथ वहां जाए जहां वह ठहरी हैं। शाहाना का मन था पूछे, वह कहां ठहरी हैं, लेकिन देर हो जाने के कारण खीझी थी इसलिए टाल दे।

से दबाती रही।

विदा होते समय मालती ने उससे दोस्ती का वायदा ले लिया था।

६

आनेवाले तीन महीने के अंदर शाहाना ने दरियागंज वाली कम्पनी छोड़ लेकिन रोज़ी उसकी जगह काम करने नहीं गई। शायद सैम से उसका समझौता गया या ऊपरी बॉसों से मिली···पता चला, किसी पी० के० से उसकी दोस्ती गई है। शाहाना निश्चित रूप से कुछ नहीं जानती। इधर रोज़ी से उसकी मु क़ात भी नही हुई। एक बार उसने नौकरी के लिए पूछा ज़रूर था।

"फिलहाल मैंने यहीं टिके रहने का फैसला कर लिया है शानी···" रोज़ कहा था।

शाहाना कुछ नहीं बोली, उसने बुरा भी नहीं माना। कम्पनी की नौकरी वैसे भी छोड़नी थी। परिमल के साथ बचे हुए समय का काफी हिस्सा बंट था। वह व्यस्त हो गई थी।

फ्री-लांसिंग का दौर नये सिरे से चला। 'लाइट', 'मॉर्निंग', 'न्यू करेण्ट', 'रा के लिए उसका नाम नया नहीं था। फरमाइशी लेखन के प्रवाह में उसने खुद बेनाग छोड़ दिया। अपनी कलम का सौदा करना वह सीख गई थी। अधिक की जनानी-मर्दानी कुर्सियों के सामने उसकी बराबर की पूछ थी, क्योंकि ताल्लु की जमीन पर पहला कदम उठाने में वह कभी नहीं झिझकी।

परिमल के करीब आने के बाद एक नया शौक जन्मा उसके मन में। शुरु हल्की-फुलकी तुकबंदियों से हुई। फिर लाइनें अपने-आप बन-बनकर फिस लगी उसकी कलम से।

एक दिन उसकी मेज पर पड़े कागज इधर-उधर करते हुए कुछ पुरज़े परि को मिले तो वह हैरान रह गया। उसने कुछ कहा नहीं लेकिन शाहाना उ खामोश चिंतन का विषय बन गई। आकाशवाणी की उर्दू यूनिट में प्रसा गीत, गजल, नज्मों, रुबाइयों का जिक्र जब परिमल ने कई बार किया तब शाह

अपनी लिखी हुई सारी पंक्तियां लेकर उर्दू यूनिट पहुंची। कुछ कविताएं पसंद की गई। आनेवाले महीनों में उन्हें प्रसारित भी किया गया। यह एक नई सफलता थी। शाहाना खुश थी।

'आफ्टरनून' चल रहा था लेकिन शाहाना जानती थी, ज्यादा दिन वह भी नहीं चल पाएगा, क्योंकि एक तो सैम साहब की फरमाइश बढ़ती जा रही थी, दूसरे विषय अब बोर लगने लगा था, इधर फ्री-लांसिंग उसे रास आती जा रही थी और अब वह इस प्रोफेशन के रास आने की बात सोच रही थी।

सप्ताह का एक दिन छोड़कर शाहाना का समय ज्यादातर घर पर ही बीतने लगा। परिमल आता तो दोनों थोड़ा-बहुत ड्रिंक लेते। परिमल के हाथ से पहला घूंट भरने से बाद शाहाना कभी-कभी ड्रिंक पसंद करने लगी थी। मूड न होता तो दोनों विक्रम में जाकर कॉफ़ी पी आते, कभी ऐसे ही फिएट शहर के बाहरी सरहदों की दूरियां नाप आती। रात का खाना कहीं साथ खाते फिर परिमल उसे छोड़ता हुआ घर चला जाता। परिमल न आ पाता तो अकेली चहलकदमी करती हुई शाम को वह दूर निकल जाती।

बिना मतलब किसीसे मिलना, गप्पें लगाना शाहाना को कभी पसंद नहीं आया, न इधर-उधर की बातों में वक्त जाया करने का फलसफा वह समझ पाई।

शाहाना को लोग स्नौब कहते हैं। पहली बार जब उसे इस विशेषण का पता चला तब उसने स्नाबरी को उलट-पलटकर देखा, समझा। उसे लगा, अगर स्नौब बन जाया जाए तो समाज की आधी गंदगी से मुक्ति मिल सकती है और वह एक अंदाज़ से स्नौब बन गई। अब उसे स्नौब बनने में मजा आता है।

कुछ लोग अब कहने लगे हैं कि वह फ्री-लांसिंग की मलिका बनती जा रही है।

"मलिकाए आज़म क्या सोच रही हैं ?" कभी चुप हो जाती है तो परिमल मज़ाक करता है।

"यही कि शहंशाहे आलम बहुत अच्छे हैं।" वह तपाक से जवाब देती है और दोनों हंस पड़ते हैं।

"कहां रहती हो ? फोन करता हूं तो मेम साहब का पता ही नहीं चलता !" परिमल पूछता है।

"मेम साहब बेरोज़गार हैं। उन्हें खुद पता नहीं रहता, किस दिन क्या करना होगा, कहां जाना होगा ?"

"मेम साहब अपना अता-पता तो कहीं छोड़ सकती हैं।"

"ताकि शिवजी के बराती पीछे-पीछे घूमते रहें ?"

"और अगर शिवजी को कभी मिलने की तलब हो जाए ?"

"शिवजी तो सर्वज्ञ हैं, मिल ही लेते हैं।"

"परसों भी मिलना चाहता था।"

"कोई खास बात ?"

"थोड़ा वक्त मिल गया था, सोचा, अपनी मेम साहब के साथ बिता दूं।"

"नुकसान मेरा ही हुआ।"

"मिलना मैं चाहता था, नुकसान तुम्हारा कैसे हुआ ?"

"साहब के साथ बिताने के दो पल कितनी मुद्दत के बाद मिलते हैं।"

"क्या करूं ? आजकल इतनी बुरी तरह फंस गया हूं कि पूछो मत। इतने रोड़े

लूंगी।"

"अभी एक छोड़कर दूसरी छोड़ने की तैयारी कर रही हो···तुम नौकरी करोगी?"

"क्यों नहीं?"

"फिर नौकरी छोड़ क्यों रही हो?"

"क्योंकि वह नौकरी तुम्हारी नहीं है।"

"मज़ाक छोड़ो।"

"तुम्हें मेरी बात मज़ाक लग रही है?"

"शाहाना मेरे दिल में रहती है।"

"दिल में रहने वालों को भी हवा-पानी की जरूरत पड़ती है।"

"मैं जो जगह उसे दे चुका हूं, वहां से नीचे नहीं उतार सकता, और तुम नहीं [illegible]तीं, मेरी शाहाना समर्थ है।"

"परिमल!"

"बोलो।"

"एक पल की मुक्ति कितनी ताकत देती है आदमी को?"

"कभी-कभी मुझे भी लगता है, सारे बंधनों से मुक्त हो जाऊं। भरे बाजार में [illegible] चाहूं तुम्हें थाम लूं, व्यवस्था की लीक उखाड़कर फेंक दूं, कितनी [illegible] बुनियाद, कितनी खाली हैं ये परंपराएं, शाहाना, अपने ही बनाए दायरे में [illegible]मी इतना अवश क्यों हो जाता है?"

"आदमी उन दायरों के बग़ैर रह भी तो नहीं सकता?"

"क्यों नहीं रह सकता? सब अपना-अपना काम करें, एक मुक्त जि[illegible]

"हमारे संबंधों की नियति क्या होगी शाहाना ?"

"मैंने कभी सोचा नहीं।"

एक बार पूरे पन्द्रह दिन परिमल नहीं मिला। शाहाना को कई बार खयाल तो आया लेकिन चिंता नहीं हुई। और उसके बाद जब दोनों मिले···

"शाहाना···"

"परिमल !"

"कई दिनों से तुम्हारी याद बहुत आ रही थी।"

"तुम बाहर गए थे न ?"

"बाहर गया था और व्यस्त भी था।"

"वापस कब आए ?"

"इस बार टेलिपैथी बिलकुल काम नहीं आई···" परिमल कहीं डूब रहा।

"कैसे हो ?"

"कुछ समझ नहीं पा रहा हूं। कभी-कभी तुम्हारी खामोशी इतनी मुखर हो जाती है कि लगता है, मुझसे कहीं ज्यादती हो रही है।"

"थोड़ा कम सोचा करो।"

"आखिर हमारा क्या बनेगा ?"

"कहा न, थोड़ा कम सोचा करो।"

"कैसे रह लेती हो अपने में चुप, न कोई शिकायत, न कोई चूक···शाहाना, तुम कितनी अच्छी हो !"

"····"

"सच, तुम्हारा एक-एक इंच कितना अपना लगता है ! ···उसे छूने का, आत्मसात करने का, उसमें खो जाने का बहुत बड़ा सुख है। और उतना ही सुख मेरा है···"

"तुम्हारे इस एहसास की साझीदार मैं भी हूं परिमल !"

"शाहाना, तुम मेरी हो।"

"मैंने इसे मान लिया है।"

"बहुत-सी बातें बिना कहे समझ ली जाती हैं।"

"मैंने समझ लिया है।"

"मैं तुमसे बहुत-सी बातें कहना चाहता हूं लेकिन जब मिलता हूं तब सब कुछ बेमानी लगने लगता है।'

"जानती हूं।"

"कुछ न कहने की भाषा बड़ी सशक्त होती है।"

"मैं भी यही सोचती हूं।"

"शाहाना, तुम बहुत अच्छी हो।"

"परिमल…"

"अपने चारों ओर फैले हुए विस्तार को देखता हूं। दुनियादारी के चक्रव्यूह को परखता हूं। सुबह से शाम तक काम के बोझ को महसूस करता हूं। अपनी-अपनी जगह सब ठीक हैं लेकिन जब अपना खयाल आता है तब सोचने लगता हूं, इन सबमें अपने लिए मैं कहां हूं? दिन-रात के चौबीस घंटों, एक घंटे के साठ मिनट और एक मिनट के साठ सेकेंड में कौन-सा टुकड़ा सिर्फ मेरा है?"

"इस तरह के सवालों का कोई जवाब नहीं होता परिमल!"

"एक कम्प्यूटर की जिन्दगी जीते-जीते थक गया हूं।"

"थकान के एहसास को इतनी अहमियत मत दो।"

"हमारे रास्ते कितने अलग हैं?"

"एक मोड़ पर हम मिल गए हैं।"

"उलझनों की गिरफ्त जब बढ़ जाती है, जानती हो, मैं क्या करता हूं?"

"क्या करते हो?"

"दिमाग के सभी दरवाजे खोलकर चुपचाप बैठ जाता हूं।"

"फिर…?"

"एक-एक कर उलझनें अंदर आती हैं।"

"हूं…"

"उन घड़ियों में कहीं शाहाना का जिक्र भी होता है ?"

"वे घड़ियां मैं उसे ही सौंपना चाहता हूं। सच कहूं तो सौंप चुका हूं। उन घड़ियों में सिर्फ शाहाना होती है मेरे पास। मैं उसे छू नहीं सकता लेकिन मेरे दिलोदिमाग का हर ज़र्रा उसकी मौजूदगी महसूस करता है। बात कुछ अजीब है···मैं एक गमी में गया था। बड़े अजीज थे वह मेरे। तमाम जिन्दगी मैंने उन्हें उतना ही जाना जितना उस घड़ी, उस एक पल, जब इस जिन्दगी के आपाधापी से वह मुक्त आराम की आखिरी नींद सोए। मुल्क के कोने-कोने से उनके चाहने वालों की संवेदनाएं उनके नश्वर शरीर के गिर्द चक्कर काटती रहीं लेकिन उनके पास किसीके लिए वक्त नहीं था। मैं कभी सोच भी नहीं सकता था कि उनसे जुड़े इतने सारे लोग उनकी कमी इतनी शिद्दत से महसूस करेंगे। शाहाना, मैं तो उनमें से सिर्फ एक था। वे चन्द दिन कैसे बीते, तुम समझ सकती हो, लेकिन वहां भी लमहा भर के लिए तुम मुझसे जुदा नहीं थीं, यह बात तुम्हारे लिए कोई मायने रखती है?"

"रखती है।"

"फिर शाहाना की मौजूदगी के एहसास पर तुम्हें शक क्यों हुआ ?"

"मैंने ऐसा कहा क्या ?"

"तुमने अभी एक सवाल पूछा था।"

"जानकर पूछा था। न पूछा होता तो तुम इतनी बात बताते ?"

"मैं न भी बताता तब भी क्या तुम समझ न लेतीं ?"

"कभी तुम्हारे मुंह से सुनना अच्छा लगता है।"

एक दिन परिमल भावुक होने लगा।

"शाहाना, मैं तुम्हारा नाम इतनी ऊंचाई पर देखना चाहता हूं जिसे आसानी से मैं भी न छू सकूं।"

"क्यों ?"

"क्योंकि उन ऊंचाइयों पर तुम्हारा हक है।"

"कैसे ?"

"इसीलिए हक बन जाता है ?"

"क्यों नहीं ? असली दावेदार वहीं हैं जिनके पास कुछ हो

"तुम समझते हो, मेरे पास कुछ है ?"

"मैं समझता नहीं, तुम्हारे पास है।"

"तुम यूंही भावुक हो रहे हो परिमल, मेरे पास ऐसा कुछ

"मेरे दोस्त मुझे गांठ का पूरा कहते हैं। मज़ाक करते हैं कि तिजोरियां भर रहा हूं। अगर उन्हींकी बात सच मानो तो तु का अंधा नहीं हूं मैं।"

"लेकिन ऐसी ऊंचाइयों पर पहुंचकर मैं करूंगी क्या, जह सकूं ?"

"जब तुम्हारा छूने का मन करे, नीचे उतर आना।"

"और जब तुम्हारा मन करे ?"

"मैं तुम्हारे नीचे उतरने का इंतजार करूंगा।"

"नहीं परिमल, मुझे ऐसी ऊंचाई नहीं चाहिए। मैं तो य कभी-कभी तुम्हें छू सकूं।"

"काश, हमारे रास्ते अलग न होते !"

"तब शायद हमारे मनों के बीच सदियों के फासले होते।'

"तुम खुश हो शाहाना ?"

"जरूरत भर…"

"इतना तुम्हारे लिए काफी है ?"

"काफी तो कभी कुछ नहीं होता। जितना रहे उतने में तर मैंने बहुत पहले सीख लिया था।"

"कभी अकेले, एकांत क्षणों में जब अपनी-अपनी परेशानि जकड़ते जाते हैं, तुम्हारा मन नहीं करता हम पास होते ?"

"करता है, और सच पूछो तो हम साथ होते भी हैं।"

ताजा कर देनेवाले सवाल क्या पूछ लिए, मैं उसका दीवाना बन गया।"

"अब क्या पछता रहे हो?"

"हां, पछता रहा हूं।"

"अब कुछ नहीं हो सकता।"

"पछता रहा हूं कि यह दीवाना मैं पहले क्यों नहीं बना?"

"परिमल..."

"बोलो।"

"कुछ नहीं..."

और एक दिन शाहाना भी भावुक हो गई।

"जिन्दगी को पास आने से जाने क्यों रोकती रही अब तक?"

"अगर न रोकती तो परिमल-शाहाना की मुलाक़ात कैसे होती?"

"तुम पास होते हो तो जाने कैसा-कैसा लगता रहता है।"

"सोचता हूं, काश, तुम्हें थोड़ा समय और दे पाता!"

"लेकिन मुझे जिन्दगी मे शिकायत कभी नहीं रही।"

"अब है?"

"नहीं, बल्कि फ़ख्र है। खुदा ने जितना मुझे दिया है, कितनों को मिलता है?"

"यह मेरा फर्ज है कि तुम्हें जिन्दगी से कोई शिकायत न रहे।"

"दरअसल, मैं तुमसे एक बात कहना चाहती थी।"

"कहो..."

"चार दिन ही क्यों ?"

"क्योंकि इतने से मेरा काम चल जाएगा।"

"अगर ये चार दिन आठ बन जाएं या कई-कई बार आएं ?"

"तो मैं सोचूंगी, जिन्दगी मेरे साथ पक्षपात कर रही है।"

"क्या करोगी उन चार दिनों का ?"

"चार दिन लगातार तुम्हारे साथ रहकर देखूंगी।"

"शाहाना…मेरी कोई बात तुम्हें बुरी लगी ?"

"नहीं तो।"

"तुम्हारे मन में यह उदास खयाल क्यों आया ?"

"तुम्हारे साथ रहने का खयाल उदास है ?"

"इसके पहले वाला।"

"जिन्दगी को एक दिन हाथ तो छुड़ाना है।"

"उससे पहले हमें खूब-खूब जीना है।"

एक दिन दोनों हलके-फुलके मूड में थे। बड़ी देर तक रिकॉर्ड सुनते साथ भावुक हो उठे।

"कितनी अजीब बात है !" परिमल ने कहा।

"क्या ?"

"नहीं मिलते तो हफ्तों नहीं मिलते। कभी-कभी महीना निकल जब मिलते है, तो लगता है, अलग थे ही नहीं या कि हमेशा ऐसे ही रहते

"एक अजीब जब दूसरे अजीब के सामने आता है तो कमाल होते न

"मतलब ?"

"तुम्हारे जैसा दुनियादार-समझदार कभी-कभी कितना भावुक हो

"मुझे तुम समझदार मानती हो ? दुनियादार मैं हो सकता हूं। बनना कई मायनों में अच्छा रहता है।"

"मानती हूं, लेकिन आदमी फिर आदमी है और उसे ...

अचानक एक शाम रोजी का फोन आया कि वह शाहाना से मिलना चाहत
है।

"तो इसमें पूछने की क्या बात है ?" शाहाना ने रोजी को झिड़क दिया।

"पूछा इसलिए कि पता नहीं तू खाली है या नहीं ? तेरा वो भी तो आता
कभी-कभी घर।" रोजी ने सफाई दी।

"मेरे उसको तेरे आने से कोई परेशानी नहीं होगी, वैसे तू आ जा, वह आ
नहीं आ रहा है।"

कई महीनों बाद रोजी आ रही थी। उसके फोन आने भी कम हो गए थे
शाहाना व्यस्त थी। किसीकी खोज-खबर लेना फुर्सत की बात होती है औ
शाहाना का कहना था कि जब कोई किसीसे न मिले तो उसका मतलब होता
सब ठीक-ठाक है।

रोजी ने आंधी की तरह कमरे में प्रवेश किया। उसका चेहरा तमतमाय
हुआ था।

"हिन्दुस्तानी मर्द काठ का उल्लू होता है।" उसने अपना पर्स मेज पर फेंक
हुए कहा।

शाहाना बड़ी गंभीरता से सिगरेट पी रही थी, रीजेंट किंग साइज का पैके
रोजी की ओर बढ़ाते हुए वह मुसकुराई :

"यह तुझे आज पता चला है ?"

"पता तो पहले भी था, आज से पक्का भरोसा हो गया।"

"कोई खास बात हो गई आज ?"

"भाड़ में जाए तेरी खास बात। तू उसकी याद दिलाकर मुंह का जायका
बिगड़या। उस कड़वे स्वाद को थूक-थूककर गला खुश्क कर चुकी हूं।"

"औरतों के बारे में तेरी क्या राय है ?"

"कुछ हरामजादियां होती है, कुछ बेवकूफ एक नंबर की।"

"कुछ-कुछ अक्ल आती जा रही है तुममें।"

"कॉफी नहीं पिलाएगी ?"

"आज की छुट्टी लेकर गई है।"

"लाट साहब है, जब देखो तब छुट्टी लेकर चली जाती है।"

"तुझे क्या पता ? इतने महीनों बाद तो तू आ रही है।"

"इसी बहाने ताने दिए जा रहे हैं ?"

"तू तो वाकई उखड़ी हुई है। रुक, पहले कॉफ़ी ला दूं फिर बात

"ला दूं का क्या मतलब, तू नहीं पिएगी ?"

"पिऊंगी बाबा, ला रही हूं।"

शाहाना किचन से दो प्याला कॉफ़ी बना लाई। रोज़ी का चेहरा
तमाया हुआ था, न सिगरेट पीने से राहत मिली थी, न लग रहा था क
ही मिलेगी।"

"मेरी तो मेहनत बरबाद ही गई।" अपनी कॉफ़ी का प्याला हाथ
कुर्सी पर बैठते हुए शाहाना अपने-आपसे बोली।

"कहा कुछ [illegible] ने चमककर शाहाना की ओर देखा।

"नहीं तो…"

"आवाज तो सुनाई पड़ी थी।"

"मैं अपने-आपसे कुछ कह रही थी।"

"मैं इतनी बुरी हो गई कि मेरे रहते लोग अपने-आपसे बात करने
रोज़ी खीखिया उठी।

"यार, आज तो तू काट खाने को दौड़ रही है ! बात क्या है ?"

"तू पूछे बगैर मानेगी नहीं ?"

"जब तक तू बताएगी नहीं, तुझे चैन नहीं पड़ेगा।"

"रहने दे, अपने बारे में कुछ ज्यादा ही खामख्याली है तुझे।"

"मैं तेरी दुश्मन तो नहीं ?"

"तुझे इस बात की फिक्र है कि मैं कहां हूं, मेरा क्या हो रहा है ?"

"क्यों नहीं, तू अच्छी-भली है और किसी पी० के० से तेरा इश्क चल रहा है आजकल।"

"उसी हरामी ने बताया होगा ?"

"वह मुझे क्या जाने !"

"कौन…मैं पी० के० नहीं, सैम की बात कर रही हूं।"

"सैम मेरा दोस्त नहीं है।"

"फिर तुझे कैसे पता चला ?"

"जानकारी हासिल करने के अपने-अपने तरीके होते हैं।"

"तो…"

"कुछ नहीं, मैं तुझे कुछ कह रही हूं क्या ?"

"अपना समझती तब तो कहती।"

शाहाना ने गौर से देखा। रोज़ी के चेहरे का तनाव रत्तीभर भी कम नहीं हुआ था। वह अपनी जगह से उठकर रोज़ी के पास गई। उसके कंधे पर हाथ रखकर उसने रोज़ी की आंखों में झांका।

"तू बहुत नाराज़ है ?"

रोज़ी की खाली आंखें शाहाना को देखती रहीं, वह बोली कुछ नहीं।

"तेरे मन में इस समय कौन-सी बात परेशानी पैदा कर रही है, यह तो मैं नहीं जानती, लेकिन रोज़ी, जो भी बात है, उसे मन से निकाल दे, तुझे राहत मिलेगी।" शाहाना ने कहा।

"आजकल तू 'आफ़्टरनून' में भी पता नहीं कब आती है, इतने दिन हो गए, मुलाकात भी नहीं हुई।" रोज़ी ने एक सर्वथा नई बात सामने रखी। उसकी आवाज़ से लग रहा था कि अपनी भावनाओं पर उसने काबू पा लिया है।

"दो सप्ताह से तो मैं गई भी नहीं। कॉलम डाक से भेज दिया था।"

"घर पर भी तो नहीं थी, मैंने फोन किया था।"

"हो सकता है, जिस दिन तूने फोन किया हो, हम कहीं चले गए हों ! वैसे अमूमन मैं घर पर ही रही हूं।"

"हमें क्या पता, हमने तो जब फोन किया तो घंटी बजती रही या आपकी

नौकरानी ने कहा, मेम साहब नहीं हैं।"

"मेरी नौकरानी मुझे मेम साहब कहकर नहीं बुलाती।" शाहाना मुसकुराई। वह अपनी कुर्सी पर आकर बैठ गई थी।

"जो भी बुलाती है, इससे फर्क पड़ता है क्या ?"

मामला फिर बिगड़ता नजर आया। पता नहीं रोजी किस वजह से अपसेट थी। असली बात बता नहीं रही थी, जरा-जरा-सी बात पर उसे गुस्सा चढ़ रहा था।

"हिन्दुस्तानी पुरुषों को तूने काठ का उल्लू क्यों कहा था आते ही ?"

"क्योंकि वह काठ का उल्लू होता है। कुदरत ने उसे यही बनाया है।"

"तेरा मतलब मर्द के नाम पर कुदरत काठ के उल्लू पैदा करती आ रही है ?"

"करती नहीं आ रही है, अब करने लगी है।"

"कोई वजह ?"

"मुझे क्या पता ? कुदरत से पूछ जाकर। जहां तक मुझे लगता है, आदमियों की नस्ल बिगड़ गई है।"

"क्रासब्रीड करवा दे।"

"कुदरत के शिकायतनामे में लिखवा दिया है। अगली पंचवर्षीय योजना तक हो सकता है, उसपर विचार का नंबर आ जाए।"

"अगली पंचवर्षीय योजना पर विचार होगा, फिर कुदरत पता नहीं अमल में लाने का फैसला ले न ले।"

"फैसला उसे लेना पड़ेगा, तू फिक्र मत कर।"

"तुझसे बात हो गई, लगता है।"

"क्या करूं, मेरे सिर पर आंखें पीछे लगी हैं। बहरहाल, इस समय तेरे दिमाग में एक तूफान उठ खड़ा हुआ होगा कि मैं इस तरह की बहकी-बहकी बातें क्यों कर रही हूं…है न ?"

"मैं जानना चाहती हूं।"

"कल पी० के० से दोस्ती खत्म कर दी।"

"वजह ?"

"बस, कर दी।"

"कोई वजह तो होगी ?"

"क्योंकि वह भी काठ का उल्लू साबित हुआ।"

"तूने क्या उसे काबुल का घोड़ा समझा था ?"

"काबुल का घोड़ा न सही, मैदानी गधा तो साबित होता ?"

"हुआ क्या ?"

"रात फिर हॉस्टल के दरवाजे पर धरना देकर बैठ गया कि चलो मेरे साथ। अब तुम बताओ, रात को ग्यारह बजे मैं उसके साथ कहां जाऊं ? मैंने उसे कई बार समझाया था कि हॉस्टल की एक मर्यादा होती है, रात नौ बजे के बाद वहां न आया करे। शुरू-शुरू में मान भी गया था। फिर कभी दस, कभी ग्यारह आने लगा। एक-दो बार तो मैंने भी बहाना मारा, मेट्रन को उलटा-सीधा समझाया लेकिन आप कब तक किसीका उल्लू सीधा कर सकती हैं। मैंने उसे साफ मना कर दिया था कि नौ बजे रात के बाद हर्गिज-हर्गिज नहीं आना। लेकिन नहीं, साहब फिर धमक आए। मुझे भी गुस्सा चढ़ गया।"

"इश्क पाबंदियों के साथ नहीं होता दोस्त !"

"इश्क का मतलब यह भी नहीं कि माशूक जो मना करे, वही करते जाओ।"

"सच पूछो तो इश्क का असली मतलब यही है।"

"वह इश्क नहीं, बलात्कार है कूड़मगज। जब दो आदमी मिलकर जमाने के मना किए हुए रास्तों पर चलते हैं तब इश्क होता है, जब आपसी तकरार बढ़ने लगे और इश्क करनेवाले दोनों बंदों में से एक-दूसरे के साथ मनमानी करें तब इश्क बलात्कार हो जाता है।"

"फिर तूने क्या किया ?"

"फाटक से उलटे पैरों वापस कर दिया।"

"तू बड़ी संगदिल है।"

"तंगदिलों के साथ संगदिल होना पड़ता है।"

"चला गया ?"

"नहीं, बड़ी देर तक खड़ा घूरता रहा, थोड़ी दूर यूंही सड़क पर टहलते रहने के लिए बुलाता रहा लेकिन मैंने फाटक से बाहर कदम नहीं रखा।"

"चली जाती थोड़ी देर के लिए।"

"और बन जाती उसकी हवस का शिकार।"

"सड़क पर वह क्या कर लेता ?"

"तू समझती है, वह सड़क पर मेरे साथ टहलता ? पांच मिनट के लिए कहकर गाड़ी में बिठाता और पूरा घंटा लगाकर वापस छोड़ता…"

"तो क्या हुआ, तुझे प्यार करता होगा ?"

"रहने दे।"

"इतनी मुश्किल से एक दोस्त मिला था तुझे। उससे मिलकर कुछ तो सुकून मिला होगा तुझे ?"

"तुझे क्या पता ?"

"पता तो नहीं, फिर भी।"

"मेरे लिए खुशियां हमेशा बहुत महंगी पड़ी हैं शानी, अब मुझे भी जान लेना चाहिए कि अंधेरों से ही पटरी बैठ सकती है अपनी।"

"ऐसी क्या बात है ?"

"मुझे अपना भविष्य नजर आ रहा है…"

"अभी तू गुस्से में है, दो-चार दिन में सब ठीक हो जाएगा।"

"क्या ठीक हो जाएगा ?"

"उसे फोन करना। फिर से समझा देना। तुम दोनों किसी दिन मेरे यहां आ जाओ; मैं समझा दूंगी।"

"और वह समझ लेगा ?"

"क्यों नहीं समझेगा ! अगर तेरे साथ उसे दोस्ती निभानी होगी तो [illegible]

ब तो वही सचाई लगने लगा है।"

ा' अगर गाड़ी देगी तो शाम को वह मुझे पिक करने आएगा सी लेकर फलां जगह पहुंच जाओ। अब टैक्सी लेकर पहुंच गई लां जगह, तब शुरू होगा बातों का सिलसिला...खैर, बातें ; खुश भी रखता है लेकिन उसके बाद हॉस्टल वापस भी तो नहीं चाहती कि एक निश्चित समय के बाद टैक्सी से मैं हॉस्टल वह मुझे छोड़ने जाए। कहता है, क्या हुआ ? मैं पूछती हूं, क्यों समझौते मैं ही करूं ? उसका घर, उसकी बीवी, उसके बच्चे, ुद, उसका मूड, तब जाकर आएगा रोज़ी कृपाशंकर का नंबर।"

। तुझे पहले भी पता रही होगी ?"

ानती थी कि वह अपनी 'अम्मा' के अंगूठे के इतने नीचे रहता है। हीं देती।"

शक पड़ गया हो ?"

ंने तो शुरू में ही कह दिया था कि हफ्ते में एक शाम बिताएंगे जाएं या एकसाथ बैठकर बियर-कॉफ़ी पिएं और यह कि उस गाड़ी होनी चाहिए।"

वी कहीं काम करती है ?"

र है साली। गाड़ी में बैठकर सोशल वर्क करती है। जाती होगी र से मिलने।"

, कुछ हफ्ते मामला ठीक चला, फिर दो बार किसी दोस्त की गाड़ी ार उसका दोस्त भी शामिल हो गया। मैंने माइंड नहीं किया। वास नहीं करना था। इसके बाद शुरू हुआ टैक्सियों का सिलसिला। ने सोचा, कोई बात हो गई होगी फिर तो एक नियम-सा बन गया। लाते चले आएं। एक दिन मुझे बड़ा गुस्सा चढ़ा। मैंने छेड़ने की मे प्रेमी हो कि प्रेमिका से मिलने के लिए हफ्ते में एक दिन बीवी से सकते ?' वह मुसकुराया, 'बीवियां बड़ी जालिम होती हैं,' उसने

"बात तो उसने ठीक कही।" शाहाना बोली।

"उसकी बीवी तो दोमुंही खंदक है, एक ओर से भरो तो दूसरी ओर से खाली होती रहती है।"

"कैसी बातें कर रही है रोज़, तू भी किसीकी बीवी रह चुकी है।"

"मेरे अंदर की बीवी नहीं बैठी तेरे सामने।"

"जानती हूं, चोट खाई औरत बैठी है।"

"सच बता शानी, मर्द इतने दोगले क्यों होते हैं?"

"फिर वही बेहूदगी की बातें···" शाहाना ने प्यार से झिड़कना चाहा।

"बीवियों के अंगूठे के नीचे रखने के लिए ये प्रेमिकाएं जुटाते हैं।"

"रिकार्ड सुनेगी?"

"या बीवियों के सामने अपना सिक्का जमाने के लिए कि देख, अभी भी औरतें मरती हैं हमपर।"

"प्यार का संबंध शायद वे मौज-मजे से मानते हैं। मौज मारना बुरी बात नहीं, लेकिन उसमें भी एक सम्मान होना चाहिए।"

"प्यार का संबंध किसी और बात से भी होता है?"

"पता नहीं, लेकिन खाली मौज-मजे के लिए प्यार नहीं होता।"

"प्यार किसलिए होता है?"

"मैं इस विषय पर कुछ कह नहीं पाऊंगी रोज़!"

"तू 'उसे' प्यार करती है?"

है मुझे।"

"गालियों में मुंह खुलता जा रहा है तेरा।"

"क्या करूं, कलेजा जलता है तो जबान ऐंठने लगती है, सॉरी शानी !"

"तुझे नहीं लगता कि कम्पनी वाली नौकरी कर ली होती तो बेहतर था ?"

"कौन जाने ? वहां भी तो एक 'रट' हो सकता था।"

"वह 'रट' इतना बड़ा न होता।"

" 'रट' तो 'रट', क्या बड़ा क्या छोटा। अच्छी-भली घर में पड़ी सिलाई-कढ़ाई का कोई केंद्र चलाती, कुकरी सिखाती, कुछ नहीं तो योगाभ्यास कराती, खानेभर को कमा लेती, इन कुत्तों की जमात में शामिल तो न होना पड़ता।"

"एक बात कहूं रोजी ?"

"अब तुझे क्या कहना है ?"

"तेरे दिमाग में बड़ा तनाव रहने लगा है, डिप्रेशन भी हो जाता है तुझे, चल किसी साइकियाट्रिस्ट के पास चलते हैं।"

"तुझे लगता है, मैं पागल हो रही हूं ?"

"पागल ही नहीं जाते साइकियाट्रिस्ट के पास।"

"तो तू क्यों नहीं चली जाती ?"

"जिस दिन जरूरत महसूस हुई, जरूर जाऊंगी।"

"चाहे पागल हो या न हो ?"

"रोजी, तू मेरी बात समझने की कोशिश कर···"

"क्या समझूं ? दो महीने हो गए हैं, एक बूंद नींद नहीं आई है, रात को एक तो सोती नहीं, किसी तरह आंख झपी भी तो घंटे-आध घंटे में उठकर बैठ जाती हूं··· है तेरे पास कोई रास्ता, मुझे सुलाने का ?"

"हां है, लेकिन एक शर्त है।"

"क्या ?"

"तू बोलेगी एक शब्द नहीं और मैं जो कहूंगी, वही करेगी।"

"अगर तू नींद की गारंटी दे रही है तो मैं तैयार हूं।"

"मैं दे रही हूं।"

"बोल, क्या करना होगा ?"

"गीजर ऑन कर देती हूं। अभी दस मिनट बाद तू नहाने जाएगी। जितना

गरम पानी तू सह सके, उससे हेडवाथ ले आ। तब तक मैं तेरे लिए
तैयार कर देती हूं। नहाने के आधा घंटे बाद तुझे खाना मिलेगा, उर
काम्पोज एक फेनार्गन एक गिलास गर्म दूध के साथ। तू अच्छे व
दवा खाकर दूध पिएगी, फिर मैं तुझे सुला दूंगी।"

"खाने को क्या देगी?"

"बोल, क्या खाएगी?"

"एक पेयर बटर टोस्ट, दो अंडों का आमलेट, उसमें हरी मिर्च-
डालना। और हां, कुछ स्वीट भी..."

शाहाना ने अपना बिस्तर रोज़ी के लिए तैयार कर दिया, अपना त
बैठक में उठा लाई। बेडरूम में परदे गिराकर ज़ीरो पावर का नाइट
दिया। रिकॉर्डर पर बिस्मिल्ला खां की शहनाई बेहद धीमी आवाज
और रोज़ी के लिए आमलेट-टोस्ट बनाने किचन में चली गई।

१०

नवम्बर की सुबह। सर्दी गुलाबी थी। रोज़ जल्दी उठनेवाली य
दिन देर तक सोती रही। आदत के मुताबिक नींद तो खुल गई थी लेकि
में लिपटी वह फिर ऊंघ गई। कमरे में लगी घंटी जब दो बार ब
उठना पड़ा। रात के कपड़ों को शाल से ढककर दरवाज़े तक पहुंच
दरवाजा खोल चुकी थी।

"तार है मैडम!" तारवाला सामने खड़ा था।

पर फिसल रही थीं।

"चाय लाऊं दीदी?" उसके पीछे आकर सोमा खड़ी हो गई।

"हां...अखबार भी..." हाथ का तार सिरहाने रखती हुई शाहाना फिर रजाई में घुस गई। मेज पर रखी घड़ी पर नजर पड़ी, साढ़े नौ बज रहे थे।

"आज तुझे देर क्यों हुई?" सोमा जब चाय लेकर आई तब शाहाना ने पूछा।

"बस छूट गई दीदी, दूसरी लेकर आई हूं।" हमेशा की तरह सोमा का जवाब तैयार था।

"बस क्यों छूटी?"

"चाबी भूल गई थी, बस स्टाप पर आई तब खयाल आया।"

"तुझसे पहले भी कहा है, चाबी आंचल में बांध लिया कर।"

"बांधी तो थी. सुबह साड़ी बदली तो ध्यान नही रहा।"

शाहाना ने गौर किया, सोमा ने धुली हुई साड़ी पहन रखी थी। अच्छी लग रही थी। 'क्या देनगा' का मसौदा पूछती हुई सोमा दीवार से टिककर मोढ़े पर बैठ गई और शाहाना चाय की चुस्की लेते हुए सामने बैठी इस सांवरी-सलोनी की उखड़ी हुई जिन्दगी के बारे में सोचने लगी।

इमरजेंसी के दौरान सोमा की झुग्गी गोविन्दपुरी से हटाकर खिचड़ीपुर में फेंक दी गई थी। वहां से बस का सफर तय करके वह काम पर आती है। देर हो जाए तो शाहाना को असुविधा हो लेकिन वह कुछ कहती नही, कभी-कभी थोड़ा-बहुत काम खुद भी कर लेती है। सोमा का पति कुछ करता-धरता नही, नालायक है। एक बेटा है पांच बरस का। शाहाना उसके लिए बाजार से कुछ-न-कुछ लाकर देती रहती है। कभी-कभी मां के साथ वह भी आता है तब शाहाना उसे लेकर बाजार जरूर जाती है।

घर की एक चाबी सोमा के पास रहती है। रात को दरवाजा लॉक करने के बाद शाहाना चाबी निकाल लेती है ताकि सुबह सोमा दरवाजा बाहर से खोल ले। सुबह जब सोमा आती है, शाहाना अखबार देख रही होती है। कभी शाहाना सोई रही तो सोमा उसे जगाए बगैर घर के काम मे लग जाती है।

सोमा को काम पर बहाल करने के पीछे कोई आरामतलबी नही थी। घर का काम अपने हाथ से करना शाहाना को बुरा नही लगता लेकिन लिखने-पढ़ने का समय

बहुत-सा निकल जाता था इसलिए महीनों की खोज-ढूंढ़ के बाद सोमा शाहाना ने उसे फौरन रख लिया। सौ रुपये और खाना-कपड़े के बाद उ भी रखना पड़ता है।

"कैसा तार है दीदी ?" सोमा पूछ रही थी।

"कुछ नहीं, कहीं पहुंचना है।"

"सब ठीक-ठाक तो है ?"

"हां, हां, क्यों ?"

"मैं तो डर ही गई।"

"डर क्यों गई ?"

"तार से डर लगता है।"

शाहाना चुप हो गई। मन भटक गया।

सुलेमान मौसी भी तार से डर जाती थीं। मामा की मौत की खबर एक तार लेकर आया था। शाहाना को मिसिस चैटर्जी की देखरेख में मौसी इलाहाबाद चली गई थीं। ऐसा ही एक तार शाहाना ने मौसी के ग गौरी मौसी को भेजा था। शाहाना की जिन्दगी में यह तीसरा व्यक्तिगत जिसका सिर-पैर जोड़ने की कोशिश वह कर रही थी।

'न्यू इण्डिया' के संपादक सागर हैं, वह जानती थी। तार में उन नहीं था लेकिन यह तार उन्हींके आदेश पर भेजा गया होगा, यह पक्का था भी बात कम आश्चर्य की नहीं थी।

होश संभालने के बाद से लेकर अब तक वह सागर से कुल पांच या छ मिल चुकी है।

आज से तकरीबन बीस बरस पहले शाहाना ने सागर को गौरी मौ यहां पहली बार देखा था। हॉस्टल की वार्डेन मिस दीक्षित से बार-बार होने पर मिसिस चैटर्जी के कहने के बाद सुलेमान मौसी ने दो कमरों का मकान ले लिया था, वहीं बीनस के सामने, गौरी मौसी के घर की बगल में।

कहतीं :

"शाहाना का ब्याह सुदीप से कर दो।"

सुदीप उनका चित्रकार बेटा था और उम्र में शाहाना से पंद्रह बरस बड़ा था।

सुलेमान मौसी चिढ़ जातीं।

"तुम्हारा दिमाग खराब है।" वह कहतीं।

"क्यों ? सुदीप में कोई कमी है ?"

"कितना बड़ा है, शाहाना तो एकदम बच्ची है उसके सामने।"

"बड़ी हो जाएगी. पति बड़ा हो तो पत्नी को सुख देता है।"

"सुख देता है," मौसी मुंह चिढ़ाती, "भूखों मर जाएगी मेरी बेटी।"

"ऐसी बद्दुआ क्यों दे रही हो मेरे सुदीप को ?"

"शाहाना को गोद ले लो, अगर वह तुम्हें इतनी अच्छी लगती है तो।"

"और तुम ?"

"मैं सुदीप को गोद नहीं लूंगी।"

दोनों मौसियां हंस पड़तीं।

सुदीप कहीं आसपास होता तो कनखियों से शाहाना को देखता। शाहाना नखरीली नजर बनाकर उसे अंगूठा दिखा देती।

फिर कई बरस बीत गए। बी० ए० आनर्स के बाद आगे न पढ़ने का फैसला शाहाना ने ले लिया। सुलेमान मौसी जन्नतनशीं हो गईं। मौसी और मामा दोनों का शहर छोड़कर शाहाना दिल्ली आ गई। रेडियो, दो-तीन छोटी-मोटी नौकरियां, अनुवाद, विज्ञापन कम्पनियों की कापी राइटिंग और अब फ्री-लांसिंग···

रोज के कार्यक्रमों का कॉलम देखते-देखते एक दिन नजर के सामने सागर का नाम आ गया। 'कृतिकार और उसका संसार' की गोष्ठी। शाहाना ने उत्सुकता की ऊष्मा महसूस की।

फिर निश्चित दिन, निश्चित समय।

प्रबुद्ध लेखकों, कवियों और चित्रकारों से सम्पन्न दिल्ली के एक विशिष्ट भवन का छोटा-सा कक्ष।

अध्यक्ष एक बहुत बड़े अदीब। विषय प्रवर्तक सागर। मैक्सिको का राजदूत विश्वविख्यात कवि आक्टेविया पाज का उद्घाटन भाषण। मौसम से होड़ लेता कक्ष का परिवेश। शाहाना एक कोने में सिमटकर जा बैठी।

'कृतिकार और उसका संसार,' क्या, क्यों और कैसे की जटिलता। एक संसार, जिसमें वह जीता है। एक संसार, जिसमें वह बनता-मिटता रहता है। दोनों में से कभी-कभी एक-दूसरे के प्रति अनुरक्त या परस्पर दोनों में संतुलन स्थापित करने की दिशा में संघर्षरत। आखिर वह क्या सोचता है? क्या अनुभव करता है, उसकी समस्याएं क्या होती हैं, उनका निदान वह कैसे ढूढ़ता है या सब कुछ बालाएताक रखकर एक शांति खड़ी करने की कोशिश में उसका व्यक्तित्व जुड़ता-टूटता रहता

विषय का प्रवर्तन हुआ :

'कृतिकार बाहरी संसार के तथ्यों से रागात्मक संबंध जोड़कर उन्हें अपना सत्य बना लेता है। यही सत्य उसका संसार है। कृतिकार के संसार की विशेषता संबंधों की विशेषता है, ऐसे संबंध जिनसे संसार के साथ उसकी प्रतिबद्धता होती है। रागात्मक संबंध अनुभव के आधार पर जोड़े जाते हैं। अनुभव जितना अधिक होगा, कृतिकार का विकास भी उतना ही होगा। कृतिकार एक संसार बनाता है, फिर उससे बाहर निकलता है। फिर-फिर अपना संसार रचता है···परंपरा और आधुनिकता का संदर्भ-परंपराओं से अनुभव का विकास होता है, आधुनिकता से उसकी प्रतिबद्धता बढ़ती है। परंपराओं से कट जाना उसके लिए दोष है और आधुनिकता से विमुख होने पर उसका संसार छोटा हो जाएगा।'

एक चित्रकार उत्तेजित होकर कहने लगे :

'जितने कृतिकार उतने संसार। परंपरा का उसके लिए कोई अर्थ नहीं क्योंकि वह राष्ट्रीय सीमाओं से परे होता है। हर चीज के प्रति जागरूकता उसकी पहली शर्त है, लेकिन परंपरा और आधुनिकता, दोनों के प्रति जागरूकता संभव नहीं, इसकी जरूरत भी नहीं।'

एक कला-समीक्षक ने कहा :

एक और मत सुनाई पड़ा :

'कृतिकार के संसार की चर्चा करते हुए किसी नतीजे पर पहुंचना गल
जीवन की प्रक्रिया में आगे बढ़ते जाना पर्याप्त है। हर अनुभव परंपरा, अ
जीवन और संसार से जुड़ा हुआ है। कृतिकार का अनुभव हर अलगाव की प्र
हर देशकाल में किसी बड़े संदर्भ से जुड़ता है। संदर्भ से कटकर कृतिकार क
संसार नहीं।'

एक जनवादी स्वर सुनाई पड़ा :

'हर कृतिकार जब अपने संसार की बात करता है तब अपने साथ द
करता है। बाह्य तथ्यों के कारण उसे वेदना का अनुभव होता है इसलिए ज
किसी कृति का सृजन करता है तब अपने को उघाड़कर रखने की कोशिश
है। निडर होकर जो अपने को उघाड़ सकता है, वही असली कृतिकार है। ह
कितने ऐसा कर पाते हैं ?...और इसीलिए कृतिकार के संसार की बात ब
है, भ्रम है।'

वातावरण में थोड़ी गुनगुनाहट आई। कुछ हथेलियां आपस में रगड़
लगीं, कुछ होंठों पर कसी-खिंची मुसकानें दिखाई पड़ीं। न जाने कब शाहा
नजर भटक गई थी। उसने देखा, कागजी घोड़े की जगह एक किश्तीनुमा चि
पड़ी थी।

एक कवि बोल रहे थे :

'कलाकार सामान्य नहीं, विशिष्ट होता है। विशिष्ट का अर्थ, अपनी स
स्वीकार करना। यही उसकी कला है। किसी कृतिकार के लिए प्रतिबद्ध
अब कोई अर्थ नहीं। अपनी दुनिया को झुठलाने का अर्थ है आत्महत्या। आ
होना कलाकार की नियति है। जो साहित्य, जो कला आधुनिक नहीं, वह स
नहीं, कला नहीं। परंपरा कलाकार के लिए अर्थहीन है। कलाकार स्व
परंपरा है। रचना का क्षण यातना का क्षण होता है। कलाकार रचना से
भागता है। अपनी ही आवाज से वह घबराता है और उसीसे प्यार भी

का प्रश्न उसकी स्वतंत्रता के ही कारण पैदा होता है⋯साहित्य, दोतरफा जिम्मेदारी का मोर्चा है⋯अगर जीने के लिए नहीं तो अपने मोर्चे पर मरने के लिए स्वतंत्रता जरूरी है।'

माहौल में सरगर्मी आ गई थी। सिगरेटी धुओं के मोर्चे, आजादी की तलाश-भरी हुंकार, किश्तीनुमा चिड़िया के सामने कागजी घोड़ा धराशायी हो गया था।

एक उभरते चित्रकार कह रहे थे :

'मैं नहीं जानता, हमारे-आपके बीच लेन-देन क्या है ? ईश्वर, धर्म, समाज, मैं क्या हूं, क्या करता हूं, क्यों करता हूं, आप कौन हैं, मैं कब कहता हूं आप मेरी कृतियों को देखें, तारीफ करें, क्या कहूं, कैसे कहूं, मैं कुछ नहीं जानता। मैं एक बहुत बड़े जंगल में घिर गया हूं जहां पेड़ हैं, लताएं हैं, सुंदर पक्षी हैं, फूल हैं, मैं कुछ नहीं जानता क्या कह रहा हूं, क्या कहना चाहता हूं, मेरे चारों तरफ जानवर हैं, बड़े-बड़े शेर⋯माफ कीजिए, मैं कुछ नहीं जानता⋯मैं शेरों मे घिरा एक छोटे-से बच्चे के समान या बच्चों से घिरा हुआ शेर हूं जैसाकि सागरजी ने कहा था एक बार। मुझे क्या करना चाहिए, मैं नहीं जानता।'

कागजी घोड़ा उठकर खड़ा हो गया, किश्तीनुमा चिड़िया गायब थी।

गोष्ठी का समापन अध्यक्षीय भाषण से हुआ :

'साधारण व्यक्ति और कृतिकार में भावना का अंतर नहीं बल्कि उसके ग्रहण करने के स्तर का अंतर है। निर्वासन का भाव कृतिकार की ही विरासत नहीं, आम जीवन में भी ऐसे मौके आते हैं। कलाकार के संसार में उसका नीरापन कुछ

"मैं बाली हूं।"

"देखा है आपको पहले भी, मेरा नाम शाहाना है।"

"मुलाक़ात होगी ?"

"क्यों नहीं ?"

"कैसी है आप ?" कोई बेहद पास आकर रुका।

शाहाना को विश्वास नहीं हुआ। एकदम से वह अचकचा गई।

"आजकल 'न्यू इंडिया' का संपादन कर रहा हूं, कभी आइए।" कहकर सागर ने हाथ जोड़े, भुवनमोहिनी मुसकान उनके होंठों पर थी।

"जी···जरूर···" और शाहाना को असलियत का एहसास हो, इससे पहले सागर आगे निकल गए। उसके ऊपर उडती नजर डालती उनके पीछे की भीड़ भी बढ़ गई थी।

शाहाना के पास अधिक इंतजार का धैर्य नहीं था। जल्दी ही समय निश्चित कर वह एक दिन 'न्यू इंडिया' के कार्यालय में पहुंची।

"आप हमारे लिए क्या लिखेंगी ?" मिलते ही सागर ने एक सवाल सामने रखा।

"आप जो दे देंगे।" शाहाना ने उसी तत्परता से जवाब दिया।

कुछ इंटरव्यू दिए सागर ने उसे। किसी स्थायी कॉलम की बात सोचने का आश्वासन दिया। उसका बड़ा मन हुआ कि पूछे, आखिर इतने वर्षों बाद उन्होंने पहचाना कैसे ? लेकिन सागर से इस तरह के सवाल पूछे ही नहीं जा सकते। न चाहते हुए भी अपनी उत्सुकता पर विजय पानी पड़ी।

कुछ वक्त बीत गया। 'न्यू इंडिया' का काम नियमित नहीं चल पाया। सुना, सागर विदेश चले गए हैं। शाहाना ने भी जाना बंद कर दिया। एक दिन 'आफ़्टर-नून' से निकलकर यूं ही इनर सर्किल का चक्कर लगा रही थी कि सागर दिखाई पड़े। फासला ज्यादा न होता तो लपककर उनसे बात करती···फिर कई दिनों बाद उसने 'न्यू इंडिया' के आफिस फोन किया, पता चला, सागर कहीं चले गए हैं।

मुलाकात की बात किसी और दिन पर टालकर शाहाना अपने काम में लगी रही। अनुवाद का काम मिल गया था जिसे पूरा करने में तीन महीने लग गए।

किसी पुस्तक का विमोचन समारोह था। चेम्सफोर्ड क्लब में फिर उनकी मुलाकात सागर से हुई। कॉफ़ी के प्याले हाथ में लिए जब सब एक-दूसरे से मिल

रहे थे तब शाहाना ने आगे बढ़कर सागर को आदाब किया।

"कैसी हैं आप ?" उन्होंने पूछा।

"ठीक हूं।"

"क्या कर रही हैं ?"

"फ्री-लांसिंग।···आपसे मिलना चाहती थी।"

"आइए किसी दिन।"

"जी।"

साहित्यिक लोगों का एक रेला आगे बढ़ आया। शाहाना पीछे छूट गई।

शाहाना के लिए सागर की याददाश्त आश्चर्य का विषय था। वह कई बार सोच चुकी थी कि गौरी मौसी के यहां किसी एक छोटी-सी लड़की को अगर वयस्क होने के बाद भी सागर पहचानते हैं तो निश्चित रूप से उनकी याददाश्त कमाल की है।

इस बात का जिक्र उसने शैल से कई बार किया था।

शैल भी फ्री-लांसिंग की चंद उपलब्धियों में से एक था। पहली ही मुलाकात में शाहाना को अपनी दीदी बना लिया था उसने। सामाजिक रिश्तों की ललक हमेशा अपने अंदर छिपाए शाहाना ने मन-ही-मन कृतार्थ होकर उसे अपना भाई मान लिया। राखी और भैया-दूज पर वह बाकायदा शैल के घर भी जाने लगी थी।

अभिवादन के बाद एकदम से उसने कहा :

"नौकरी तो आपके पास मैं करना चाहती थी, आपने इसको क्यों रख लिया?"

उसने शैल की ओर इशारा किया।

शैल हंस पड़ा।

सागर खामोशी से मुसकुराए।

"किसी दिन दफ्तर में आइए।" वह बोले।

बाद में शैल ने भी कहा, "अभी जगहें खाली हैं, किसी दिन आकर मिल ले सागरजी से।"

शाहाना जानती थी, सागर के हाथ में बहुत कुछ है। उसे यह भी मालूम था कि सागर जहां भी काम करते हैं, अपनी शर्तों पर काम करते हैं, अपने लोगों के साथ करते हैं। अदब और पत्रकारिता के क्षेत्र में हर कुर्सी उनकी मोहताज लेकिन वह किसी कुर्सी के मोहताज नहीं हैं। आज किसीसे बंधे तो कल यायावर की तरह उसे छोड़कर भी जा सकते थे। ऐसे आदमी के साथ काम करने की ललक उनके मन में बहुत पुरानी थी। लेकिन मन की ललक कब पूरी होती है? शाहाना ने इसे कई बार महसूस तो किया, इसके लिए कोई प्रयत्न नहीं किया। किसी बात की आशा निराशा को जन्म देती है और शाहाना हर तरह की निराशाओं से घबराती थी इसलिए उसने आशा रखना ही छोड़ दिया था। बहुत पहले निराशा की गिरफ्त में आकर उसने कई बार सोचा था कि आखिर इस दुनिया में उसके आने की ऐसी कौन-सी बड़ी जरूरत थी। किसी माता-पिता के भावुकतम क्षणों में उसका बीजारोपण हुआ होगा। किसी मां की अवांछित कोख से वह पैदा हुई होगी। सुलेमान मौसी जो कर सकती थीं, कर गईं। अफवाहों के अनुसार यदि वही उसकी मां थीं तो कम-से-काम मां कहने का हक उन्होंने अपनी ही जाई को नहीं दिया। मामा को बाप और मौसी को मां समझकर उसने अपना बचपन बिता दिया।

अपना सौभाग्य समझेगी।

सागर के व्यक्तित्व का आकर्षण उसने बचपन से ढोया था। अगर उसे अपने बाप का पता होता, वह जिन्दा होता तो शाहाना बाप को प्यार करने वाली लड़की बनी होती। सागर के प्रति जो आकर्षण उसके मन में था, वह दूसरी तरह का था। उसे कोई संज्ञा देना संभव नहीं था। शाहाना उस आकर्षण को समझ नहीं पाई कभी शायद इसलिए मिलने-जुलने की ज्यादा कोशिश उसने नहीं की।

'कुछ संबंध ऐसे होते हैं जिन्हें भौतिक धरातल पर नहीं उतारा जाता।' परिमल कहता है। सागर के प्रति अपनी भावनाओं की गवाह बनकर शाहाना यह बात अच्छी तरह समझ गई थी।

परिमल उसके जीवन में एक नये धरातल पर आया है। पहली मुलाक़ात से लेकर आज तक का हिसाब जब वह लगाती है तब रत्ती भर भी कमी नजर नहीं आती उसे, लेकिन सागर जिस धरातल पर है वह धरातल भिन्न है। सागर को लेकर वह परिमल से बात कर सकती है लेकिन सागर के सामने वह व्यक्तिगत बातें कभी नहीं रख सकती।

उसके सामने अनकहे रिश्तों के दो पहलू हैं, सागर और परिमल। सागर मन के एक कोने से जुड़ते हैं, वह उसे अच्छे लगते हैं, लेकिन नजदीक आकर कुछ कहने-सुनने के स्तर पर वह उनकी कल्पना कभी नहीं कर पाई। परिमल उसके बेहद करीब है, उससे सब कुछ कह-सुन पाने का सुख उसे हासिल है लेकिन जिन्दगी उनके सहारे भी नहीं कट सकती। तो क्या उसे किसी तीसरे पहलू का इंतजार है ?

ने शाहाना से पूछा था।

"मेरे भविष्य की चिंता तुम्हें क्यों सता रही है ?" शाहाना तुनक गई थी।

"क्योंकि मैं तुम्हारा दोस्त हूं।"

"सरपरस्त तो नहीं हो।"

"अगर कहूं कि हूं तो ?"

"फिर जल्दी से कोई लड़का देखो।"

"कैसा लड़का चाहिए तुम्हें ?"

"सरपरस्त ऐसे वेतुके सवाल नहीं पूछते।"

"नया जमाना है, आजकल पूछते हैं।"

"तो फिर ऐसा लड़का ढूंढ़ो जो परिमल से शाहाना की दोस्ती का बुरा न माने।"

"दोस्ती का कोई बुरा क्यों मानेगा ?"

"ऐसे सिक्के अभी खुदा की टकसाल में ढले नहीं हैं।"

"दुनिया बहुत बड़ी है शाहाना, और खुदा को चुनौती मत दो।"

"खुदा पर आस्था है ?"

"हां।"

"फिर मुझे खुद पर आस्था रखने दो।"

"लगता है, बड़ा स्वार्थी हूं मैं।"

"तुम्हारे अपने मन का मैल है।"

"सच। कभी रात को नींद टूट जाती है तो बड़ी देर तक सोचता रहता हूं।"

"क्या सोचते हो ?"

"कि एक अकेली लड़की कितनी बहादुरी से सारी चुनौतियां झेल रही है।"

"तुम्हें वह लड़की कमजोर लगती है ?"

"नहीं, खुद को कमजोर महसूस करता हूं।"

"क्यों ?"

"क्योंकि मैं उसके लिए कुछ कर नहीं पाता।"

"जितना करते हो, कम है ?"

"एक पूरी जिन्दगी इतनी ही तो नहीं ?"

"फिलहाल इतनी ही काफी है मेरे लिए।"

"जरूरत कभी बढ़ सकती है।"

"डरते हो ?"

"नहीं, पर···"

"परिमल, शाहाना अपने विवेक पर चलती है।"

"जानता हूं।"

"फिर ?"

"जानता हूं, एक पूरी जिन्दगी में बहुत कुछ होता है और मैं···"

"जब कम पड़ने लगेगा तब बता दूंगी।"

"और मैं अगर उस कमी को पूरा न कर पाया ?"

"ऐसी कोई बात तुम्हारे सामने कभी नहीं आएगी।"

एक दिन रिश्तों पर बात हो रही थी। बहस थोड़ी दूर तक खिंच गई। हर तरह के रिश्ते, सामाजिक स्वीकृतियों की बात करने के बाद परिमल उदास हो गया।

"हमारी दोस्ती में 'औरत-मर्द' तो कभी नहीं थे, ऐसा क्यों लगता है कि हम एक-दूसरे के बिना अधूरे हैं ?"

"क्योंकि कहीं हम एक-दूसरे के पूरक बन गए हैं।"

"सोते-सोते कभी तुम जाग पड़ती हो ?"

"अकसर···"

"क्या करती हो ?"

"आंखें बंद किए बिस्तर पर पड़ी रहती हूं।"

"विचार आते हैं ?"

"आते हैं।"

"क्या ?"

"कि परिमल अपने बिस्तर पर आराम से सो रहा होगा।"

"बुरा नहीं लगता ?"

"नहीं।"

की गुंजाइश नहीं रहती।"

"तुम्हारे पास होता हूं तो संघर्षों से जूझने की दूनी ताकत महसूस करता

"यह मेरी खुशनसीबी है।"

"इतना क्यों देती हो ?"

"कुछ देकर ही पाया जाता है।"

"लोग तो पाने की बात सोचते हैं।"

"पहले पाकर तब देने की।"

"तुम ठीक कहती हो।"

"उन्हें कम करके क्यों देखते हो ?"

"अच्छाइयों को बढ़ा-चढ़ाकर देखने की आदत समझ लो।"

"तुम्हारी इसी आदत पर मरते होंगे लोग।"

"तुम ?"

"उन्हीं मुरीदों में एक नाम मेरा भी समझ लो।"

"हमारे रास्ते अलग क्यों हैं शाहाना ?"

"क्योंकि वे मिल नहीं सकते।"

"क्यों नहीं मिल सकते ?"

"क्योंकि उन्हें अलग ही रहना है।"

"वही तो पूछ रहा हूं, क्यों अलग रहना है ?"

"क्योंकि हमने अलग-अलग चलना शुरू किया है।"

"अलग-अलग शुरू तो सभी करते हैं।"

"हम उन्हें अलग-अलग मानकर चले हैं।"

"क्यों ?"

"परेशान हो किसी बात से ?"

"परेशानियां तो जिन्दगी है शाहाना, तुम्हें लेकर कभी-कभी परेशान ह

दिया मुझे ?"

"क्योंकि तुम्हारा हक था उसपर।"

"और तुम...तुम्हें क्या मिला ?"

"वही सब, जो तुम्हें मिला।"

"कुछ करने को कहतीं तो कभी..."

"तुम बिना कहे कर देते हो..."

लेकिन ये सब गुजरे हुए कल की बातें हैं। शाहाना और परिमल ने किसी लीक पर सोचना बंद कर दिया है। मिलते हैं तो खुलकर मिलते हैं, नहीं मिलने तो महीनों नहीं मिलते। एक एहसास है जो हमेशा उजागर रहता है दोनों के बीच।

शाहाना खुद को व्यवसाय के टुकड़ों में बांट चुकी है। उसके पास वक्त की अपनी पूंजी नहीं है। परिमल का फोन आता है तो थोड़ा समय सबसे काटकर उसके नाम जमा कर देती है, नहीं आता तो थोड़ा-थोड़ा वक्त रोज़नामचे में जोड़ दिया जाता है। दोनों मिलते हैं तो साथ का समय दूसरी दुनिया में बीतता है।

वह समय शाहाना के लिए बड़ा कीमती होता है। परिमल थोड़ी देर की राहत पा अपने संघर्षों में वापस लौट जाता है। शाहाना अपनी पूंजी समेटकर अपने दायरे में सिमट आती है। दोनों फिर मिलने का इंतजार करते हैं। वक्त खिसकता जाता है।

"नहाने का पानी तैयार है दीदी!" सोमा ने आकर कहा तो अतीत का माया
जाल टूट गया।

"कपड़े रख दिए?"

"जी..."

शाहाना उठी। सिरहाने का गुलाबी लिफाफा उठाकर उसने तार का मसौ
एक बार फिर पढ़ा और टेलिफोन का रिसीवर उठाकर एक नंबर घुमाने लगी।

बहुत दिनों से परिमल मिला नहीं था।

११

आधी रात हो चुकी है। बाहर रात अंधेरी है लेकिन उसके लिए, सिर्फ उस
लिए सुबह की लालिमा फैल चुकी है, सूरज निकलता आ रहा है। सुबह के दस ब
हैं या ग्यारह, या ऐसा ही कुछ। वक्त का एहसास रुक गया है। सुबह अभी-अ
ताजगी के लिबास में उसके सामने खड़ी थी, मुग्धा नायिका-सी। उसका सुं
चेहरा, कंधे, पीठ सब कुछ वह देख रही थी, जाने कितने दिनों से वह देखती
रही है—साल के तीन सौ पैंसठ और उतने ही दिनों वाले चार सालों से। घंट
मिनट, सेकेंड सब कुछ...

बचपन में ऐसा कभी होता तो वह बिस्तर पर पड़ी-पड़ी खिड़की से बा
देखती। बाहर जाने के लिए मौसी मना करतीं, वरना उठकर वह हॉस्टल के स
मान लान आती। आसमान में खिले तारे गिनना उसका प्रिय खेल था। एक-ए
तारे के दामन पर वह अपने मन की बात टांकती जाती। इस तरह सहेजकर उ
जमा करने के अंदाज में गिनती कि भविष्य में जब जरूरत पड़ेगी निकालकर

एक घोड़ा बन जाता फिर कुछ बादलों के टुकड़े ऐसे जुड़ते कि वह अपने सपनों का शहज़ादा सामने खड़ा पाती। न बहुत लम्बा, न छोटा, स्वस्थ लेकिन मोटा नहीं, कभी उसकी मूंछ-दाढ़ी होती तो कभी सफाचट, लेकिन उसकी आंखें हमेशा चमकती रहतीं। कुछ प्यार, कुछ दुलार, कुछ दुनियादारी, कुछ सूझ-बूझ का दावा होता उनमें। दुनिया में वैसी समझदार आंखें और कहीं नहीं थीं। होंठ दृढ़ता से बंद रहते, हलकी मुसकुराहट के साथ जो सिर्फ उसीके लिए थी, बाल पलटकर पीछे किए हुए। नाक न मोटी न पतली, चेहरे का संतुलन संभाले···

परिमल की आंखों में शाहाना ने वही अतीत ढूंढ़ा था। बहुत दिनों तक उसने यही समझा कि वही उसके सपनों का शहज़ादा है जो रूई के फाहों जैसे सफेद बादलों के घोड़े पर सवार उसकी जिन्दगी में उतर आया है।

'जिससे प्यार है, शादी भी उसीसे हो, यह जरूरी नहीं, शादी से रोमांस भाग खड़ा होता है'—रोज़ी कहती है। उसने बचपन में प्यार किया था पीटर से लेकिन शादी की उसने कृपाशंकर से क्योंकि वह एक बेहतर जिन्दगी उसे दे सकता था। बीड़ी बुझाकर फिर पीने के लिए उसकी टोंटी जमा करनेवाला पीटर उसे क्या देता? शाहाना यह फलसफा आज तक नहीं समझ पाई। दरअसल, शादी की बात उसके ज़ेहन में बैठ नहीं पाती। एक उम्र सुलेमान मौसी भी तो जी गई थीं, हो सकता है किसीको प्यार भी किया हो उन्होंने। प्यार की बात वह समझती है। जिसे प्यार किया जाए उसे जिस्म भी दिया जाता है, इसके आगे वह नहीं जानती।

कभी-कभी सोचती जरूर है कि सामने एक लंबी सड़क है जिन्दगी की, इसमें ठहरने के लिए पड़ाव चाहिए, वरना थक जाएगी। कुछ अंतराल पर पड़ाव आती है, इतनी दूरी पर जितनी वह आसानी से पार कर ले। आज तक की जिन्दगी जिस तरह से भी जीती रही, उसका कारण था। इस पड़ाव का भी कारण है। कभी सूरज इतना तेज भी हो सकता है कि उसे भूनकर रख दे, तब वह छाया की तलाश में

जिस व्यक्ति के साथ काम करने की तमन्ना थी जब वही नहीं रहेगा तो
म करके क्या होगा ? इस बात को भी कई वर्ष बीत चुके हैं···इस बीच
ायी प्रेत-लेखक बन गई है लेकिन नंदीजी या मालतीजी जैसों के लिए नहीं,
प्रकाशकों के लिए हलका साहित्य लिखती है—मनोरंजक, सनसनीखेज,
रोमांस, सेक्स। लोगों का यह विश्वास कि इस तरह का साहित्य हलका
, अश्लील होता है, वह मिटा देना चाहती है इसलिए नये-नये ढंगसे विज्ञापन
ी है, प्रकाशकों से विज्ञापन पर पैसा खर्च करवाती है, प्रकाशक उसकी बात
है, क्योंकि अपनी मेहनत का फिलहाल अलग से वह कुछ नहीं लेती। वह
महीने में एक किताब लिख सकती है लेकिन दो महीने में एक किताब से
वह नहीं लिखना चाहती। कुछ इसलिए कि और कामों के लिए वक्त बचा
र इसलिए भी जितना पैसा उसे एक किताब का मिलता है, उससे ज्यादा की
रत नहीं।
ांफिडेंशियल' अभी चल रहा है लेकिन उतना नियमित नहीं है। शाहाना को
परवाह भी नहीं है। सैम साहब की अपेक्षाओं के जाल से वह बाहर आ गई
ीके साथ रोजी का नाम भी सैम ने अपने खासुलखास लोगों के रजिस्टर
दिया है लेकिन उसकी वजह शाहाना नहीं है। इधर रोज़ी से शाहाना की
तें भी बहुत कम हो गई हैं। लोग कहते हैं, पीटर वापस आ गया है। अब वह
नर आदमी बन गया है, रोज़ी को वह सब दे सकता है जिसकी उसे
है। शाहाना उसकी ओर से निश्चिन्त हो गई है। अपने से ही फुर्सत नहीं
आजकल एक महानगरीय जीवन में, दूसरों की चिंता कोई कहां तक करेगा?

की मानसिक-शारीरिक कलाबाजियां खा रहा है, शिकायतों का अम्बार खड़ा है। दूसरों को एकदम नीची नजर से देखता है कि उसके सामने यह क्या उसे समझने की योग्यता-क्षमता किसी बाशिंदे में नहीं हो सकती···

'किसीको समझना बड़ा बोरिंग काम है···।' आखिर में वह अपने कहती है, 'इससे बहुत-सी परेशानियां पैदा हो जाती हैं इसलिए बेहतर है, अप अपने ही खोल में छिपा लिया जाए। अपने पास करने को कुछ काम तो नहीं

इतना सब कुछ सोचने-समझने के बाद शाहाना ने अपनी योजनाएं थ बदल ली हैं। बाहर जाने के लिए उसे अब हमेशा परिमल का इंतजार नहीं शहर में अब हमेशा जमे रहना भी उसे जरूरी नहीं लगता, रोजमर्रा के काम घर से अलग, परिचित चेहरों से अलग कहीं चले जाने में उसे सुख मिलता है सप्ताह के लिए, दस दिन के लिए कहीं बाहर एकान्त में रहने का अपना मजा किसीसे मिलना न पड़े, कोई काम न करना पड़े, कोई जिम्मेदारी न हो। गुय खाना-नाश्ता, दूर-दूर तक अकेले घूमना, मनचाही किताबें पढ़ना, पड़े रहना थककर सो जाना। इससे दिलोदिमाग को वापस आकर फिर जूझ पड़ने की मिलती है।

परिमल ने एक बार दबी जबान से पूछा था, "कम-से-कम पता तो बता करो।"

"तुम भी इन बातों में विश्वास करते हो?" शाहाना ने प्रश्न-भरी आं

उनके इस मूड से दहशत खाता था। अपनी मरजी से जितना शाहाना देती है, उससे ज़रा भर भी ज्यादा हासिल नहीं किया जा सकता और परिमल ने उसे इतना भी तो नहीं दिया था। अपने थके-हारे क्षणों में वह किसी तलाश में ही आया था शाहाना के पास। जो अधिकार वह खुद नहीं दे सकता, उसे मांगने का क्या हक है, परिमल समझता है।

कहीं बाहर जाकर कुछ दिन रहने की बात एक दिन यूंही आ गई थी शाहाना के दिमाग में और जब वह गई तो पहली बार उसे बड़ा खराब लगा। लेकिन बचपन से अब तक का अनुभव था कि जो बात शुरू में खराब लगती है, वह अमूमन बाद में अच्छी लगने लगती है, इसलिए शाहाना ने बाहर जाने का सिलसिला तोड़ा नहीं। कहीं उसे यह भी लगा, अपनी जिन्दगी को सामाजिक रूप देने जैसा माहौल उसके आसपास नहीं है इसलिए फिलहाल उसे उसी जिन्दगी से सुकून मिल सकता है।

एक ज़माना था जब वह ख्वाब देखा करती थी। वैसे तो यह हक जिन्दगी ने उसे नहीं दिया था लेकिन सुलेमान मौसी के मरने के बाद यह उसने खुद ही हासिल कर लिया। यह बात और है कि जल्दी ही उसे अपने ख्वाब बड़े फिजूल लगने लगे, नकली फूलों की तरह, देखने में सुंदर पर बेजान। फिर भी ख्वाब तो सभी देखते है, वह भी देखती रही।

मौसी की नितान्त अकेली जिन्दगी की तुलना में उसके पास तो फिर भी परि-मल है। पूरा न सही, जिन्दगी का एक टुकड़ा तो जुड़ता है उसके साथ, मौसी के पास क्या था···मामा ? छिः-छिः, कैसी-कैसी बातें आने लगती हैं उसके दिमाग में !

शाहाना लेटी होती है तो इस एक शब्द के मन में आते ही उठकर खड़ी हो जाती है। बैठी रहती है तो चहलकदमी करने लगती है।

"फिजूल बातों का मन में आना बीमार मन की निशानी है।" मौसी कहती थीं।

"कैसे रोकूं मौसी ? ये बातें मानती नहीं। बस, चली आती हैं।"

"तू एक झटके से निकाल दे उन्हें।"

और शाहाना सिर को झटका देने लगती, जैसे झटक-झटककर मन की फिजूल बातों को दिमाग से निकाल देगी।

महसूस करता है। उसने पुराने मुसे हुए अखबारों की कतरनें लाकर शाहा
दिखाई, जब उसने शादी की थी, जब स्टूडियो वालों के बुरे दिन आ
ताजिन्दगी उससे बात न करनेवाली सास इस दुनिया से विदा हुई, और
संस्कार इसी दामाद ने किया जिसे उन्होंने कभी माफ नहीं किया था···समय
पर सब खबरें छपी थीं।

"मैं समझता हूं जीते-जी न सही, मरकर अम्मी को माफ तो करना पड़ा।
भावुक होकर बोला था।

"किस बात के लिए ?"

"मैंने उनका दिल दुखाया था न ?"

"आप ऐसा क्यों सोचते हैं ?" शाहाना का दिल उस फटेहाल दिखाई
वाले संभ्रांत आदमी के प्रति हमदर्दी से भर आया था, "आपका साथ न
उन्होंने कोई अच्छा काम थोड़े ही किया था।"

"वह बड़ी थीं, मां थीं, नाराज होने का हक था उनका।"

"बड़ा होने से नाराज होने का हक मिल जाता है ?"

"बच्चे गलती करें तो बड़े नाराज होते ही हैं।"

"शादी करके आपने गलती की थी ?"

"मैंने उनका दिल दुखाया था।"

"अगर आपके जीने से किसीका दिल दुखता है तो क्या आप जीना बं

स्टूडियो का जमाना देखा था, उस जमाने में भी काम किया था। वापस आने लगी तो सिक्योरिटी-मैन उसे स्टेशन तक छोड़ने आया। जब वह गाड़ी में बैठ गई तब बड़े संकोच से बोला था :

"जो कुछ आप लिखें, उसकी एक कतरन मुझे भी भेज देंगी ?"

"जरूर भेजूंगी। इंस्टीट्यूट का पता ठीक है ?" शाहाना ने उसे आश्वासन दिया।

"जी हां, मैं इंतजार करूंगा।"

पूना से लौटते समय शाहाना खुद भी भावुक हो गई थी। कितने रंग दिखाती है यह जिन्दगी ! कितने उतार-चढ़ाव झेलता है आदमी जिन्दगी का एक सफर पूरा करने के लिए !

'जिन्दगी को देखने-समझने के लिए आदमी को अपने दायरे से बाहर आना पड़ता है।' सैम ने कभी कहा था लेकिन निश्चित रूप से उसके और शाहाना के दायरों में बहुत फर्क है।

शाहाना यह बात हर पल महसूस करती है, जिन्दगी को देखने-समझने के लिए दायरे से बाहर आना पड़ता है।

जानती है, कभी उतरेगा नहीं। वह इसके लिए परेशान भी नहीं है।

उसके सामने अपनी जिन्दगी है खुली-खुली जिसका काफी हिस्सा उसे लगता है, वह जी चुकी है। जो है, वह भी इसी रफ्तार में बीत जाएगा, हो सकता है कभी तेज, कभी मध्यम सुर में खुशी गुनगुना जाए, दुख थोड़ी देर ठहर जाए उसके सामने। इससे ज्यादा और कुछ नहीं होगा। शाहाना चाहती भी नहीं कि और कुछ हो।

प्रभा, रोज़ी, प्रवीर…एक ही बात पर कई-कई बार उलझ चुके हैं :

"तुम शादी क्यों नहीं कर लेतीं ?"

"तुमने कोई लड़का देखा है क्या ?"

"तुम एक काबिल लड़की हो, तुम्हारे लिए लड़के बहुत मिलेंगे।"

"बहुत नहीं, शादी सिर्फ एक से होती है।"

"तुम हां तो करो।"

"मेरे हां करने से क्या होगा ?"

"तुम करके देखो।"

"कोई काबिल गार्जियन मिला तो वह भी कर देखूंगी।"

"हम नाकाबिल हैं ?"

"जहां तक मेरा सवाल है।"

"सुकूनेदिल, एक दिन जब अकेले चलते-चलते थक जाओगी, यह बात तुम्हारी समझ में आएगी। हमें डर है कि तब बहुत देर न हो जाए।" आजिज आकर एक दिन रोज़ी ने गुस्से से कहा था।

"राहतेजान, मैं तुम्हारे पास साथ मांगने नहीं आऊंगी।" शाहाना मुसकुरा

उसे नहीं करना और यह एक इत्तिफाक साबित हुआ कि शादी इसी हिस्से में आई। बहुत पहले वह समझ गई थी कि शादी करके घर बसाना या बच्चे पैदा करना उसकी नियति नहीं। जितना समर्पण एक वैवाहिक जीवन के लिए चाहिए उतना उसके वश में नहीं था और सच पूछा जाए तो पुरुष उस समर्पण के काबिल भी कहां था'''या स्त्री की प्रतिभा, उसकी क्षमता का ग्रहण पुरुष की शख्सियत को राहुकेतु बनकर ग्रसता जा रहा था। पुरुष के प्रति स्त्री का आकर्षण शाहाना के साथ एक-दो कदम से ज्यादा कभी नही चला। समर्पित रहकर जीवन बिता देना स्त्री की विवशता की शर्त रही हो कभी, आज हालात बदल गए थे। जिसे प्यार किया जाए, जिसके प्रति समर्पित हुआ जाए उसके गुण-अवगुण, उसकी क्षमता अपने से कुछ तो ज्यादा हो। बराबर या अपने से कम के साथ समझौता हो सकता है। समर्पण का सौदा नहीं।

परिमल के साथ उसने समझौता किया है। यह समझौता जीवन-भर चल सकता है या आगे कहीं भी खत्म हो सकता है'''शाहाना दोनों के लिए तैयार है। परिमल के साथ उसने जीवन को समझा है, उसके सुख-दुख की साथी बन गई है,

उसे नहीं करना और यह एक इत्तिफाक साबित हुआ कि शादी इसी हिस्से में आई। बहुत पहले वह समझ गई थी कि शादी करके घर बसाना या बच्चे पैदा करना उसकी नियति नहीं। जितना समर्पण एक वैवाहिक जीवन के लिए चाहिए उतना उसके वश में नहीं था और सच पूछा जाए तो पुरुष उस समर्पण के काबिल भी नहीं था···या स्त्री की प्रतिभा, उसकी क्षमता का ग्रहण पुरुष की शख्सियत को राहु-केतु बनकर ग्रसता जा रहा था। पुरुष के प्रति स्त्री का आकर्षण शाहाना के साथ एक-दो कदम से ज्यादा कभी नहीं चला। समर्पित रहकर जीवन बिता देना स्त्री की विवशता की शर्त रही हो कभी, आज हालात बदल गए थे। जिसे प्यार किया जाए, जिसके प्रति समर्पित हुआ जाए उसके गुण-अवगुण, उसकी क्षमता अपने से कुछ तो ज्यादा हो। बराबर या अपने से कम के साथ समझौता हो सकता है। समर्पण या सौदा नहीं।

परिमल के साथ उसने समझौता किया है। यह समझौता जीवन-भर चल सकता है या आगे कहीं भी खत्म हो सकता है···शाहाना दोनों के लिए तैयार है। परिमल के साथ उसने जीवन को समझा है, उसके सुख-दुख की साथी बन गई है, उसकी सुविधा से।

अपनी शख्सियत के दूसरे आधे के कई-कई टुकड़े उसने अपने चारों ओर बिखेर दिए हैं, घर-आंगन, पास-पड़ोस, दूर-दराज। महानगर की हलचल हो या दूरदराज की बस्तियां, जिन्दगी सबके बीच से गुजरती एक पगडंडी लगती है जिसके दोनों

है। यही तो है जिन्दगी की छांव-धूप। कभी वह थकान से चूर-चूर होकर निढाल पड़ जाती है, कभी चुस्त-दुरुस्त दूने हौसले के साथ आगे बढ़ती है, एक-एक पोर मे ताजगी महसूस करती है।

शाहाना सोचती है, लोग जिन्दगी का जनाजा कंधों पर लिए क्यों घूमते हैं ? खुदा से मौत क्यों मांगते हैं, जो उन्हें नहीं मिलती ? पता नहीं वे सचमुच मरना चाहते हैं या ऊपर से जलकर मरने की बात करते हैं। उसने खुद मरने की बात कभी नहीं सोची। हर हाल में जीने की एक नई लालसा पैदा हुई है उसके मन में। वह समझ नहीं पाती, जब जीने के लिए सब आए हैं तब जिए बिना कोई भी कैसे मर सकता है ? मौत का वजन दिलोदिमाग पर जितना बढ़े, यमदूत दरवाजे पर बार-बार दस्तक दें, अकेलापन जोंक बनकर जिन्दगी से चिपट जाए, राहत का पैगम्बर कभी साथ नहीं छोड़ता, अगर हौसला बना रहे। अकेलेपन का दानव कभी तबाही के गर्त में नहीं गिरने देता, जब तक हिम्मत आसपास टहलती रहती है। जिन्दा रहने के लिए बहुत थोड़ी लेकिन बुनियादी शर्तें हैं। आदमी सामाजिक संस्कारों में बंधे या उससे मुक्त रहे, कोई फर्क नहीं पड़ता।

"जिन्दा रहने के लिए एक सुरूर चाहिए।" एक बार प्रवीर सेन बहस करने लगा।

"जिन्दगी अपने-आपमें एक सुरूर नहीं है क्या ?" शाहाना ने उसे झिड़क दिया।

"जिन्दगी अपने-आपमें सुरूर कैसे बन सकती है ? सुरूर उसमें आदमी भरता है।"

"उल्टी बात कह रहे हो।"

"उल्टा तो तुम्हारे सोचने का तरीका है।"

"वही सही, जिन्दगी मेरी पकड़ से बाहर तो नहीं है।"

"यह तुम्हारी ढिठाई है कि तुम उसे मुट्ठी में मानकर चलती हो।"

"मानकर नहीं चलती, वाकई वह मेरी मुट्ठी में है।"

"कैसे ?"

"तुम नहीं समझ पाओगे।"

"यह क्यों नहीं कहतीं कि समझने जैसा कुछ है ही नहीं उसमें।"

"समझने के लिए एक दिमाग की जरूरत पड़ती है न ?"

"हां, पड़ती है।"

"फिर ?"

"फिर क्या ?"

"प्रवीर सेन, आप दिमाग कहीं गिरवी रख आते हैं कभी-कभी। और
ा होता है, आप समझने-बूझने से इनकार कर देते हैं। खुदा का शुक्र अदा कीि
इनकार करने भर का ज्ञान फिर भी रह जाता है आपके पास···फिलहाल, अ
ई और बात कीजिए।"

"अच्छी दादागीरी है! जब चाहती हो, झिड़क देती हो। उम्र में बड़ा
 में।"

"अक्ल में तो बड़े नहीं हो।"

"तुम अपने-आपको बड़ा अक्लमंद समझती हो ?"

"समझती नहीं, मैं हूं अक्लमंद।"

"अपने मुंह से अपने गुण का बखान करते हैं अहमक।"

"सोहबत का असर आदमी पर पड़ता तो है।"

"फिर मान लो, जिन्दा रहने के लिए आदमी को एक सुरूर चाहिए।"

"जिन्दगी अपने-आपमें एक सुरूर है।"

"आदमी जिन्दगी से बड़ा है।"

"आदमी जिन्दगी की एक अदना-सी कड़ी भर है।"

'आदमी जिन्दगी को आबाद करता है।"

"जिन्दगी तब भी आबाद थी जब आदमी नहीं था और आगे भी रहेगी ज
मिट जाएगा।"

"जब आदमी नहीं रहेगा तब जिन्दगी रहे, न रहे क्या फर्क पड़ता है ?"

"इसीलिए जिन्दा रहने के लिए जीना जरूरी है, किसी सुरूर के लिए नहीं।

"कभी-कभी तुम बहुत तल्ख हो जाती हो।"

"कुछ लोगों का दिलोदिमाग इसके बगैर सही नहीं रहता।"

का कोना-कोना लाल हो रहा है। लहरों की बेताबी बढ़ रही है। लालिमा तेज होकर मद्धम हो जाती है। शायद कुछ बादल आ जाते हैं या अंकुर फूटने की उमस में ऐसा ही होता है। लहरों का हाहाकार जोर पकड़ता है। यही तो जीवंत सांसें हैं महासागर की जो सामने खड़े होकर ही महसूस की जाती हैं। आदमी भी कितना अजीब जन्तु है, कहीं भी अड़कर खड़ा हो जाता है। महासागर की लहरों पर चढ़ती-उतरती नौकाओं को देखकर वह इंसानी हौसले का अंदाजा लगाती है। एक तिनका भी उतर जाता है कितने जोशोखरोश से ऊपर-नीचे आती-जाती लहरों पर। तभी आसमान की लाली एक जगह केंद्रित होने लगती है। एक गोला उभरता आता है।···

अतीत के पन्ने पलटना शाहाना को तब अच्छा लगता है। वह जिन्दगी का एलबम हाथ में थामकर खड़ी हो जाती है। एक-एक पन्ने पर जड़ी तसवीरों को बड़े करीने से हंस-हंसकर देखती है, तजवीज करती है। उसके हाथ सुख-दुख से जुड़े लमहात की ताजगी महसूस करते हैं।

सामने के गोले से रोशनी की किरणें फूटने लगती हैं, शाहाना को लगता है, उसकी जिन्दगी का सूरज क्षितिज छू रहा है। किसी दुख की बात पर उदास होना उसे अच्छा लगता है, सुख पर वह मुसकुरा पड़ती है। जब उदासी और मुसकुराहट से वक्त का खजाना भर जाता है तब वह पलटकर वापस आने लगती है। उसे लगता है, पिछली शाम की लाली उम्मीद का आमंत्रण लेकर आई थी। उसका मन उम्मीद की लहरों पर रात भर तैरता रहा था।

हवा में अचानक एक ताजगी भी आती है। उसे लगता है, सामने बालू पर कदमों के निशान छोड़ते अरमान बहुत आगे बढ़ चुके हैं।

वह खुश हो जाती है—जिन्दा रहने की खुशी, आजादी की खुशी, अपने ढंग से जीने की खुशी···कितना कुछ है एक आंचल में समेटने के लिए। काश, सुख की तलाश करनेवाले इस बात को समझ पाते!

जॉब चार्नक की बीवी

जॉब चार्नक की बीवी

जॉब चार्नक की बीवी

प्रतापचन्द्र चन्दर

एम० ए०, एल-एल० बी०, डी० फ़िल०

मूल्य
१८ रुपये

प्रकाशक
राधाकृष्ण,
२, अंसारी रोड, दरियागंज,
नई दिल्ली-११०००२

मुद्रक
भारती प्रिंटर्स
दिल्ली-३२

इस उपन्यास की कथा किंवदन्तियों एवं कल्पना पर आधारित है। ये दोनों किस परिमाण में इसमें हैं, यह पाठकों की सूझबूझ पर छोड़ता हूँ। जॉब चार्नक के जीवन-काल में ही उसको लेकर अनेक किंवदन्तियाँ प्रचलित हो गयी थीं। इस उपन्यास से यदि उसी शृंखला में किसी नयी किंवदन्ती का सृजन होता है तो अपना प्रयास मैं सफल समझूँगा।

ा[1] के प्याले को जॉब चार्नक ने ख़ाली किया। ख़ाली प्याले के धुँधले ईने में वह बिना पलक झपकाए अपनी बिगड़ी हुई परछाईं देखने लगा। केला, यहाँ वह निहायत अकेला है! कहाँ लंदन और कहाँ यह कासिम ज़ार! न माँ, न बाप; न दोस्त, न बीवी। सात समंदर पार इस अजाने ग में जॉब चार्नक का कोई नहीं, कोई भी नहीं!

कंधे पर ज़ोरों की थाप किसने लगायी? जॉब चार्नक ने पलटकर खा। जॉन इलियट। लाल सुर्ख़ वर्तुल मुखड़ा, चटक वेश-भूषा, मेद-बहुल रीर। इलियट कम्पनी का कारिन्दा है। उसने कौतुक से कहा, 'मिस्टर ार्नक, घर के लिए जी भर आता है न? स्वाभाविक है। आये भी कितने िन हुए? चीयरियो! और ज़रा-सी पंच—मीठी, हलकी, शराब ीजिए। पंच की बाढ़ में सारे दुखों को बहा दीजिए।'

'न, छोड़िए। बहुत पी चुका।'

'नहीं क्या!' इलियट ने आवाज़ दी। 'मेरी एन, पंच लाओ!... ापसे बताऊँ मिस्टर चार्नक, फ़िलहाल पंच ही हम लोगों का सहारा है। च्छा माल अब कहाँ मिलता है? 'यूरोप' जहाज़ में होम से कुछ वाइन ायेगी।'

कासिम बाजार के इस पंच-हाउस का नाम है 'ओल्ड इंग्लैंड'। इसका मालिक है जॉन इलियट, हालाँकि बेनामी। 'ऑनरेबुल कम्पनी' का नौकर होने के बावजूद बेनामी व्यवसाय चलाता है। इस मधुशाला में विदेशियों की भीड़ रहती है। फ्रांसीसी, डच, अँगरेज़ आपस में प्रतियोगी होते हुए भी गुप्त कारोबार में सहयोगी हैं। ग़ैरकानूनी सौदों की बहुतेरी गुप्त बातें

---

१. एक प्रकार की हलकी शराब।

कृतज्ञता से मेरी एन की आँखें दमक उठीं। उसने अचानक चार्नक के गले से लिपटकर उसे चूमा। कहा, 'मिस्टर, आप बड़े अच्छे हैं। इलियट दुष्ट है!'

बच्ची के आकस्मिक उच्छ्वास से चार्नक परेशान हुआ।

'खूब, खूब!' इलियट ने हँसकर कहा, 'मिस्टर चार्नक, खासी रहती आपकी यह प्रेयसी। फिर भी, और जरा उम्र होती तो अच्छा था।'

'मैं तुम्हें प्यार करती हूँ,' पंच का जग उठाकर एन दौड़ती हुई अंदर चली गयी। कहती गयी, 'मैं तुम्हे प्यार करती हूँ, मिस्टर चार्नक!'

चार्नक का चेहरा सुर्ख हो आया, समय से पहले सयानी इस बच्ची के बेझिझक प्रेम-निवेदन से।

इलियट ने ठहाका लगाया, 'खासे मुनाफ़े का सौदा है यह मेरी एन। क्या खयाल है, मिस्टर चार्नक? यह लौंडिया बहुत ग्राहकों को खींच लाएगी। बस, दो साल और। फिर तो इसकी उभरी जवानी से इस मधुशाला में ग्राहकों की भीड़ होगी।'

'इस लड़की को पाया कहाँ?'

'महज दस सिक्के में इसे हुगली में ख़रीदा है। सुना तो आपने, उसकी माँ नेटिव थी और बाप अँगरेज। हमारे ही जात-भाई किसी नाविक की जारज संतान होगी। हुगली में पेपिस्टों ने उसे पाला था। इसलिए यह लड़की इसी उम्र में नियम से प्रार्थना करती है। चाहें तो आप मेरी एन को ले सकते हैं। मामूली मुनाफ़े पर मैं इसे आपके हाथ बेच सकता हूँ। आपकी लगाई पूंजी पर लाभ ही होगा। कुछ ही दिनों में यह जवान हो

यहाँ गूँजती हैं। मधुशाला गंगातट पर नाव-घाट के पास है। मिट्टी की दीवारें, फूस की छौनी, मगर ख़ासी अच्छी-सी। सामने के छोटे-से बगीचे में बेला, जुही, गुलदाऊदी तथा और भी बहुत-से मौसमी फूलों के पौधे। एक बरगद के पेड़ के नीचे लकड़ी की कई टूटी-सी मेज़-कुर्सियाँ। झोंपड़ी में जगह की कमी होने से ग्राहक यहीं भीड़ लगाते हैं।

मेरी एन एक बड़े जग में पंच ले आयी। दसेक साल की लड़की, लेकिन उमगती-सी बनावट। इसी उम्र में फ्रॉक पर उठती छाती की उद्वेलता। बादामी वेणी, अधमैला रंग, नीली आँखें और धुमैली पुतलियाँ; नसों में मिश्र-रक्त की धड़कन। मृदु मुस्कराहट के साथ मेरी एन ने जॉब चार्नक के पात्र को भर दिया।

'मिस्टर चार्नक,' इलियट ने कहा, 'मेरी यह नयी क्रीतदासी कैसी लगती है?'

चार्नक की राय सुनने के लिए मेरी एन उद्ग्रीव हुई।

चार्नक अचंभे में आ गया। बोला, 'क्रीतदासी? अरे, यह तो निरी बच्ची है।'

मेरी एन के नितंब पर धप् से एक हाथ मारकर इलियट ने कहा, 'बस, महज़ दो-एक साल इंतज़ार कीजिए, यह बच्ची ही भरभरा युवती हो जायेगी। जानते हैं मिस्टर चार्नक, ये नेटिव लड़कियाँ कम उम्र में ही जवान हो जाती हैं?'

दस साल की लड़की मेरी एन ने झंकार के साथ प्रतिवाद किया, 'मिस्टर इलियट, फिर? फिर आपने मुझे नेटिव कहा! मैं इंगलिश हूँ। मेरी माँ ब्लैकी थी, मगर पिता तो अँगरेज थे।'

'ब्रेवो,' इलियट उमगा; लड़की तेज है। 'बहुत खूब, तुम ईस्ट इंडियन

कृतज्ञता से मेरी एन की आँखें दमक उठीं। उसने अचानक चार्नक के गले से लिपटकर उसे चूमा। कहा, 'मिस्टर, आप बड़े अच्छे हैं। इलियट दुष्ट है!'

बच्ची के आकस्मिक उच्छ्वास से चार्नक परेशान हुआ।

'खूब, खूब!' इलियट ने हँसकर कहा, 'मिस्टर चार्नक, खासी रहती आपकी यह प्रेयसी। फिर भी, और ज़रा उम्र होती तो अच्छा था।'

'मैं तुम्हें प्यार करती हूँ,' पंच का जग उठाकर एन दौड़ती हुई अंदर चली गयी। कहती गयी, 'मैं तुम्हें प्यार करती हूँ, मिस्टर चार्नक!'

चार्नक का चेहरा सुर्ख हो आया, समय से पहले सयानी इस बच्ची के बेझिझक प्रेम-निवेदन से।

इलियट ने ठहाका लगाया, 'खासे मुनाफ़े का सौदा है यह मेरी एन। क्या खयाल है, मिस्टर चार्नक? यह लौंडिया बहुत ग्राहकों को खींच लाएगी। बस, दो साल और। फिर तो इसकी उभरी जवानी से इस मधु-शाला में ग्राहकों की भीड़ होगी।'

'इस लड़की को पाया कहाँ?'

'महज दस सिक्के में इसे हुगली में ख़रीदा है। सुना तो आपने, उसकी माँ नेटिव थी और बाप अँगरेज़। हमारे ही जात-भाई किसी नाविक की जारज संतान होगी। हुगली में पेपिस्टों ने उसे पाला था। इसलिए यह लड़की इसी उम्र में नियम से प्रार्थना करती है। चाहें तो आप मेरी एन को ले सकते हैं। मामूली मुनाफ़े पर मैं इसे आपके हाथ बेच सकता हूँ। आपकी लगाई पूंजी पर लाभ ही होगा। कुछ ही दिनों में यह जवान हो जायेगी। आपका मूल सूद सहित वसूल हो जायेगा।'

'शुक्रिया, मिस्टर इलियट,' चार्नक ने कहा, 'क्रीतदासी रखने की ख्वाहिश ही नहीं है, तिस पर यह बच्ची। आपने पागल समझा है मुझे?'

चार्नक को यह चर्चा क़तई अच्छी नहीं लग रही थी। चार्नक इलियट से उम्र में तरुण है, पर पद में ऊँचा। नीचे ओहदे के इस कर्मचारी की रसिकता से उसे खीज हो आयी। उसने ज़रा रुखाई से कहा, 'नहीं मिस्टर इलियट, मेरे कोई रखैल नहीं, न ही रखने की इच्छा है। महज़ पाँच साल के इक़रारनामे पर इंदोस्तान आया हूँ। इक़रारनामे की मियाद पूरी होते ही अपने घर लौट जाऊँगा। इस मुल्क की नेटिव डाइनों के पल्ले पड़ने का अपना इरादा नहीं।'

'डाइन!' इलियट ताज्जुब में पड़ा। 'आप बिलकुल कच्चे हैं, मिस्टर चार्नक! नेटिव औरतों के बारे में आपको कोई जानकारी नहीं है। ये फूलों की तरह कोमल और रेशम जैसी चिकनी होती हैं। इनके प्रेम की मादकता, वेल् मिस्टर चार्नक, सिर्फ़ अपने अनुभव से जानी-बूझी जा सकती है, दूसरे के किये वर्णन से नहीं। आप मर्द हैं न!'

इतने में सामने की पगडंडी से कुछ मूर[1] औरतें जाती दिखाई दीं—सारा शरीर बुरक़े से ढँका। आँखों पर गोलाकार दो जालियाँ।

उन्हें देखकर जॉब चार्नक जोश में आकर बोल उठे, 'देखिए मिस्टर इलियट, वह रहीं आपकी नेटिव स्त्रियाँ। चलती-फिरती पोटलियाँ, भूत जैसी। अँधेरे में देखने से कलेजा धक् से रह जायेगा।'

'आप बड़े बुद्धू हैं, मिस्टर चार्नक,' इलियट ने कहा, 'वह बुरक़ा अँधेरे के लिए नहीं है। अँधेरे में वह बुरक़ा जब उतर जायेगा, उफ़, क्या बताऊँ

हैं। छलकती हँसी से गाँव की पगडंडी को गुँजाती हुई वे चली गयीं।

'क्या कह रही थीं वे ?' जॉब चार्नक ने ज़रा खीज कर पूछा।

इलियट हो-हो करके हँस पड़ा। उसके बाद रस लेते हुए बोला, 'वे क्या कह रही थीं, मालूम है ? बोलीं—ऐ दीदी, वह जो बच्चा-सा साहब है, वह साहब है कि मेम ? मेमों की तरह उसके कंधों तक कैसे सुनहले बाल लटक रहे हैं ! शक्ल भी ज़नाना है। मेमों जैसी रुपहली झालरदार रंग-बिरंगी पोशाक—वह ज़रूर मेम है, ज़रूर।'

इलियट के ठहाके के बीच चार्नक ने एक बार कंधों तक लटकते अपने सुनहले बालों पर हाथ फेर लिया। रुपहली झालर वाले कोट पर सलज्ज दृष्टि गयी। अनचीन्ही नेटिव औरतों की रसिकता से उसे नाराज़गी नहीं हुई। पंच के प्याले को ख़ाली करके वह भी धीमे-धीमे हँसने लगा। उसके बाद इलियट के ठहाके के साथ उसकी हँसी भी कहीं खो गयी।

मकसूदाबाद के निकट ही भागीरथी तट पर कासिम बाज़ार एक छोटा-सा गाँव है। जंगल-झाड़ियों में मिट्टी के बने घर, गड़हे-डाबर—दूसरे और गाँव की ही तरह। तंग रास्ते। छोटा-सा एक बाज़ार। बाज़ार का रास्ता इतना सँकरा कि एक पालकी मुश्किल से गुज़र पाती है। जगह बिलकुल स्वास्थ्यकर नहीं। बुखार-बुखार और पेट की बीमारी लगी ही रहती हैं। लेकिन रेशम का कारोबार खूब जमा हुआ है। कासिम बाज़ार के चारों ओर शहतूत के पेड़ों की खेती होती है। रेशम के कीड़ों का खाद्य हैं शहतूत के नर्म पत्ते। इधर के रेशम का रंग पीला होता है, लेकिन व्यवसायी लोग केले के छिलके की राख से फींचकर रेशम को साफ़ करते हैं। रेशम के लोभ से इन दिनों विदेशी व्यापारियों की आवाजाई से कासिम बाज़ार में ख़ासी सरगरमी रहती है। डच, फ्रांसीसी, अँगरेज़। इंगलैंड की राइट ऑनरेबुल ईस्ट इंडिया कंपनी ने फैक्टरी खड़ी की है, कोठी, गोदाम, कर्मचारियों के आवास, नाव-घाट, बगीचा भी। पक्के मकान विरले ही हैं। फूस की छौनीवाले कच्चे घरों में ही उन लोगों का कारोबार है। व्यवसाय के लिए विभिन्न देशों की विभिन्न जाति के लोग यहाँ जुटते हैं। बड़े-बड़े नाव-बजरे

घाट पर आकर लगते हैं। माल चढ़ता-उतरता है। नेटिव बनिए, दलाल, तगादेदार, पोद्दारों की भीड़ है। बादशाह के दीवान कर की वसूली के लिए बार-बार कर्मचारियों को भेजते हैं। फिर भी हिंदुस्तान की एक निहायत मामूली मंडी है कासिम बाज़ार, जहाँ की नयी अँगरेज़ी कोठी का चौथा अफ़सर है जॉब चार्नक; बीस पौंड वार्षिक वेतन है उसका। ऑनरेबुल ईस्ट इंडिया कंपनी के डाइरेक्टरों से कुछ जान-पहचान थी, इसीलिए पाँच साल के इक़रारनामे पर वह आज चौथे अफ़सर के ऊँचे ओहदे पर विराज रहा है। उसके मातहत अनेक स्तर के अँगरेज़ कर्मचारी हैं—एप्रेंटिस, राइटर, कारिन्दे, मर्चेंट, सीनियर मर्चेंट। इनका वेतन और भी कम है।

लेकिन उनका लोभ और भी ज्यादा है। यह जो राइटर रिचर्ड पिटमैन है, जिससे जॉब चार्नक ने कुछ परिचय कर लिया है, सुना जाता है, इसी बीच काले गुमाश्तों से साँठ-गाँठ करके उसने अच्छा कमा लिया है। तीसरे अफ़सर मिस्टर जॉन प्रिड्डी के जिम्मे रेशम का गोदामघर है—फूस की छौनी वाला मिट्टी का सुरक्षित घर। वहाँ सिल्क की गांठों की क़तारें छत को छूती हैं। उस रोज़ जाने किस वजह से मिस्टर प्रिड्डी गोदाम नहीं जा सके। उसने बनियों के साथ जाकर सिल्क की नयी आयी हुई गाँठों को सहेज आने का भार पिटमैन को सौंपा। वह गया। बाद में जब हिसाब मिलाया गया तो एक गाँठ कम थी। दो गांठों में घटिया रंग का रेशम था। चीफ़ आयन केन साहब तो बेहिसाब बिगड़े, पिटमैन पर

कैसा एक नियम में बँधा जीवन ! नियम से उठो-बैठो। नियम के मुताबिक़ खाओ और सोओ। मौज-मज़े के लिए मधुशाला की शीराज़ी शराब और खींची हुई पंच पीयो। बहुत हुआ तो डच पड़ोसियों के साथ खाना-पीना। आसपास कहीं शिकार खेलने जाओ। बाहर जाना हो तो अर्दली को साथ लेकर जाना होगा, नहीं तो कंपनी के अफ़सरों और ख़ुद कंपनी की मानहानि होगी।

हाँ, नियम-क़ानून जितना कड़ा होता है, उन्हें तोड़ना उतना ही सहज। तरुण जॉब चार्नक नियम के पालन में, और पिटमैन नियम तोड़ने में व्यस्त है।

'तुम्हें नौकरी जाने का ख़ौफ़ नहीं ?' जॉब चार्नक ने कहा।

'हुं: इस नौकरी का मोह !' पिटमैन ने बेझिझक कहा, 'सिर्फ़ ऊपरी पावने के लोभ से ही तो नौकरी कर रहा हूँ। नौकरी जायेगी तो इंटर-पोलरों के दल में जुट जाऊँगा। हमारे जैसा जानकार मिले तो वे साग्रह स्वीकार कर लेंगे।'

इंटरपोलर लोग हैं तो अँगरेज ही, मगर कंपनी के बड़े दुश्मन हैं। एकाधिकार वाले व्यापार में दरार डालने के लिए वे अपने जहाज से सात समंदर पार हिंदुस्तान में आकर हाज़िर होते हैं। नेटिवों से सीधे सौदा करते हैं, ज़्यादा दाम देकर माल ख़रीदते हैं, बनियों को लुभाते हैं। इनकी इस होड़ के चलते ईस्ट इंडिया कंपनी के डाइरेक्टरों की रात की नींद हराम है। वे राजाओं की कितनी आरज़ू-मिन्नत करते हैं, नवाबों की ख़ुशामद करते हैं कि आफ़त के इन परकालों को हिंदुस्तान की चौहद्दी में

'तुम निरे नाबालिग़ हो,' पिटमैन ने कहा, 'बालिग़ होते तो ऊपरवाले अधिकारियों की तरह इंटरपोलरों से कारोबार करते।'

'झूठ! यह हरगिज़ नहीं हो सकता,' जॉब चार्नक ने प्रतिवाद 'ऊपरवाले कंपनी के दुश्मनों को कभी बरदाश्त नहीं कर सकते, का तो दूर की बात।'

'तुम जानते ही कितना हो, जॉब? जैसे-जैसे दिन बीतेंगे, अनुभव होगा, स्वयं देखोगे। देखोगे और सीखोगे। और अगर म तो समय रहते कारोबार सँवार लोगे,' पिटमैन ने समझदार की कहा।

'झूठा प्रलोभन दे रहे हो, डिक्,' चार्नक ने कहा, 'बिलकुल प्रलोभन।'

शीराज़ी का नशा तेज़ हो आया। उस दिन उन देसी औरतों ने चार्नक की हँसी उड़ाई थी—वह साहब नहीं, मेम है। इलियट ने था—आप मर्द हैं न! आज पिटमैन कह रहा है—मर्द होगे तो कारो सँवार लोगे। जॉब चार्नक सोचने लगा—ये शैतान के अनुचर हैं। बुरे रास्ते का प्रलोभन दिखाते हैं। रूप और रुपये का प्रलोभन। मैं जॉब चार्नक हूँ, मैं कुपथ पर नहीं जाऊँगा। मालिक की नमकहर मैं नहीं करूँगा, बेईमानी मैं नहीं करूँगा। रूप और रुपये के फंदे में नहीं डालूँगा। मैं जॉब चार्नक हूँ, इतना छोटा मैं नहीं हो सकता। एक महत्वाकांक्षा है। मालिकों को खुश करूँगा। अच्छे रास्ते से कमाऊँगा। पाँच साल का समझौता पूरा हो जाने पर घर लौट जाऊँग किसी रूथ या जेनी से ब्याह करके लंदन में, सम्मान के साथ ज़िंदगी बस करूँगा। मैं प्रलोभन में नहीं पड़ूँगा, हरगिज़ नहीं।

गंगा की गोद में मंथर गति से चला जा रहा है वरशिपफुल मिस्टर चेंबर लेन का बजरा। मज़बूत, मँझोले आकार का, कई चमकीले रंगों से चित्रित फ़रवरी की हिमशीतल बयार में मस्तूल के ऊपर का रंगीन पाल फूल-फूल उठता है। मल्लाह डाँड़ खे रहे हैं।

पटना की कोठी के चीफ़ चैंबरलेन साहब जॉब चार्नक को पसंद करते हैं। बेचारा कैसा उदास-मायूस रहता है! इसीलिए वह उसे अपने साथ पटना लिये जा रहे हैं। कासिम बाजार की रुँधी हवा से जॉब चार्नक को छुटकारा मिला। देश-भ्रमण और अभिज्ञता। उम्र कम है उसकी। हिंदुस्तान को जानना चाहिए, देखना चाहिए, नेटिवों से मिलना-जुलना चाहिए; तभी वह व्यवसाय के गुप्त मंत्र का अधिकारी होगा, धूर्त नेटिवों की टेढ़ी चालों को समझ सकेगा। चलो, पटना चलो।

साल्ट पीटर की आढ़त है पटना में। यहाँ शोरे से बारूद बनता है। जिस देश का बारूद जितना अच्छा है, वह देश उतना ही बलशाली है। यूरोप में लड़ाई तो लगी ही रहती है। यहाँ तक कि मुल्क में भी। इसलिए शोरे की माँग दिनों-दिन बढ़ रही है। ऑनरेबुल कंपनी बराबर तकाज़े करती है, शोरा भेजो—'इंडियामैन' जहाज भरकर शोरा भेजो। टटका, सूखा, ज़ोरदार बारूद जल-थल में अँगरेज़ों की ताक़त बढ़ाएगा। पटना का शोरा सूरत के इलाके के शोरे से उम्दा क़िस्म का है, इसलिए शोरे की अच्छी

बारूद की बू और धुआँ। बत्तखों पर हेनरी ऑल्डवर्थ ने बंदूक छोड़ी थी। बत्तखें ऊँचाई पर थीं। एक भी बत्तख को गोली नहीं लगी। हेनरी बत्तख के बाप को गाली-गलौज देने लगा।

हेनरी ऑल्डवर्थ कारिंदा है। वह भी चेंबरलेन के बजरे का यात्री है। राजमहल में उतरेगा। अँगरेज़ों के लाये सोना-चाँदी से राजमहल में मुग़ल बादशाह की टकसाल में मुहरें-सिक्के बनते हैं। उसी का हिसाब-किताब रखने के लिए हेनरी यहाँ आ रहा है।

'देखो, देखो, जॉब !' हेनरी अचानक चीख उठा।

'क्या ?'

'कृष्ण मत्स्य-कन्याओं का झुंड। वाह ! ब्रेवो !'

गंगा के किनारे गाँव का घाट। गाँव की स्त्रियाँ नहा रही हैं। कोई तैर रही है, कोई डुबकी लगा रही है, कोई पीतल की चमकती कलसी लिये पानी से खेल रही है। बच्चे भी हैं।

बजरे के क़रीब आ जाने पर स्त्रियाँ साफ़ दिखाई देने लगीं। गंगा के मटियाले जल में काला रूप मानो चमक उठा है। विचित्र विदेशी बजरे की ओर स्त्रियाँ कौतूहल से ताकने लगीं।

हेनरी ऑल्डवर्थ ने कहा, 'ये जेंटू[1] स्त्रियाँ हैं। मूर औरतों की तरह उनमें बुरक़े का झंझट नहीं है। दिन की रोशनी में ये निस्संकोच पुरुषों के सामने निकलती हैं।'

नहाते हुए एक पुरुष ने मल्लाहों से कुछ पूछा।

मल्लाहों ने चिल्लाकर जवाब दिया, 'अँगरेज़, अँगरेज़।'

नहाने वालों में हलचल-सी हुई। वे आपस में बातें करने लगे। फिरंगी, फिरंगी—जॉब चार्नक को इतना ही सुनाई पड़ा।

जॉब ने जेंटू प्रथा से सर को झुकाकर, हाथ जोड़ कर उन्हें प्रणाम किया। नहाती हुई स्त्रियाँ कौतुक से कल-कल कर उठीं। दो-एक ने पानी में खड़े-खड़े ही हाथ जोड़कर प्रति-नमस्कार किया। एक युवती के होंठों पर मुस्कराहट खेल गयी। उसकी नज़र जॉब चार्नक की नज़र से मिली।

---

१. अंगरेज उस काल में 'जेंटू' शब्द का प्रयोग हिन्दुओं के लिए करते थे। इसकी व्युत्पत्ति कभी पुर्तगालियों द्वारा ठीक ढंग से 'हिन्दू' न उच्चारण कर पाने में है।

पटना की कोठी के चीफ़ चेंबरलेन साहब जॉब चार्नक को पसंद करते हैं। बेचारा कैसा उदास-मायूस रहता है! इसीलिए वह उसे अपने साथ पटना लिये जा रहे हैं। कासिम बाज़ार की रुँधी हवा से जॉब चार्नक को छुटकारा मिला। देश-भ्रमण और अभिज्ञता। उम्र कम है उसकी। हिंदुस्तान को जानना चाहिए, देखना चाहिए, नेटिवों से मिलना-जुलना चाहिए; तभी वह व्यवसाय के गुप्त मंत्र का अधिकारी होगा, धूर्त नेटिवों की टेढ़ी चालों को समझ सकेगा। चलो, पटना चलो।

साल्ट पीटर की आढ़त है पटना में। यहाँ शोरे से बारूद बनता है। जिस देश का बारूद जितना अच्छा है, वह देश उतना ही बलशाली है। यूरोप में लड़ाई तो लगी ही रहती है। यहाँ तक कि मुल्क में भी। इसलिए शोरे की माँग दिनों-दिन बढ़ रही है। ऑनरेबुल कंपनी बराबर तकाज़े करती है, शोरा भेजो—'इंडियामैन' जहाज भरकर शोरा भेजो। टटका, सूखा, ज़ोरदार बारूद जल-थल में अँगरेज़ों की ताक़त बढ़ाएगा। पटना का शोरा सूरत के इलाके के शोरे से उम्दा क़िस्म का है, इसलिए शोरे की अच्छी जानकारी हासिल करनी होगी।

मद्रास के फ़ोर्ट सेंट जार्ज से भी हुक्म आया है। मिस्टर जॉब चार्नक की बदली पटना हुई। उससे आग्रह किया गया कि वह साल्ट पीटर के बारे में तथ्य संग्रह करे। साल्ट पीटर के गुण और विशेषता की अभिज्ञता प्राप्त करने का व्रत ले।

जॉब मिस्टर चेंबरलेन के बजरे की छत पर बैठा है। बजरा धीरे-धीरे राजमहल की ओर बढ़ रहा है—राजमहल, मुंगेर, पटना।

नाव का यह अभियान अच्छा लग रहा है। फ़रवरी की सरदी। बहुत ही मनोरम आबो-हवा। नीले आसमान पर साफ़-सुनहली धूप। इतनी रोशनी, ऐसी नीलिमा शायद लंदन के आसमान में नहीं होती।

बत्तखों का झुंड उड़ा जा रहा था। कभी माला जैसा, कभी तीर की तरह। कितने विचित्र आकार! किस अजानी जगह से उड़कर आ रही हैं वे, किस अजानी जगह को जायेंगी, कौन जाने! नीले आकाश में बत्तखों की पाँत का खेल देखने में अच्छा लग रहा था।

धाँय! कान के पास बंदूक की गरज। जॉब चार्नक चौंक उठा।

बारूद की बू और धुआँ। बत्तखों पर हेनरी ऑल्डवर्थ ने बंदूक छोड़ी थी। बत्तखें ऊँचाई पर थीं। एक भी बत्तख को गोली नहीं लगी। हेनरी बत्तख के बाप को गाली-गलौज देने लगा।

हेनरी ऑल्डवर्थ कारिंदा है। वह भी चेंबरलेन के बजरे का यात्री है। राजमहल में उतरेगा। अँगरेज़ों के लाये सोना-चाँदी से राजमहल में मुग़ल बादशाह की टकसाल में मुहरें-सिक्के बनते हैं। उसी का हिसाब-किताब रखने के लिए हेनरी यहाँ आ रहा है।

'देखो, देखो, जॉब !' हेनरी अचानक चीख उठा।

'क्या ?'

'कृष्ण मत्स्य-कन्याओं का झुंड। वाह ! ब्रेवो !'

गंगा के किनारे गाँव का घाट। गाँव की स्त्रियाँ नहा रही हैं। कोई तैर रही है, कोई डुबकी लगा रही है, कोई पीतल की चमकती कलसी लिये पानी से खेल रही है। बच्चे भी हैं।

बजरे के क़रीब आ जाने पर स्त्रियाँ साफ़ दिखाई देने लगीं। गंगा के मटियाले जल में काला रूप मानो चमक उठा है। विचित्र विदेशी बजरे की ओर स्त्रियाँ कौतूहल से ताकने लगीं।

हेनरी ऑल्डवर्थ ने कहा, 'ये जेंटू[1] स्त्रियाँ हैं। मूर औरतों की तरह इनमें बुरक़े का झंझट नहीं है। दिन की रोशनी में ये निस्संकोच पुरुषों के सामने निकलती हैं।'

नहाते हुए एक पुरुष ने मल्लाहों से कुछ पूछा।

मल्लाहों ने चिल्लाकर जवाब दिया, 'अँगरेज़, अँगरेज़।'

नहाने वालों में हलचल-सी हुई। वे आपस में बातें करने लगे। फिरंगी, फिरंगी—जॉब चार्नक को इतना ही सुनाई पड़ा।

जॉब ने जेंटू प्रथा से सर को झुकाकर, हाथ जोड़ कर उन्हें प्रणाम किया। नहाती हुई स्त्रियाँ कौतुक से कल-कल कर उठीं। दो-एक ने पानी में खड़े-खड़े ही हाथ जोड़कर प्रति-नमस्कार किया। एक युवती के होंठों पर मुस्कराहट खेल गयी। उसकी नज़र जॉब चार्नक की नज़र से मिली।

---

१. अंगरेज उस काल में 'जेंटू' शब्द का प्रयोग हिन्दुओं के लिए करते थे। इसकी व्युत्पत्ति कभी पुर्तगालियों द्वारा ठीक ढंग से 'हिन्दू' न उच्चारण कर पाने में है।

उस हँसी से चार्नक को बेचैनी-सी हुई। युवती उसे मेम समझ रही है? उस दिन की मूर स्त्रियों की हँसी भी चार्नक को याद आयी। बुरक़े के अंदर प्रेतनी जैसी। जालियों के सूराखों से आँखें मानो व्यंग्य कर रही थीं। मगर आज की इस जेंटू-स्त्री की काली और बड़ी-बड़ी आँखों में कोई व्यंग्य नहीं है, बल्कि स्निग्ध सहृदय दृष्टि है। नदी की बाँक में बजरा जब तक ओझल नहीं हो गया, जॉब चार्नक ने मुग्ध आँखों तब तक उस दृष्टि के लालित्य का उपभोग किया।

फिर भी सर के लंबे बाल भारी-से लगने लगे। इन बालों की वजह से सच ही क्या वह ज़नाना-सा लगता है? चाँदी की झालर वाला कोट भी इस गरम देश में कष्टदायक है। लगता है, नेटिवों की वेश-भूषा ही यहाँ की आबो-हवा के अनुकूल है।

बजरे के कमरे में मिस्टर चेंबरलेन की नींद टूट गयी थी ऑल्डवर्थ की बंदूक की आवाज़ से। उन्होंने आवाज़ दी, 'जॉब चार्नक!'

'जी, सर!' जॉब बजरे की छत से कमरे में उतर आया। ख़ासा बड़ा सजा-सजाया कमरा। झिलमिली वाले चार-एक झरोखे। झरोखे से हाथ बढ़ाने से नदी का पानी छुआ जा सकता है। छलछलाता पानी हाथ में लगता है, सिहरन होती है हाथ में।

'जॉब, बंदूक किसने छोड़ी?'

'हेनरी ने। बत्तख का शिकार करना चाहा था। कामयाब नहीं हुआ।'

'ग़नीमत है, किसी नेटिव का शिकार नहीं किया। हेनरी को समझना चाहिए, बंगाल में हम लोगों ने नया-नया व्यवसाय शुरू किया है, हमें बड़ी होशियारी से चलना चाहिए। यदि कोई ऐसी-वैसी वारदात हो जाये, तो मौक़ा पाकर ये नेटिव लोग हमें देश से निकाल बाहर करेंगे।'

'मैं हेनरी को सावधान कर दूंगा।'

'मुझे भी। पटना चलो। गंडक के किनारे सिंगिया में हमारी फैक्टरी है। शोरे की आढ़त। खूब तरक्की होगी। तुम जैसे विश्वासी कर्मचारी की बड़ी ज़रूरत है। मैं मद्रास चिट्ठी लिखता हूँ, लंदन में डाइरेक्टरों के पास भी तुम्हारा ज़िक्र करते हुए मैंने लिखा है।'

'मैं सदा आपका एहसानमंद रहूँगा,' चार्नक ने कहा, 'लेकिन सर, पाँच साल की मियाद पूरी होते ही मैं मुल्क लौट जाऊँगा।'

'घर के लिए मन मचलता है ?' उसकी पीठ ठोंककर चेंबरलेन ने कहा, 'ऐसा होता ही है। इस देश को देखो, इसे जानो। इस देश से तुम्हें मोह हो जायेगा। जितना बड़ा है, वैसा ही विचित्र है यह देश। जानते हो जॉब, मुझे लगता है, हम अँगरेज़ों का भविष्य इससे जुड़ा हुआ है। हम तुम जैसे नौजवानों को चाहते हैं।'

तब तक हेनरी ऑल्डवर्थ उतर आया था। वह बो॰
गया है, आपका प्याला ख़ाली है क्या ?'

आपको राजा बनाये।'

इस सोने के हिंदुस्तान में इतने भिखारी ! हड्डियों के ढाँचे-से, आबाल-वृद्ध-वनिता। गढ़ों में धँसी आँखों में भूख, शीर्ण उंगलियों में आकुल प्रार्थना। एक कौड़ी की भीख मिलने पर वे आपस में छीना-झपटी करते हैं, जैसे एक टुकड़ा मांस के लिए राह के कुत्ते आपस में लड़ते हैं।

चार्नक हैरान रह गया ! प्राचुर्य का देश है यह हिंदुस्तान—उसका भी शिरोमणि बंगाल, जिसकी धन-दौलत, विलास-व्यसन की कथा-कहानी यूरोपियों की जबान पर है, जिसका मसाला, मसलिन, रेशम, शोरा सात समंदर पार के वणिकों की तक़दीर पलट देता है—उसी देश में टिड्डियों जितने भिखमंगे !

किसी तरह से उन भिखमंगों से जान बचाकर अँगरेज़ वणिक बाज़ार में पहुँचे। बाज़ार कहाँ ! जहाँ पण्य-संभार से समृद्ध बाज़ार था, वहाँ सिर्फ़ जली लकड़ियों का, बाँसों और राख का अंबार लगा है। कुछ दिन पहले अग्निकांड हुआ है शायद। बुझाने की लाख कोशिशों के बावजूद आग की लपलपाती लपट ने बाज़ार को लील लिया। हवा की अनुकूलता से फूस के छप्पर धू-धू कर जल उठे। खाद्य-वस्त्र-संभार राख की ढेरी हो गये। अकाल और बढ़ गया। नवाब सरकार भी इस समय परेशान है। ऐसे में इन अभागों को फिर से बसाने की कोशिश कौन करे ?

राजमहल के कर्मचारी ने देश के मौजूदा हालात का विस्तार से ब्यौरा दिया। मुग़ल बादशाह शाहजहाँ बीमार है। दिल्ली की गद्दी के लिए भाइयों में खूनी लड़ाई छिड़ गयी है। सल्तनत का क्या हाल होगा, कहा नहीं जा सकता। बादशाह के दूसरे बेटे सुलतान शुजा ने इसी राज-महल में अपने को बादशाह ऐलान कर दिया और फौज लेकर दौड़ पड़ा आगरा की ओर। बादशाहज़ादा दारा शिकोह के बेटे सुलेमान और राजा जयसिंह ने वाराणसी में उसका मुक़ाबला किया, धन-दौलत सब छीन ली। शुजा नाव से किसी प्रकार पटना भाग आया, वहाँ से मुंगेर। चाचा का कुछ दिन तक अवरोध करके सुलेमान ने पंजाब के लिए कूच किया। शुजा नये उत्साह से फौज लेकर दिल्ली की ओर दौड़ा। इलाहाबाद पार होते न होते औरंगज़ेब की विशाल सेना ने बाधा उत्पन्न की। खजुवा की लड़ाई

खाकर शुजा ने बंगाल में डेरा डाला। तब तक दिल्ली की गद्दी
ज़ेब ने कब्ज़ा कर लिया। अपने बूढ़े बाप को उसने आगरा में
या। शुजा की हालत संगीन हो गयी।

शुजा एक निहायत अच्छा आदमी है। अँगरेज़ों पर बड़ी कृपा
क्यों न कृपा? आख़िर एहसान का तो ख़याल है। एक बार
री बहन जहाँआरा के कपड़ों में आग लग गयी। आग ज़ोरों
ठी। वह लहकती लपट पागल-सी लपकी। बड़ी कठिनाई से
बुझी तो शाहज़ादी मरणासन्न! आगरा के हकीम-वैद्यों ने
दिया। बचने की कोई आशा नहीं रही। सूरत ख़बर गयी।
जहाज़ के अँगरेज़ सर्जन ग्रेब्रिएल बाउटन की बुलाहट हुई। सूरत
। उसके इलाज से शाहज़ादी चंगी हो गयी।

न शुजा बाउटन को ख़ुश होकर राजमहल ले आया। इनाम
ा। अँगरेज़ बाउटन ने अपने लिए कोई इनाम नहीं माँगा—
नी जाति के लिए एक चिह्न माँगा—व्यापार करने की सुविधा,
लस्वरूप मात्र तीन हज़ार रुपये सालाना देकर अँगरेज़ों को
ंगाल में बेरोक व्यापार करने की छूट मिल गयी। यह सुलतान
ही दान है। अहा, सुलतान शुजा जयी हो!

न मिट्टी की सड़कों पर घोड़े पर सवार हो जॉब चार्नक घूमता
थी हुआ ऑल्डवर्थ। राजमहल उदास था, सुलतान के महल में
हीं, फूलों का बाग़ सूना-सा। इस भ्रातृघाती संग्राम का अंतिम
क्या होगा? मुग़ल साम्राज्य का अनिश्चित भविष्य!

दोपहर का समय-असमय। फिर भी वह चार्नक को एक वेश्यालय में ले गया। विदेशियों की बड़ी ख़ातिर की गयी। रंगीन चोली और घाघरा, मलमल की ओढ़नी बाईजी की देह-सुषमा के रहस्य को बढ़ा रही थी। सुरमा आँजी आँखें, अलता रँगे गाल और मेंहदी लगे हाथ-पाँव जी को चुराते थे। सारंगी में कोई करुण सुर बज रहा था। तबले पर ठेका पड़ रहा था और वह गा रही थी जिसका अर्थ चार्नक की समझ में ख़ाक नहीं आ रहा था। फिर भी तान-लय-सुर भा रहा था। सुर में कैसा तो एक अलस एकांगीपन था !

बाईजी नाचने लगी। घुंघरू के बोल। घाघरे को एक हाथ से उठाकर वह घूम-घूमकर नाचने लगी। घाघरे के नीचे सफ़ेद पायजामे के अंदर से आजानु-पदयुगल दीख रहे थे। बाईजी आत्मनिवेदन करने लगी, नाच की ताल पर उसकी छाती स्पंदित होने लगी। उसके नाच के साथ-साथ चार्नक का तरुण रक्त नाच उठा। उसके कलेजे में आदिम वासना उथल-पुथल मचाने लगी। उस नेटिव नृत्यनिरत नर्तकी को बाँहों में लपेट लेने, पीस डालने की इच्छा होने लगी।

ऑल्डवर्थ धीमे-धीमे हँस रहा था; बाईजी की ओर एकटक देख रहा था। नाचते-नाचते बाईजी ने हठात् ऑल्डवर्थ के गले को बाँहों में लपेट लिया। घुंघरू की आवाज़ ख़ामोश हो गयी। आल्डवर्थ ने चुंबन से बाईजी के होठों को भर दिया। बाईजी उसके गले से बाँहें हटाकर फिर नाचने लगी। आँखों में लोल कटाक्ष।

चार्नक उत्सुक हो उठा। सोचा, अब शायद उसकी बारी है। अबकी नर्तकी उसका आलिंगन करेगी। उसकी छाती की धड़कन तेज़ हो गयी।

नाच थम गया। लेकिन चार्नक की आशा पर पानी फिर गया। उसके पौरुष को ठेस लगी। ईर्ष्या से उसका मन भर गया। वह ऑल्डवर्थ से किस बात में हेय है ? नाचनेवाली ने उसकी उपेक्षा क्यों की ? उस विलास-कक्ष के आईने में उसके कंधे तक लटकते सुनहले केश और चाँदी की झालर वाले कोट की परछाईं दिखाई दी। सचमुच, उसका चेहरा बहुत जनाना लग रहा है ! पौरुष की तंद्रा टूट गयी।

कोठी में लौट आया। कोई भी बात न की। हज्जाम को बुलवाया

और बेरहम होकर अपने लंबे सुनहले बालों को कटवा डाला।

कच-कच करके कैंची चली। हज्जाम ने मुग़लाना फ़ैशन में बाल छाँटे। सुनहले बाल धूल में लोटने लगे, उसके साथ शायद उसकी रमणी-सुलभ कोमलता भी।

दोपहर के भोजन के बाद ऑल्डवर्थ ने चार्नक को एक चिट्ठी पढ़ने के लिए दी। चार्नक ने पढ़ा—

राजमहल
फ़रवरी, १६५८

'मिस्टर टॉमस डेविस तथा माननीय बंधु,

कल यहाँ पहुँचा हूँ। देखा, बाज़ार लगभग खाक हो गया है और खाद्य की कमी से बहुतेरे लोग भूखों मर रहे हैं। मिस्टर चार्नक मेरे लिए विशेष दुख का कारण हुआ है, मगर उतना नहीं, जितना तुम्हें साथ नहीं पाने से। तुम्हें हमलोग (और कोई अच्छी शराब नहीं मिलने से) पंच के पात्र के साथ प्राय: याद करते हैं। मिस्टर चेंबरलेन और मिस्टर चार्नक कल पटना रवाना होंगे, जल्दी जाने के लिए मिस्टर चार्नक अभी अपने बाल कटवा रहा है। उसकी इच्छा है कि आज से ही वह मूरों की पोशाक पहने। पुराने की यादगार रखने के लिए उसके केशों का एक गुच्छा आपको भेजने का इरादा था, पर मिस्टर चार्नक ने खुद ही यह काम करने का वायदा किया है...।'

चार्नक ने आगे नहीं पढ़ा। जान में जान आयी; हेनरी ऑल्डवर्थ बाल कटाने का असली इतिहास नहीं जानता। कंबख़्त नाई ने मुग़लाना फ़ैशन अच्छा बना दिया है। आईने में अपना चेहरा अब ख़ासा बजनी लग रहा था। बाल कटाने के बाद चार्नक शहर के दर्जी-टोले में घूमा। एक अच्छे दर्जी से उसने मुसलमानी पोशाक ली। उसे पहनकर वह अपने आपको ही नहीं

पटना में मकानों की बड़ी कमी है। शहरी क्षेत्र में कोई फैक्टरी नहीं बनवाई जा सकी। फूस की छौनी वाले किराए के एक कच्चे मकान में किसी तरह कारोबार चलता है। एक अच्छा कारखाना था। कई साल पहले शहर में आग लगी। ढेरों मकान जल गये। नवाब ने जोर-जबर्दस्ती अँगरेज़ों के कारखाने पर दख़ल कर लिया।

पटना शहर से प्राय: पंद्रह मील उत्तर सिंगिया में चौकी बनायी है अँगरेज़ों ने। गंडक के बाएँ तट पर शोरे की यह आढ़त। स्वास्थ्यकर जगह तो ख़ैर बिलकुल नहीं है, लेकिन हाँ, पटने के नवाब और उनके कर्मचारियों का ज़ुल्म यहाँ कम है। इसलिए पटना-कोठी के चीफ़ आमतौर से यहीं रहते हैं।

चार्नक शोरे की पहचान सीखने में जुट पड़ा। मोटा-बारीक कितने ही तो प्रकार का शोरा है!

व्यापारी नाव की नाव शोरा लादकर ले आते। वज़न करने से पहले उसे अच्छी तरह से सुखा लिया जाता, नहीं तो वज़न का नुक़सान होता है। महीन शोरे का दाम ज़्यादा है। और फिर शोरे को गोदाम में ज़्यादा दिनों तक डालकर रखा भी नहीं जा सकता। बोराबंदी करके फटाफट चालान किया जाता है। शोरे से लदी नावों का क़ाफ़िला हुगली जाता है। वहाँ उसकी जहाज़ पर लदाई होती है, फिर सात समंदर पार इंग्लैंड जाता है। वहाँ बिहार के शोरे की माँग ज़्यादा है। ऑनरेबुल कंपनी के डाइरेक्टर लगातार चिट्ठियाँ भेजते रहते हैं, शोरा भेजो, शोरा भेजो। शोरे की माँग पूरी करते-करते पटना-कोठी के कर्मचारी बहुत परेशान हैं।

चुन-चुनकर महीन शोरे की पंद्रह बड़ी-बड़ी नावें चार्नक ने लदवा कर तैयार करायी थीं। वे नावें नदी से हुगली के लिए रवाना की गयीं। ख़बर आयी कि पटना की चौकी पर नवाब के कारिंदों ने नावों को रोक लिया है। वजह बहुत ही सहज थी—कर दो, भेंट दो। नक़द दो हज़ार सिक्के हाज़िर करो तो नावों को जाने दिया जायेगा। ख़ुद सुल्तान शुजा की दी हुई निशानी है, उसी ने बेरोक व्यापार की छूट दी है। यह क्या अड़ंगा है? उसी के बल पर सिंगिया कोठी का यह परवाना है, जिसे

दिखाकर शोरा-लदी नावें बेरोक-टोक हुगली जायेंगी। अरे, रखो अपनी निशानी। शुजा खुद ही उलट रहा है, तो क़ीमत क्या है उसकी निशानी की ? जान बचाने के लिए शुजा ने पूर्वबंगाल के जहाँगीरनगर—यानी ढाका में पनाह ली है, पटना में उसकी निशानी नहीं चलेगी। यदि अबुल मुज़फ़्फ़र मोहिउद्दीन मुहम्मद औरंगजेब बहादुर आलमगीर बादशाहे-ग़ाज़ी का फ़र्मान ला सको, तभी नावें छोड़ी जायेंगी।

दुभाषिए को साथ लेकर चार्नक शोरे की नावों को छुड़ाने के लिए गया। उसे भी वही जवाब मिला। मारे गुस्से के चार्नक जल उठा, मगर निरुपाय था। बदन का ज़ोर इनके आगे बेकार है ! मुग़लों की अपार शक्ति के आगे चार्नक की शक्ति ही कितनी थी ? भेंट दिये बिना चारा नहीं। बख़्शी, दारोगा, मुतसद्दी, खासनवीस, मीर-बहर—सभी प्रभुओं को कुछ-कुछ सलामी देनी पड़ी—रंगीन कपड़ा, तलवार, बंदूक, पिस्तौल, आईना। बहुत-बहुत नज़राने। तब कहीं जाकर उन लोगों ने नावों को छोड़ा। फिर भी क्या चैन है ? बीच रास्ते में फिर किसी राजा-ज़मींदार की चौकी नावों को रोकेगी, कहीं डोंगियों से आकर डाकू धावा बोलेंगे और लूटेंगे। पूरी अराजकता। इसी हालत में व्यापार चलाना है।

शिवचरण सेठ अफ़सोस कर रहा था। कपड़े का व्यापारी है वह। कई पुश्तों का कारोबार। भागलपुरी कपड़ों का जोरदार व्यवसाय। अँगरेज़ी कोठी मे खूब लेन-देन है।

सेठ अफ़सोस कर रहा था, 'पूछिए मत चार्नक साहब, कारोबार अब समेटना पड़ेगा। कोपीन पहनकर संन्यासी बनने की नौबत है !'

'माजरा क्या है, सेठजी ?' चार्नक ने पूछा।

'अजी साहब, अकबर बादशाह की अमलदारी में जो हाल था, वह अब कहाँ ! सुना है, उस समय हिंदुओं का कैसा बोलबाला था ! जहाँगीर बादशाह भी अच्छा था। शाहजहाँ के वक़्त से ही हमारी बदहाली शुरू हुई। भागलपुर में शिवजी का एक मंदिर बनवा रहा था। हुक्म हुआ कि नया मंदिर बनाना बंद करो। बादशाह का हुक्म है, कोई हिंदू नया मंदिर

नहीं बना सकता।'

'और आपने बंद कर दिया, सेठजी ?'

'राम कहिए, वह पाप भला कर सकता हूँ ?'

'तो ?'

'हाज़िर कर दी कुछ भेंट, कुछ रुपया, कपड़ा। बस, फिर क्या था। सिर्फ़ कोतवाल ने ज़रा आँखें बंद कर लीं, धड़ाधड़ उठ खड़ा हुआ मंदिर। अरे, यह सिर्फ़ नज़राने का कारोबार है। समझे, चार्नक साहब ?'

'सुना है, नया बादशाह औरंगज़ेब कट्टर मुसलमान है, अब क्या नज़राना देकर पार पाओगे, सेठजी ?'

'उसी की तो फ़िक्र पड़ी है, साहब। हमारा क्या हाल होगा ? शिवजी ही जानें। नसीब की बात !'

'आप लोग नसीब को बहुत मानते हैं, सेठजी।'

'और क्या मानें, साहब ? नसीब के सिवा और है क्या, कहिए ! कारोबार में नफ़ा-नुक़सान, सब नसीब...!' शिवचरण तब असली बात पर उतरा, 'मुझे कुछ कर्ज़ दीजिए, साहब।'

'रुपया-सिक्का कहाँ से लाऊँगा ?'

'चीफ़ साहब आपको बहुत मानते हैं। आप कहिएगा तो काम बन जायेगा। मैं आपको खुश कर दूँगा। दस्तूरी दूँगा।'

'नहीं-नहीं, मुझे वह सब नहीं चाहिए।'

'नहीं चाहिए ? कह क्या रहे हैं, साहब ? आप निहायत बच्चे हैं। इस दुनिया में रुपया किसे नहीं चाहिए ? योगी-फ़क़ीर की बात जुदा है। और साहब, आप न योगी हैं, न फ़क़ीर। रुपये के प्रति आप उदासीन क्यों ?'

'ऑनरेबुल कंपनी को मैं नुक़सान नहीं पहुँचा सकता।'

'आपकी बात ! अजी, कंपनी को नुक़सान पहुँचाने को कौन कह रहा है आपको ? कंपनी कर्ज़ देती है, पेशगी देती है—ब्याज लेती है, माल लेती है। और आप, औरों को न देकर मुझे कर्ज़ दिलाइएगा। मैं ब्याज दूँगा, कपड़े दूँगा। बदले में आपको दस्तूरी मिलेगी। राज़ी ?'

'सोच लेने दीजिए।'

'ज़रा जल्दी करें। मुसलमान महाजनों ने बड़े ऊँचे सूद पर रुपया

उधार दिया है। मियाद पूरी होने से पहले ही माँग रहा है। क़ाज़ी के पास अर्ज़ी दी है। घूस लेकर क़ाज़ी मेरी सुन नहीं रहा है। सो, रुपये जल्द लौटाने हैं। आप उधार दिलवाइए, मैं आपको खुश कर दूँगा।'

चार्नक ने सेठ शिवचरण का आग्रह रखा। रखे भी क्यों नहीं ? महज़ बीस पौंड वार्षिक वेतन पर कितने दिन चल सकता है ? हाँ, कंपनी खाने-रहने की मुफ़्त व्यवस्था ज़रूर करती है। लेकिन ख्वाहिश-मुराद तो है ! पटना की सराय में तरह-तरह की शराब मिलती है—क़ीमत बहुत है। कई खूबसूरत मूर-पोशाकें देखी हैं उसने, पहनने पर उसे खूब फबेंगी। कम्बख्त दर्जी दाम बहुत माँग रहा है। उस दिन चार्नक बाज़ार से लौट रहा था तो सारंगी की आवाज़ और तबले की ठनक कानों में आयी। कोई बाईजी नाच-गा रही थी। चार्नक को बड़ी इच्छा हुई, जाकर नाच-गाना सुने। मगर टेंट में पैसा नदारद। उसने रास्ते से खड़े-खड़े ही सुना। कानों में धुन गूंजती रही और आँखों में नृत्य-चंचला नर्तकी की तसवीर उतर आयी।

सेठ शिवचरण ने मोटी दस्तूरी दी। सोने की मुहर की आवाज़ बड़ी मीठी होती है। पीली धातु की झकमक मुद्रा जेब में रहने से तबियत भी रंगीन हो उठती है। हाथ में रखे रहना अच्छा लगता है। चार्नक ने सोचा, बाईजी की मेंहदी रंगी हथेली पर मुहर रख देने से गर्व से छाती फूल उठेगी। चार्नक आखिर दस्तूरी क्यों न ले ? इससे ऑनरेबुल कंपनी का तो कोई नुक़सान नहीं होता।

लेकिन दस्तूरी के रुपये लेकर चार्नक दो रात सो नहीं सका। विवेक उसे बींधता रहा। उसे लगा, उसने मालिक के साथ विश्वासघात किया है। वह बेचैन हो उठा। कंपनी के रुपयों के लेन-देन का जो कमीशन है, वह तो कंपनी का ही पावना है। सो, दस्तूरी की मुहर उसे काँटे-सी गड़ती रही।

लेकिन वैसा कर नहीं सका। खयाल आया, यह पावना तो कंपनी
इसीलिए वह रक़म आपको सौंप देने को दौड़ा आया हूँ।'

'तुम्हारी इस ईमानदारी से मुझे बड़ी खुशी हुई, चार्नक। मग
पौंड वार्षिक वेतन से तुम्हारा चलेगा कैसे ?'

'न चले, मगर मैं नमकहरामी नहीं कर सकता।'

'खूब, खूब। दस्तूरी तो खैर तुम जमा कर दो, लेकिन कोई
कारोबार करो जिसमें कंपनी के किसी स्वार्थ को चोट न लगे। वह उ
नहीं होगा। मैं विश्वासी नेटिवों से तुम्हारा परिचय करा दूंगा। चा
कुछ पूँजी भी उधार दे सकता हूँ। तुम्हें ब्याज नहीं देना पड़ेगा।
सुविधा से चुका देना।'

मिस्टर चेंबरलेन की इजाज़त से चार्नक ने जनाब मोहिउद्दीन के
अपना व्यवसाय शुरू किया—इत्र का, तंबाकू का। जेब में कुछ मु
जमा होने लगा।

नया बादशाह आलमगीर कट्टर मुसलमान था। उसने हुक्म जारी कि
शराबखोरी बंद करो। गाँव-गाँव, नगर-नगर यह हुक्म पहुँचा। हुक्म
तामील किसने कितनी की, यह कहना कठिन है। लेकिन बादशाही हुक्म
बहाने कोतवाल का जुल्मोसितम बढ़ गया।

पटना शहर में उथल-पुथल मच गयी। खोजो-खोजो—कौन शर
बेचता है ? एक कुहराम-सा छा गया। हिंदू-मुसलमान जो भी हो,
पकड़ो। बादशाह के हुक्म की तामील में कोतवाल ने कुछ हिंदुओं, मु
मुसलमानों को पकड़ा। जुर्म यह कि वे शराब बेच रहे थे। पकड़े गये लो
ने उच्च स्वर में अपराध अस्वीकार किया। मगर कौन सुनता है किसकी
बीच बाजार में, खुली जगह में, चार्नक की नज़रों के सामने तेज़ तलवा
से क़ैदियों का एक-एक हाथ और एक-एक पैर काट दिया गया। लहू क
नदी बह चली। धूल से मिलकर लहू के ढेले बन गये। घायल क़ैदियों क
खींच-घसीटकर कूड़े की ढेरी, घूरे पर फेंक दिया गया। लहू बहते-बहते

बादशाह का नया हुक्म जारी हुआ—दाढ़ी छाँटो। कोई भी मुसलमान चार अंगुल से ज़्यादा बड़ी दाढ़ी नहीं रख सकता। छाँटो। छाती तक लटकती दाढ़ी, कितने बहारदार रंग, कितने जतन से पली। छाँटो उसे। बादशाह के कर्मचारी कैंची-उस्तरा लिये रास्तों पर निकले। दाढ़ी वालों को देखते और चार अंगुल दाढ़ी नापते। ज़्यादा लंबी हुई कि बस, कच्। उस्तरे से जबरन मूँछ मूड़ने लगे। शायद मूँछों के जंगल में अल्लाह का नाम अटक जाता है, उन तक नहीं पहुँच पाता। पूछिए मत, पटना की जो हालत हुई! चार्नक का अर्दली नूर मुहम्मद दाढ़ी गँवाने के डर से कई दिनों तक सड़कों पर निकला ही नहीं! मूँछ-दाढ़ी के मोह से मुसलमान लोग जेंटू औरतों की तरह घूँघट काढ़कर चलते।

अजीब देश है यह हिंदुस्तान। कितनी जातियाँ, कितने धर्म, कितने नियम, कितनी प्रथाएँ! दूसरे-दूसरे धर्मों जैसा ही ईसाई धर्म। इसकी कोई खासियत भी है, यह नेटिव लोग मानने को तैयार नहीं। जेंटू लोग तो बल्कि ईसाइयों से नफ़रत करते। सेठ शिवचरण, कारोबार के चलते चार्नक से इतना मिलता-जुलता है, फिर भी धर्म नष्ट होने के डर से चार्नक के हाथ का एक लोटा पानी तक नहीं पी सकता। बनिया है शिवचरण। इन जेंटुओं की कितनी जातियाँ हैं—ब्राह्मण, राजपूत, बनिया। मूर्तिपूजक। विचित्र देवी-देवता। चार्नक उन लोगों के धर्म के बारे में समझने की कोशिश करता। पेपिस्टों ने ज़बरदस्ती बहुतेरे जेंटुओं को ईसाई बनाया था। लेकिन सुनने में आता है, वे नये ईसाई लुक-छिपकर देवी-देवता की पूजा करते हैं। हिन्दुस्तान मे छुआछूत इतनी ज्यादा है कि मुसलमान तक ईसाइयों के साथ भोजन नहीं करते, ईसाइयों का छुआ नहीं खाते। और खाने-पीने में भी कितना विचार! जेंटू लोग गोमांस और मुसलमान सूअर का मांस नहीं छू सकते। जेंटुओं के पर्व-त्यौहार में और मूर लोगों में रमज़ान में महीने-भर दिन में उपवास होता है।

नाराज़ नहीं हुआ। क्योंकि संभव है कि कुछ दिनों में मैं आप ही अपना मत बदल लूँ। धर्म पर तर्क करने जैसी विद्या मुझमें नहीं है। मैंने बहुत बार सोचा है, तर्क को टाल जाना ही बुद्धिमानी है।...'

शिवचरण से चार्नक देवी-देवताओं की पुराण-कथाएँ सुनता। उसका अर्दली नूर मुहम्मद हसन-हुसैन, क़ाबा और करबला की कहानी कहता। बड़ी ही मनोहारी कहानियाँ। चार्नक तर्क नहीं करता, विचार नहीं करता, सिर्फ़ सुना करता। वह इन सब कथा-कहानियों को लिखा करता और बीच-बीच में राइट ऑनरेबुल कंपनी के डाइरेक्टरों को लिखकर भेज देता।

पटना-सिंगिया चार्नक को बहुत अच्छा लग रहा है। यहाँ कासिम बाज़ार की कोठी की तरह क़ायदे-क़ानून का वैसा बंधन नहीं है। लोगों से मिलने-जुलने की सुविधा ज़्यादा है। अब चार्नक अपने को काफ़ी अनुभवी समझता है। अपने पर उसे विश्वास बढ़ा है। देशी भाषा उसने बहुत-कुछ सीख ली है। यहाँ की राजनीति के बारे में कुछ-कुछ जानकारी हुई है। गरम मुल्क का पोशाक-पहनावा उसे खूब पसन्द है।

होली पर शिवचरण ने न्योता दिया। पटना के लोग खुशी में मस्त। बसंत की पूर्णिमा। होली का यह उमंग भरा त्यौहार कब से चला आ रहा है, कौन जाने। वृन्दावन में राधा-कृष्ण ने भी होली खेली थी। जेंटू लोग भी होली खेलते हैं। रंग-अबीर-गुलाल मल-मलकर औरत-मर्द दिन-भर उमगते हुए रास्तों में घूमते रहते हैं। गीत गाते हैं, नाचते हैं। उस समय उन लोगों में अमीर-ग़रीब का भेद नहीं रहता। शिवचरण चार्नक को खींच लाया।

चार्नक ने कहा, 'लेकिन मैं तो ईसाई हूँ।'

'ईसाई हुए तो क्या? मौज-मजे में हिंदू-ईसाई में भेद है क्या?'

चार्नक के कपाल पर अबीर लगा दिया। चार्नक ने भी नहीं छोड़ा। दौड़कर भागती हुई उस स्त्री के चेहरे और छाती पर अबीर लगाया उसने। इलियट का कहा याद आ गया उसे—फूलों-सी कोमल, रेशम-सी चिकनी ये स्त्रियाँ! चार्नक के सारे शरीर में सिहरन दौड़ गयी।

'अरे वाह-वाह!' शिवचरण ने कहा, 'मोतिया ने चार्नक साहब को खूब पसंद किया है।'

उस विचित्र रूपवाली स्त्री ने कहा, 'आज मुझे सब पसंद हैं, यहाँ तक कि तोंदवाले शिवचरण सेठ भी।'

उसने नाचना शुरू कर दिया। ढोलक की थाप पर घूम-घूमकर नाचने लगी। गीत की एक कड़ी गायी और भीड़ ने उसे दुहराया। रँगे माथे की पृष्ठभूमि में बड़ी-बड़ी आँखों ने मोहिनी माया की सृष्टि की। चंचल आँखों की वह चितवन थिरकते पाँवों से भी अधिक चंचल थी। फिर भी घूम-फिरकर उसकी आँखें चार्नक की आँखों पर पछाड़ खाने लगीं।

नेटिव स्त्रियों की आँखें चार्नक को बड़ी भली लगती हैं। काली-काली और बड़ी-बड़ी आँखें। गंगा के तट पर सूरज को प्रणाम करती हुई उस

नाराज़ नहीं हुआ। क्योंकि संभव है कि कुछ दिनों में मैं आप ही अपना मत बदल लूं। धर्म पर तर्क करने जैसी विद्या मुझमें नहीं है। मैंने बहुत बार सोचा है, तर्क को टाल जाना ही बुद्धिमानी है।...'

शिवचरण से चार्नक देवी-देवताओं की पुराण-कथाएँ सुनता। उसका अर्दली नूर मुहम्मद हसन-हुसैन, क़ाबा और करबला की कहानी कहता। बड़ी ही मनोहारी कहानियाँ। चार्नक तर्क नहीं करता, विचार नहीं करता, सिर्फ़ सुना करता। वह इन सब कथा-कहानियों को लिखा करता और बीच-बीच में राइट ऑनरेबुल कंपनी के डाइरेक्टरों को लिखकर भेज देता।

पटना-सिंगिया चार्नक को बहुत अच्छा लग रहा है। यहाँ कासिम बाज़ार की कोठी की तरह क़ायदे-क़ानून का वैसा बंधन नहीं है। लोगों से मिलने-जुलने की सुविधा ज़्यादा है। अब चार्नक अपने को काफ़ी अनुभवी समझता है। अपने पर उसे विश्वास बढ़ा है। देशी भाषा उसने बहुत-कुछ सीख ली है। यहाँ की राजनीति के बारे में कुछ-कुछ जानकारी हुई है। गरम मुल्क का पोशाक-पहनावा उसे खूब पसन्द है।

होली पर शिवचरण ने न्योता दिया। पटना के लोग खुशी में मस्त। वसंत की पूर्णिमा। होली का यह उमंग भरा त्यौहार कब से चला आ रहा है, कौन जाने! वृन्दावन में राधा-कृष्ण ने भी होली खेली थी। जेंटू लोग भी होली खेलते हैं। रंग-अबीर-गुलाल मल-मलकर औरत-मर्द दिन-भर उमगते हुए रास्तों में घूमते रहते हैं। गीत गाते हैं, नाचते हैं। उस समय उन लोगों में अमीर-ग़रीब का भेद नहीं रहता। शिवचरण चार्नक को खींच लाया।

चार्नक ने कहा, 'लेकिन मैं तो ईसाई हूँ।'

'ईसाई हुए तो क्या? मौज-मज़े में हिंदू-ईसाई में भेद है क्या?'

देशी पोशाक पहनकर चार्नक होली खेलने वालों के दल में जा जुटा। अबीर-गुलाल से लाल हो उठा वह। पीतल की पिचकारी से नेटिव लोग उसे पर रंग डालने लगे। स्त्रियाँ भी थीं। उल्लास की तरंग में सबने स्त्री-पुरुष के भेद को भुला दिया था। किसी एक विचित्र-सी औरत ने कोमल हाथों से

चार्नक के कपाल पर अबीर लगा दिया। चार्नक ने भी नहीं छोड़ा। दौड़कर भागती हुई उस स्त्री के चेहरे और छाती पर अबीर लगाया उसने। इलियट का कहा याद आ गया उसे—फूलों-सी कोमल, रेशम-सी चिकनी ये स्त्रियाँ! चार्नक के सारे शरीर में सिहरन दौड़ गयी।

'अरे वाह-वाह !' शिवचरण ने कहा, 'मोतिया ने चार्नक साहब को खूब पसंद किया है।'

उस विचित्र रूपवाली स्त्री ने कहा, 'आज मुझे सब पसंद हैं, यहाँ तक कि तोंदवाले शिवचरण सेठ भी।'

उसने नाचना शुरू कर दिया। ढोलक की थाप पर घूम-घूमकर नाचने लगी। गीत की एक कड़ी गायी और भीड़ ने उसे दुहराया। रँगे माथे की पृष्ठभूमि में बड़ी-बड़ी आँखों ने मोहिनी माया की सृष्टि की। चंचल आँखों की वह चितवन थिरकते पाँवों से भी अधिक चंचल थी। फिर भी घूम-फिरकर उसकी आँखें चार्नक की आँखों पर पछाड़ खाने लगीं।

नेटिव स्त्रियों की आँखें चार्नक को बड़ी भली लगती हैं। काली-काली और बड़ी-बड़ी आँखें। गंगा के तट पर सूरज को प्रणाम करती हुई उस जेंटू स्त्री की आँखों को वह अभी तक नहीं भूल सका है। सामने की अबीर से रँगी हुई स्त्री की नशीली आँखें चार्नक के मन पर छाप छोड़ रही थीं।

'कौन है यह मोतिया ?' चार्नक ने चुप-चुप शिवचरण से पूछा।

'हीरू कहार की बेटी है,' शिवचरण ने कहा, 'जिसकी ऐसी उठती जवानी है, बाप उसे घर में रख सकता है ? गुंडे उसे भगाकर पटना की रंडियों के मुहल्ले में ले आये। उसका दाम फ़ी घंटा केवल एक रुपया है।'

मामूली रंडी। महज़ एक सिक्के पर वह मिल सकती है, उसका उप-भोग किया जा सकता है। इतनी सस्ती है वह ! फिर भी फूलों-सी कोमल, रेशम जैसी चिकनी !

अचानक डंके की चोट से होली का गीत-नाच थम गया।

नवाबी फौज आ धमकी। बहुत-से घुड़सवार। दो हाथियों पर बंदूक-धारी सैनिक। माजरा क्या है ? काफ़िरों का इतना नाचना-गाना, मौज-मजा नहीं चल सकता—नवाब का हुक्म था। बादशाह औरंगज़ेब काफ़िरों की इतनी ज्यादती पसंद नहीं करता।

ने रोकना चाहा, उन्हें काट डाला गया और बाईजी के घरों में आग लगा दी गयी।

मोतिया जो पहने थी, बस उसी हालत में भाग आयी।

चार्नक पहले तो मोतिया को पहचान नहीं सका। पहचानता भी कैसे? उसने तो उस रोज़ उसे रंग-अबीर में डूबी अजीब सूरत में देखा था। आज वह अपने सही स्वरूप में, बग़ैर साज-सिंगार के हाज़िर थी।

साँवला शरीर। अंग-अंग में जवानी का निखार। बड़ी-बड़ी काली आँखें। सिर पर लंबी चोटी। सर्वांग में यौवन का माधुर्य। चार्नक को याद आया, फूलों-सी कोमल, रेशम-सी चिकनी। उसका बदन सिहर-सिहर उठा।

मोतिया ने ही चार्नक को पहचाना।

'जाओगी कहाँ?' चार्नक ने पूछा।

'जिधर दो आँखें ले जायेंगी।'

'अरे! अपने पिता के पास क्यों नहीं चली जातीं?'

'वह दरवाजा बंद है। हम नीची जात की हों चाहे, मगर बाप एक रंडी को अपने घर नहीं घुसने देगा। समाज है। बाप को जात से बाहर कर देगा।'

'तो फिर सेठ शिवचरण के पास?'

'उस तोंदू कंजूस के तीन बीवी हैं। ब्याह कर उन बीवियों को ही खाना नहीं देता। फिर...' मोतिया अचानक बोल उठी, 'साहब, तुम मुझे पनाह दोगे? मैं तुम्हारा कोई नुक़सान नहीं करूँगी। ख़रीदी हुई बाँदी की तरह तुम्हारी ख़िदमत करूँगी।'

'मैं...यानी...!' इस प्रस्ताव की आकस्मिकता से चार्नक घबरा गया।

'तुम अगर पनाह नहीं दोगे, तो उस रोज तुमने मेरी जान क्यों बचाई?' मोतिया के स्वर में उलाहना और आँखों में आँसू थे। 'अच्छा तो था, नवाब के हाथी के पैरों तले कुचलकर मर जाती, मांस के कुछ पिंड गिद्धों के काम आते। साहब, कहो, दोगे पनाह मुझे?'

किस झमेले में पड़ा चार्नक! एक नेटिव युवती। तमाम शरीर में जवानी की उमंग! वारनारी, किन्तु तेजस्विनी ओजमयी। एक मोहिनी

ग। मूर्तिपूजक ! डाकिनी ! मैं मर्द हूँ न ! अँगरेज़ शिवेलरी। शर-थनी के अंग-प्रत्यंग में यौवन। फूलों-सी कोमल, रेशम-सी चिकनी ! ख़िर जवानी की जीत हुई।

जॉब चार्नक ने मोतिया का हाथ थाम लिया। उद्भ्रांत की तरह ला, 'मोतिया, चलो, मेरे साथ चलो।'

-

ोतिया को आग्रह के साथ कह तो दिया, लेकिन चार्नक उसे रखे कहाँ ? टना के जिस सरकारी मकान में वह रहता है, वहाँ जगह नहीं होगी। ॉनरेबुल कंपनी की इजाज़त नहीं। लुक-छिपकर भी मुमकिन नहीं। दूसरे ंगरेज़ नेटिव औरत की मौजूदगी को बरदाश्त नहीं करेंगे। और कंपनी े मालिकों के कानों यह ख़बर पहुँचेगी तो क्या मुसीबत आयेगी, वही जाने। दूर देश में स्थानीय औरतों से मिलो-जुलो, मौज-मज़ा करो, वे इसे सुनकर भी अनसुनी कर जायेंगे। किन्तु कंपनी के डेरे में नेटिव औरत रहेगी, इससे मालिकों की बदनामी होगी। नेटिव लोगों के सामने हेठी होगी। असंभव है यह।

चार्नक तो अजीब आफ़त में पड़ गया।

किंतु मोतिया अत्यन्त उत्साहित हुई। वह मानो फिर से उमग उठी। गुनगुनाकर गाने लगी। बार-बार चार्नक की ओर ताकने लगी। उस निगाह में निर्भरता थी।

चार्नक को नूर मुहम्मद का ख़याल हो आया। अर्दली नूर मुहम्मद पटना इलाके का है। चार्नक का फ़रमाबरदार है। साहब उसे बख़्शीश देता है, शराब की तलछट देता है, बात करता है उससे, पीठ ठोंकता है। प्रौढ़ नूर मुहम्मद को इसीलिए साहब के प्रति भक्ति है।

'उसमें तो वक्त लगेगा,' चार्नक ने कहा, 'अभी इसे रखें कहा
'शेख हसन की सराय में,' नूर मुहम्मद ने कहा।

शहर के छोर पर शेख हसन की सराय। निम्नकोटि के ग्राहक थे उसके। छिप-छिपाकर वहाँ शराब तैयार होती है। अच्छा चलता है हसन का। असबाबों में है—बानों से बुनी खाट, मोढ़ा, लोटा, कलसी। बहरहाल मोतिया को वहीं रखा गया। नूर को ज़िम्मा दिया गया। नौ बज रहे थे। रुख़सत होकर चार्नक अ पर चला गया।

आज हिसाब-किताब में जी नहीं लग रहा था। शोरे से लदी च कल ही रवाना करनी हैं, यह बात वह भूल रहा था। कैसे क्या ह समझना कठिन है। कहाँ की कौन नेटिव युवती, जिससे परि कितना—किस घटनाचक्र से आज वह चार्नक से पनाह माँग बैठी, पर निर्भरशील है। विवेक कहने लगा, यह सब ठीक नहीं। समझौ मियाद पूरी हो आयी है, कंपनी की नौकरी से इस्तीफ़ा देने का निकट है, देश लौटने के दिन क़रीब हैं। ऐसे में यह स्त्री कहाँ स धमकी! चार्नक एकाएक उद्विग्न हो उठा। एकाएक ऐसा कर अच्छा नहीं हुआ। फिर सोचा, रहने दो, मुसीबतज़दा औरत है, रा तो क्या! नेटिव क्या आदमी नहीं होते! दो दिन रहने दो। सेठ शिव से कहकर उसका कोई इंतज़ाम करा देना होगा। कोई-न-कोई इंत हो ही जायेगा। नवाबी शासन है। आज एक क़िस्म का, कल दूसरे कि का। आज चकलों पर रोक लगी है, कल से बाईजीगिरी फिर सह जायेगी। चार्नक दो-चार मुहरें दे देगा, वह औरत उसी से कुछ दिन अ काम चला लेगी। उसके बाद फिर अपने पेशे में लग जायेगी।

दोपहर तक ही नूरमुहम्मद ने एक मकान ठीक कर लिया। शह बाहर है, लेकिन गंगा के किनारे। दो फस के कुटीर, बग़ल में छोटा

सलाम ठोंककर नूर मुहम्मद ने कहा, 'फ़िक्र किस बात की हुजूर, क्म दीजिए, मैं फ़ौरन सब ला देता हूँ।'

'नहीं साहब,' मोतिया ने कहा, 'यह बुड्ढा किसी काम का नहीं। तुम्हीं ख़रीदकर ला दो। तुम्हारा दिया हुआ कपड़ा मैं पहनूँगी। तुम्हारे ख़रीदे ए बर्तन में मैं पकाऊँगी।'

ख़ूब! नाता भी जोड़ लिया। काहे का नाता?

नूर मुहम्मद ने कहा, 'चलिए साहब, बीबी की जब मर्ज़ी हुई है, तो कपड़े-बर्तन आप खुद ही ख़रीद दीजिए। पास ही दुकान है। मैं साथ रहूँगा, तो दुकानदार ठग नहीं सकेगा। लेकिन मुझे कुछ बख़्शीश चाहिए।'

लाचारी।

नेटिव औरत का कपड़ा-लत्ता ख़रीदने में चार्नक को बड़ा मज़ा आया। कितना बड़ा-बड़ा सौदा किया है उसने! शोरा, सिल्क, चीनी, कस्तूरी, मलमल—थोक दर से। लेकिन जनाना पोशाक, वह भी एक नेटिव औरत के लिए? और गिरस्ती के बर्तन-भाँडे! मूर दूकानदार क्या सोच रहा है, क्या जाने? दूसरे ही क्षण चार्नक ने सोचा, यह मैं किसी डाइन के पल्ले तो नहीं पड़ गया हूँ?

कहा जाता है, सुंदरवन की किसी शंखिनी के फंदे में फँस गया था एक पुर्तगाली युवक। पुर्तगालियों का दल नाव से जा रहा था। सूखी लकड़ी की जरूरत थी। वे लोग जंगल में उतर पड़े। कौतूहल से एक युवक गहरे जंगल में दूर तक चला गया। देखा, एक निहायत ही ख़ूबसूरत स्त्री है। पहली ही नजर में प्रेम। उस स्त्री ने उँगली से इशारा किया। मंत्रमुग्ध की तरह वह युवक उसके पास गया। वह स्त्री उसे एक विशाल बरगद के पेड़ के नीचे एक झोंपड़े में ले गयी। साथियों ने उस युवक को ढूँढ़ा, पर वह न मिला। वह युवक उस शंखिनी के जाल में बरसों फँसा रहा। हर रोज़ वह तरुणी उसके लिए अजीब-अजीब खाद्य लाया करती और उसे अनोखी प्रेम-लीला सिखाया करती। पूरे चार साल के बाद पुर्तगालियों के एक दूसरे दल ने उस बरगद की चोटी पर उस युवक को खोज निकाला। उद्भ्रांत युवक को वे लोग नाव पर ले आये। पानी में ऊँची-ऊँची लहरें मचलीं। शंखिनी के आक्रोश से नदी नाव-सहित युवक को निगलने को तैयार। ईश्वर की दया

से नाव किसी तरह हुगली पहुँच गयी। उस खोए हुए युवक को पुर्तगालियों ने खोज तो निकाला, पर उसे होश-हवास नहीं रहा। उसका मन सुंदरवन की शंखिनी के पास पड़ा रह गया।

यह भी क्या शंखिनी की मोहिनी कला है ?

रंग-बिरंगे कपड़े और पीतल के बर्तन-बासन पाकर मोतिया बहुत ही प्रसन्न हुई। शिशुओं जैसी उमंग। वह फ़ौरन ही कपड़े बदल आयी। उसके साँवले-सलोने शरीर पर चार्नक मुग्ध हो गया। लेकिन...चार्नक शंखिनी के जाल में नहीं फँसेगा, नहीं फँसेगा। काम के बहाने वह लौट गया।

चीफ़, मिस्टर चेंबरलेन सिंगिया से पटना आ धमके। बड़ी बुरी ख़बर थी। सुलतान शुजा ढाका से अराकान भागा था, वहीं उसका अंत हो गया।

'इससे तुमने क्या समझा, जॉब ?' चेंबरलेन ने पूछा। 'मतलब यह कि सुलतान की दी हुई निशानी अब बिलकुल बेकार है। वह अब किसी काम नहीं आयेगी। ऑनरेबुल कंपनी नये बादशाह का फ़रमान जुटाने की कोशिश कर रही है।'

'बादशाही फ़रमान मानता कौन है ?' चार्नक ने कहा, 'यह क्या शाहजहाँ का अमल है ? उस समय लोग फिर भी बादशाह का हुक्म मानते थे। आज तो जो जिसके जी में आता है, वही करता है। अपनी ज़रूरत होती है तो बादशाह की दुहाई देता है और काम बन जाने पर नकार देता है।'

'घूस, भेंट, नज़राना देकर सरकारी मुलाज़िमों को मुट्ठी में करना होगा, जॉब,' चेंबरलेन ने कहा।

'जितना ज़्यादा भेंट देंगे, सर,' चार्नक ने अपनी राय दी, 'उनका लोभ उतना ही बढ़ जायेगा। देख नहीं रहे हैं आप, नवाब से लेकर मीर-शहर

'मतलब कि इन्हें मारिए तो ये ठाकुर की तरह पूजा करेंगे और न मारिए तो कुत्ते की तरह भोंकेंगे।'

'खूब !' चेंबरलेन ने शाबाशी दी, 'देखता हूँ, इस बीच तुमने नेटिवों की बहुत-सी बातें सीख ली हैं। अच्छा है। मैं लंदन लिखे दे रहा हूँ, तुम्हारे काम से मैं बहुत खुश हूँ। तुम अभी जवान हो। खून गरम है तुम्हारा। हम लोगों का समय समाप्त हो आया। अब पटना छोड़कर चला जाऊँगा। अब तुम और दूसरे नौजवान लोग भार संभालो। कारोबार चलाओ। हमारे किंग और हमारी कंपनी तुम लोगों का मुँह जोह रही है।'

'हमारी भी मियाद पूरी हो आयी है, सर,' चार्नक ने कहा, 'मैं भी लौट जाऊँगा।'

'एँ !' हुक्के का धुआँ छोड़ते हुए चेंबरलेन ने कहा, 'इंदोस्तान तुम्हें अच्छा नहीं लग रहा है ?'

चार्नक क्या जवाब दे ? पल में याद आ गया, मुहर और मोतिया—सोना और श्यामा। क्या जवाब दे वह ?

सेठ शिवचरण के साथ चल रहे स्वतंत्र व्यवसाय में चार्नक को इन दिनों अच्छा लाभ हो रहा है। होशियार है चार्नक। जिसमें ऑनरेबुल कंपनी का नुक़सान हो, ऐसे किसी काम में वह हाथ नहीं देता। कंपनी के माल पर उसकी चौकस निगाह रहती है। किस बनिए ने क्या माल दिया, वह माल किस कोटि का है, यह सब उसकी तेज़ नज़र से नहीं बच पाता। कंपनी के माल का कोई नुक़सान कुली भी करे तो चार्नक के पास उसके लिए क्षमा नहीं थी। तड़ातड़ कोड़ा ! कोड़ा लगाये बिना नेटिव कुली ठीक-ठिकाने नहीं रहते। कोड़ा आजकल चार्नक का सदा का संगी है। यहाँ तक कि उसका सुहृद् सेठ शिवचरण भी पार नहीं पाता। उस रोज़ उसने एक गाँठ घटिया कपड़ा दिया। चार्नक से खूब डाँट सुननी पड़ी। आख़िर कपड़े की वह गाँठ बदल दी गयी, तब कहीं छुटकारा मिला।

एक आरमेनी व्यापारी से मोल-भाव करके चार्नक ने अपने नाम से जवाहरात की ख़रीद-फ़रोख़्त की। उससे भी काफ़ी मुनाफ़ा हुआ। हिंदुस्तान में मुट्ठी में धूल उठाओ, तो सोना हो जाता है। मगर धूल उठाना तो जानना चाहिए।

यह मोतिया ! कहाँ से उड़कर आ गयी यह औरत ! छलकते यौवन की देह, काली-काली बड़ी-बड़ी आँखें चार्नक को बार-बार याद आने लगीं। गंगा-तट की उस स्त्री की आँखों में अगाध स्निग्धता थी। मोतिया की आँखों में नशीलापन है। जानकर ही चार्नक दो दिन मोतिया के पास नहीं गया। कंधे से बोझ को उतार फेंकना ही ठीक है। उसने शिवचरण से सारी बातें खोलकर कही थीं—'इस स्त्री का कोई हीला कर दो। तुम्हारे मुल्क की है। तुम्हीं लोग उसका ख़याल करो। मुझ पर यह ज़ुल्म क्यों ? कहो तो उसे उसके बाप के यहाँ पहुँचा आऊँ।'

शिवचरण ने ध्यान नहीं दिया। कहा, 'अभावों की दुनिया, हीरू कहार आप ही तबाह है। तिस पर यह बिगड़ी बेटी। हीरू उसे घर में घुसने नहीं देगा।'

उसके बाद फुसफुसाकर बोला, 'साहब, इस माल को छोड़िए मत कुछ दिन मौज कीजिए। फिर न होगा, तो किसी के हाथ बेच दीजिएगा।'

'चुप ! उल्लू कहीं का !' चार्नक ने डपट दिया, 'मैं औरत बेचकर मुहर कमाऊँगा ? जा, हट जा मेरे सामने से।'

मामला बिगड़ता देख शिवचरण वहाँ से खिसक गया।

परेशानी में डाल दिया नूर मुहम्मद ने। बुड्ढे ने कहा, 'साहब, बीवी ने सोना-खाना छोड़ दिया है। फ़कत आँसू बहाती है।'

चार्नक ने खीजकर पूछा, 'क्यों ?'

'आप जो चले आये और फिर उसके पास नहीं गये, इसीलिए।'

'मुझे क्या कोई काम नहीं है कि रात-दिन बीवी के मुँह के पास बैठा रहूँ ?'

'फिर भी। कम-से-कम रात-दिन में एक बार तो जाइएगा ? साहब, बीवी आपको बहुत प्यार करती है।'

'अच्छा-अच्छा, तू जा। तुझे उस्तादी नहीं करनी है,' चार्नक खीजकर बोला।

भी राजमहल में है। ख़त लिखने का भी समय नहीं। कब जवाब आयेगा, क्या पता ?

मोतिया की कुटिया में चार्नक जब पहुँचा, तो साँझ हो आयी थी। आसमान लाल-लाल, गुलमुहर की चोटी पर भी आग। गंगा का पानी लहू-सा। नाव-बजरे के पाल भी लाल।

नये कपड़ों में बनी-ठनी मोतिया मानो चार्नक की बाट जोह रही थी। आँख-मुँह पर रोने का कोई भी चिह्न नहीं कहीं। वही प्राण-चंचल मादकता उसके यौवन-पुष्ट शरीर से छिटकी पड़ रही थी।

सादर अगवानी करते हुए मोतिया ने कहा, 'इतने दिनों के बाद ? मैंने समझा, साहब मुझे भूल ही गये।'

जवाब नहीं फूटा चार्नक के मुँह से।

'तुम्हारे लिए पूजा का प्रसाद रखा है,' एक बर्तन में मोतिया कुछ ले आयी। कहा, 'खाओ।'

मुरगे का मांस। मसालेदार। बड़ा स्वादिष्ट। ऐं ! ये जेंटू लोग मुरगा खाते हैं ? और कह रही है, पूजा का प्रसाद। सेठ शिवचरण ने कहा था, हम लोग मांस-मछली नहीं छूते। मोतिया क्या मूर है ?

मोतिया ने ही शंका का समाधान कर दिया। कहा, 'आज पंचपीर पर मुरगे की बलि चढ़ाई थी। अपने हाथों पकाया है।'

'उससे क्या होता है ?'

'भला होता है,' मोतिया बोली,'मन की मुराद पूरी होती है, इसीलिए इस इलाके में हिंदू-मुसलमान सभी जाग्रत देवता पंचपीर को मुरगा चढ़ाते हैं।'

'अंधविश्वास !' चार्नक ने उपहास किया।

'कैसे ? पूजा चढ़ाते ही तो मेरी मनोकामना पूरी हुई।'

'कैसे ?'

'तुम मेरे पास आ गये।'

अचरज से विचलित हुआ चार्नक।

कैसे सरल प्राण का निवेदन है ! इस अज्ञानी स्त्री ने उसे अपने पास पाने के लिए पंचपीर पर मुरगे की बलि दी।

जाने कहाँ से खटिया ले आयी है मोतिया। कुटिया के बाहर पेड़ के नीचे डाल दी। चार्नक को बैठने के लिए कहा। चार्नक खटि बैठा, और मोतिया उसके पैरों के पास ज़मीन पर ही बैठ गयी।

मोतिया एकाएक पूछ बैठी, 'तुम मुझसे नफ़रत करते हो, साह छोटी जात की हूँ, तिस पर बाज़ार की वेश्या।'

'मैं ईसाई हूँ, जात-पाँत नहीं मानता, लेकिन...।'

मन-ही-मन सोचा, रंडी है, इसलिए शायद कुछ घृणा करता हूँ. यह औरत मुझे प्यार करती है, मुझे अपने पास पाने के लिए इसने पर बलि चढ़ाई है।

'लेकिन क्या ? मन की नहीं कहोगे ? शायद घृणा करते हो मुझ

चार्नक ने सहसा स्वीकार किया, 'नफ़रत करता था तुम्हें। प नहीं करता।'

'नूर मुहम्मद कह रहा था, तुम दूसरे साहबों जैसे नहीं हो। मुल्क की पोशाक-वोशाक पहनते हो। लेकिन यहाँ की औरतों से मि जुलते नहीं।'

'उस बुड्ढे उल्लू ने और क्या कहा ?'

'कहा है, तुम बहुत अच्छे आदमी हो।'

'कंबख़्त ज़रूर बख़्शीश माँगेगा। काम करने पर ही वह बख़्शीश माँ है।'

'लेकिन मैंने तो कोई काम नहीं किया; मुझे इतनी बख़्श किसलिए ?'

'कहाँ ?'

'इतने कपड़े-लत्ते, बर्तन-बासन। मैंने कौन-सा काम किया तुम्हारा

सच ही तो। सिर्फ़ माँगने की देर। चार्नक ने खुद ही सब ला दिय क्यों ?

साँझ उतर आयी। बसेरे में लौटी चिड़ियों की चहक ख़ामोश गयी। गंगा-तट की इस कुटिया में अनोखी शांति। अँधेरा पाख। धुं आसमान में दप्-दप् करके तारे जलते जा रहे हैं। चार्नक के पैरों के पा नेटिव औरत की दोनों आँखें भी दप्-दप् कर रही हैं।

अस्फुट स्वर में मोतिया ने कहा, 'मैं जानती हूँ साहब, तुमने मुझे क्यों बख्शीश दी।'

चार्नक को कौतूहल हुआ। पूछा, 'क्यों ?'

वह वैसे ही अस्फुट स्वर में बोली, 'मुझसे घृणा करते हो, फिर भी प्यार करते हो।'

पलक मारते ही तरुण चार्नक के हृदय का बंद द्वार मानो मतवाली बयार से खुल गया। हृदय का पुंजीभूत आवेग प्रबल वेग से बयार में मिल गया।

रुँधे श्वास से चार्नक बोल उठा, 'हाँ, तुम्हें प्यार करता हूँ मोतिया, प्यार करता हूँ।'

मोतिया चार्नक की भूखी छाती पर झुक पड़ी। एक निमिष में जाति-धर्म-रंग का भेद एकाकार हो गया।

इधर अँगरेज़ वणिकों का व्यापार दिन-दिन शोचनीय हो रहा है। हुगली के दीवान ने अँगरेज़ों से सालाना तीन हज़ार रुपया कर माँगा है। बालेश्वर में जहाज़ का लंगर डालने देने के लिए सरकारी मुलाज़िम कर माँग रहे हैं। राजनैतिक स्थिति डाँवाडोल होने से भागीरथी में लुटेरों का उपद्रव बढ़ गया है। अँगरेज़ों की नावें देखते ही लुटेरे लूट-पाट लेते हैं। बाज़ाब्ता संतरी-पहरेदार के साथ नावों को रवाना करना पड़ता है।

की बग़ावत को उसने दबाया है, सुलतान शुजा को अराकान भगा दि
है। ये अँगरेज़ किस खेत की मूली हैं!

पटना का दारोग़ा बार-बार आकर धमकी दे जाता है, हरजा
दाख़िल करो, नहीं तो हाथी चलाकर कोठी को ज़मींदोज़ करवा दूँगा
जब भी आता है तो हर बार तलवार, पिस्तौल, बंदूक, भागलपुरी कपड़
जिस पर नजर पड़ती है, वही उठा ले जाता है। और फिर गुर्राता है
हरजाना दाख़िल करो।

पटना की कोठी में ख़ासा आतंक-सा है। मुग़लाना रवैया है, क्या पता
कब क्या हो। ऐसे भी व्यवसाय चलता है कहीं?

चार्नक को आजकल काम-काज कम है। नवाब से कोई निबटारा जब
तक नहीं हो जाता, नया कारोबार बंद है। फ़ुरसत काफ़ी है। फ़ुरसत की
उन घड़ियों को मोतिया ख़ुशी की हवा से भर देती है।

मोतिया ने प्रेयसी की भाँति मुहब्बत दी है, संग दिया है और फिर
सखी की तरह आशा दी है, भरोसा दिया है।

मोतिया समझदार की तरह बोली, 'रामजी बन चले गये। सीता माई
रावण की लंका में हैं। महाबीरजी सहाय हुए। रामजी क्या हार गये?
नहीं—लड़ाई हुई, घनघोर लड़ाई। अन्त में रावण को ही हारना पड़ा।'

'इसका मतलब क्या हुआ, मोतिया?' चार्नक ने मज़ाक में पूछा।

'अजी, मर्द के बच्चे हो न! लोहा लो।'

मोतिया की सयानी बातें बड़ी भली लगतीं।

'मुग़लों से लड़ाई! ठीक है। मगर हमारे महाबीरजी कौन होंगे? तुम?'

'धत् बुद्धू!' मोतिया हँसते-हँसते लोट-पोट होकर कहती, 'मैं तो
औरत हूँ।'

'फिर? महाबीरजी कौन होगा?'

'तुम होगे साहब, तुम।'

'ख़ूब! मुझे हनुमान बना दिया! तुम्हारा रामजी कौन?'

'क्यों, पढ़ा नहीं है? मराठा वीर शिवाजी। गंगा के घाट पर सुना,
उन्होंने बड़ा ख़ौफ़नाक रवैया अख़्तियार किया है। बादशाह को अब मज़ा
आयेगा। ज़रा कलेजा देखो, होली का त्यौहार बंद कर दिया। मंदिर तोड़-

: मस्जिद बनाता है।'

शिवाजी के दुस्साहस की ख़बर जॉब्र चार्नक को है। मगर वह क्या :गा ? ऐसे छिटपुट हमले-वमले तो होते ही रहते हैं—हाथी की पीठ पर च्छर के डंक के समान।

'मोतिया !' चार्नक ने मज़ा लेने के लिए कहा, 'उससे तो एक काम रो। अपने पंचपीर पर मुरगे की बलि दो कि हमारे संकट टल जायें।'

हाथ जोड़कर मोतिया ने मन-ही-मन पंचपीर को प्रणाम किया। 'तुम ोग तो ईसाई हो। तुम क्या पंचपीर को मानते हो ?'

'अरे, मुरगा तो चढ़ाओ,' चार्नक ने हँसकर कहा, 'फल न मिले, ़रगा-भोज तो होगा !'

'नहीं-नहीं साहब, हँसी-दिल्लगी नहीं। तुम मन से कहो, तो बलि दूँ ?'

'ख़ैर, मन से ही कह रहा हूँ।'

ख़ुशी से मोतिया गीत गा उठी।

चार्नक ने गीत का मतलब नहीं समझा, पर सुर मीठा लगा।

मोतिया बोली, 'द्वापर युग में कृष्णजी काले थे, राधा गोरी। कलयुग ें सब उलटा है। तुम गोरे हो, मैं काली हूँ।'

चार्नक ने मोतिया को सीने में भींच लिया। कहा, 'तुम प्रकाश हो, ज्योति हो।'

अँगरेज़ों की मद्रास-कोठी से हुगली के एजेंट को हुक्म आया, नेटिव की नाव छोड़ दो। नवाब से माफ़ी माँगो।

हुगली के एजेंट ने नाक-कान मलकर मीरजुमला से माफ़ी माँगी।

फिर क्या उपद्रव हो, क्या पता ?

पटना-कोठी में ख़बर आयी, कूचविहार में जेंटुओं ने मुग़ल बादशा: के ख़िलाफ़ विद्रोह किया है। आसाम में भी विद्रोह। उस विद्रोह क संभालने में नवाब की नाक में दम है।

अँगरेज़ों ने मानो ज़रा राहत की साँस ली।

मोतिया ने कहा, 'यह पंचपीर साहब को मुरग़ी चढ़ाने का सुफल है

देखने के लिए घर आ जाता था। हीरू की स्त्री बहुत पहले ही मर चुकी थी। बुढ़िया माँ घर-गिरस्ती संभालती थी।

मोतिया का कलेजा धक् से रह गया।

'सब कहाँ गये ! बाबूजी, बुढ़िया अम्मा—सब गये कहाँ ?'

सीलन-सी दुर्गन्ध आ रही थी। सड़ी बदबू। पूरे आँगन में बेहद बदबू। कुएँ के पास और भी ज़्यादा। कुएँ के पास जाकर चार्नक डर से पीछे हट आया। कुएँ में बड़ी गहराई में पानी था। पानी में कुछ लाशें तैर रही थीं। सड़कर, फूलकर बड़ी बीभत्स हो गयी थीं।

घर में घुसते ही मोतिया चीख उठी। चार्नक दौड़कर दरवाज़े के पास गया। छप्पर से एक लाश झूल रही थी। वह भी सड़कर फूल गयी थी। तीखी बदबू से नाक झनझना उठती।

मोतिया गला फाड़कर रो उठी—'बाबूजी, बाबूजी !'

हीरू कहार ने परिवार सहित सदा के लिए भूख को शांत कर दिया था।

मोतिया रोती-रोती धूल में लोट गयी। उसके हाथ से छूटकर तीन मुहरें बिखर गयीं। खपरैल-घर के अँधेरे में मुहरें दमकने लगीं।

चार्नक उस शोक-विह्वल स्त्री को क्या दिलासा दे ?

समय ने ही उसे शांत किया। रोते-रोते आँख-मुँह सूज गया। बाल बिखर गये। वह कुछ-कुछ संभली।

लेकिन बूढ़ी अम्मा कहाँ ? बहन लक्ष्मी ? भाई सुन्दर ?

चार्नक ने उँगली से कुएँ की ओर इशारा किया।

फिर से रोने की शक्ति नहीं थी मोतिया में। वह उठ खड़ी हुई। उसका कौतूहल मिट चुका था। कुएँ के पास वह नहीं गयी। आँचल से आँसू पोंछने लगी। चार्नक के पास आकर आकुल भाव से बोली, 'साहब, जीते-जी तो बाप के किसी काम नहीं आ सकी। अब शव का दाह-संस्कार करना होगा।'

चार्नक ने इन लोगों का शव-दाह देखा है। श्मशान में लकड़ी की चिता सजाकर उस पर शव को लिटा दिया जाता है। ऊपर से भी लकड़ी। चिता में आग लगा दी जाती है। हवा से आग लपटें लेने लगती है। नश्वर

खड़ा होना होगा—मार के रास्ते, घूस के रास्ते से नहीं।

पर उस तुच्छ तरुण कर्मचारी की यह चिंता-तरंग लंदन त
पहुँचेगी—वह सात समंदर पार है। लेकिन सात समंदर पार से
उत्तर आया। ऑनरेबुल कंपनी के कोर्ट ऑफ़ डाइरेक्टर्स ने चार्न
पटना-कोठी का चीफ़ नियुक्त कर दिया।

घड़ियाल की चोट ने आधी रात की सूचना दी। भोज की उमंग अभी खत्म नहीं हुई। मदिरा के प्यालों की खनक अभी भी उठ रही है। हँसी-ठहाके, जड़ित कंठों के रसालाप की महफ़िल जमी हुई है। बेशुमार मोम-बत्तियों के फ़ानूस ने सरल प्रकाश बिखेर रखा है। नाच का क्रम अभी-अभी समाप्त हुआ है।

पटना के नये चीफ़ के पद-ग्रहण का यह उत्सव। शाम से तरह-तरह की मदिरा और खाद्य ने आमंत्रितों की भूरि-भूरि प्रशंसा अर्जित की। बत्तख, हिरन, भेड़, तीतर, मुरगा, कबूतर, बटेर विविध पशु-पक्षियों का मसालेदार मांस बड़ा स्वादिष्ट बना था। मूर लोगों के सम्मान में सूअर और जेंटुओं की ख़ातिर गोमांस छोड़ दिया गया। ऑनरेबुल कंपनी के भंडार से विलायती वाइन, रम, व्हिस्की की धारा बह उठी। कंपनी के वकील अलीमुद्दीन ने से फ़ारस के अंगूरों की रंगीन शराब भेंट में दी थी। बनिया सेठ शिवचरण ने कश्मीर से सुरा मँगवा दी। फ्रेन जेनसन नशे की झोंक में मेज़ के नीचे लुढ़क रहा था। खानसामा-बावर्चियों ने मिलकर उसे उठाया। मिसेज़ जेनसन का चेहरा लाल सुर्ख हो उठा था। वह बस चार्नक की ओर ताक रही थी और ही-ही कर हँस रही थी। नशे में जेम्स लायड और सैमुएल टीची में हाथापाई हो गयी। लायड ने तो टीची को मार डालने के लिए पिस्तौल निकाल ली थी। शिवचरण झट अलमारी के नीचे दुबक गया, लेकिन अलीमुद्दीन ने चालाकी से लायड के हाथ से पिस्तौल छीन ली। ख्वाजा मार्टुस आरमेनी भाषा में ज़ोर-ज़ोर से गीत गाने लगा। मदाम ला साल चार्नक के गले से लिपटकर उसे चूमने जा रही थी। बड़ी मुश्किल से उसके शिकंजे से छुटकारा मिला। अर्दली नूर मुहम्मद ने खुशबूदार अंबरी तंबाकू भरे हुक्के की नली चार्नक के हाथ में दी। चार्नक दम लगाकर

धुआँ छोड़ने लगा।

पटना-कोठी का नया चीफ़—वरशिपफुल जॉब चार्नक। उम्र
लेकिन अनुभव में प्रवीण। राइट ऑनरेबुल कंपनी के कोर्ट ऑफ़ डा
चार्नक से बड़ी उम्मीद रखते हैं। इसीलिए पटना-कोठी की ज़िम्मेद
सौंपी। एक तो हिंदुस्तान का हाल डाँवाडोल था, तिस पर मूरों से उ
की झड़प होती ही रहती है पटना में। कई साल पहले नवाब ने ज़ोर
दस्ती पटना की कोठी पर क़ब्ज़ा कर लिया था। फ़रमान पर भी भ
शुजा का निशान बेकार! नया बादशाह फ़रमान न दे तो मुसीबत।

चीफ़ की गद्दी मिलते ही चार्नक पटना के फौजदार को सलाम
आया है। फौजदार के पास बिलकुल मूर प्रथा से कोर्निश करके जाना
नेटिव तो हाथ रखने नहीं देता था। चार्नक ने जब एक बोतल बिल
शराब, एक थान लाल मखमल, इस्पात की तीन तलवारें और एक
पिस्तौल दी, तब फौजदार की ज़बान खुली। तंबाकू का धुआँ छोड़ते
उसने आश्वासन दिया कि वह फ़रमान के लिए नवाब से सिफ़ारिश करे

जॉन इलियट ने कासिम बाज़ार से चिट्ठी भेजी—'क्यों साहब, मैंने
नहीं था कि आप चीफ़ होंगे? अभी पटना के हुए, उसके बाद कासि
बाज़ार के होंगे। देखिए, उस समय भूल मत जाइएगा। आपको उस र्के
दासी मेरी एन की याद है? अब वह कैसी खूबसूरत निकल आयी है
उस पंच-बाला के रूप के जाल में सभी जात के जवान-बूढ़े उलझ गये
एन लेकिन अभी भी चार्नक का नाम लेती है। आप चाहें तो उसे खर
सकते हैं।'

'ज़रूरत नहीं उस दोगली की। मेरी मोतिया ने सबको मात कर रख
है,' चार्नक ने मन-ही-मन कहा।

चार्नक ने इस बीच मोतिया को चार घाघरे, मोतियों की एक माल
और सोने का एक चंद्रहार उपहार में दिया है। रूपचंद सुनार को मोतिय
के लिए चाँदी की चूड़ियाँ, बाजूबंद, कानों का झुमका और नाक की कनि
बनाने का हुक्म दिया गया है। चार्नक की ख्वाहिश थी कि सारे ही गहने
सोने के हों लेकिन उतने पैसे नहीं थे। जनाब गुलामबख्श के साझे में
कश्मीरी शाल का कारोबार चला पाने से सरदियों में खासा मुनाफ़ा होगा।

उस समय मोतिया को और ज़्यादा खुश किया जायेगा। तंबाकू पीते-पीते मोतिया की याद आ रही है। आज के इस भोज में वह नहीं रही। अँगरेज़ों की पटना-कोठी के चीफ़ का यह सरकारी आयोजन है। मोतिया के लिए यहाँ गुंजाइश नहीं। वह चार्नक की प्रेयसी हो सकती है, पर उसके साथ कोई सामाजिक बंधन नहीं है। उसका आदर-क़दर शयन-कक्ष में ही है; सरकारी भोज में नहीं। चार्नक ने पालकी से उसे सिंगिया की कोठी में भेज दिया है। काम था, इसलिए ख़ुद उसके साथ नहीं जा सका। नूर मुहम्मद अंगरक्षक बनकर गया है।

चार्नक का मन पंद्रह मील दूर मोतिया के यौवनपुष्ट शरीर के पास ही चक्कर लगा रहा था।

मदाम ला साल ने उनकी तन्मयता भंग की। महिला अँगरेज़ है, पर फ्रांसीसी व्यवसायी की पत्नी है। महिला का यह तीसरा पति है। वह कप्तान निकोलस की पत्नी के रूप में हुगली आयी थी। हिंदुस्तान में यूरोपीय महिलाएँ विरल हैं। इसीलिए श्वेतांगों में उसकी चर्चा रहती है। बहुतेरे श्वेतकाय पुरुष उसकी कृपा के भिखारी हैं। महिला में उदारता की कमी नहीं। आँधी में एक दिन गंगा में नाव डूब जाने से निकोलस साहब का देहांत हो गया। शोक की अवधि भी नहीं बीत पायी थी कि मिसेज़ निकोलस मिसेज़ हारनेट हो गयी। नया पति ज़रा कड़े मिजाज़ का था। पत्नी का अभिसार वह बरदाश्त नहीं कर सका। शयन-कक्ष में पलंग के नीचे जिस दिन एक पुर्तगाली युवक पकड़ा गया, उस दिन उसने पत्नी को कोड़े लगाये। उस युवक ने तो भागकर जान बचाई, लेकिन पति ने धतूरा खाकर दूसरे दिन आत्महत्या कर ली। विदेशी की लाश लेकर शोरगुल कौन करे? बात दब गयी। महिला का वर्तमान पति मोशिए ला साल प्रौढ़ फ्रांसीसी व्यवसायी है। महिला के प्रभाव से ख़ानदानी व्यवसायी इलाही बख़्श मोशिए ला साल पर कृपालु हैं, इसलिए कारोबार अच्छा ही चलता है।

चार्नक की कुरसी के हत्थे पर बैठकर मदाम ला साल बोली, 'जॉब, मैंने तुम्हारी इस पार्टी को बिलकुल पसंद नहीं किया।'

यह भी कोई दावत है ?'

चार्नक की जान में जान आयी। ख़ैर, उसके अतिथि-सत्कार त्रुटि नहीं हुई है। उसने जवाब में कहा, 'इस हिंदुस्तान की सड़ी हु में किस महिला को अँगूठी पहनाऊँ, कहिये।'

मदाम ला साल ने वेश्या की तरह कहा, 'हाय-हाय, पहले तुमसे रहा होता तो उस बुड्ढे से ब्याह न करके मैं ही तुम्हारे पास अँगू देती।'

'मेरा दुर्भाग्य,' चार्नक ने कहा, पर मन-ही-मन अपने सौभा प्रशंसा की। उस गौरांगिनी के चेहरे पर नियमित व्यभिचार ने अपनं डाल रखी है। रूखी चमड़ी, कर्कश स्वर, कठोर दृष्टि, सारे बदन में ल का अभाव!

'कंपनी के मालिकों का भारी अन्याय है,' मदाम ने शिकायत 'मुल्क में योग्य पात्रों की कमी से युवतियों की शादी नहीं हो रही और, यहाँ, हिंदुस्तान में योग्य पात्र नेटिव युवतियों को लेकर मज़े रहे हैं।'

मोशिए ला साल ने टिप्पणी की, 'दूध की साध मठे से मिटाना को कहते हैं।'

मदाम हठात् पूछ बैठी, 'जॉब, तुम्हारी वह जेंटू छोरी कहाँ गयी देखने को बड़ा जी चाहता है कि तुम मर्द लोग किस आकर्षण से फिस हो।'

जॉब चार्नक एकदम जल उठा। उसने कुछ कठोर स्वर से कहा, 'मदा ला साल, मेरा अनुरोध है, दावत में आप ज़रा संयत भाषा का प्रयोग करें

'बाइ जोव,' महिला ज़रा क्रोध से बोली, 'एकदम ही उखड़ गये! तु एक जेंटू लौंडिया को लेकर मज़ा लूट सकते हो और मैंने ज़रा मज़ाक किय कि गुस्से!'

'मेरे व्यक्तिगत मामले में दख़ल न दें,' चार्नक ने कड़े स्वर में आदेश

मातिया ! महिला ! मदाम ला साल चीत्कार कर उठी, 'जानने को
क़ी क्या है ? पटना की एक वेश्या। नीच जात, वाहियात, ग़रीब—और
इ महिला ! हूं !'

'शट अप !' चार्नक की आवाज़ सख़्त और रूखी थी, 'वह असहाय
ब्रती मुझ पर अनुरक्त है। उसने अपने सारे अतीत को धो-पोंछ दिया है।
रे सिवाय वह और किसी को नहीं चाहती।'

'तुम जैसा तरुण प्रेमी मिलता, तो मैं भी जकड़कर पड़ी रहती, जॉब,'
ो पड़ी मदाम, 'उस जंटू औरत में क्या है जो मुझमें नहीं है ? मेरा मुँह
खो, मेरी आँखें देखो, मेरी छाती देखो।'

बोलते-बोलते मदाम ला साल ने फ्रॉक को कमर तक उतार दिया।
वह और क्या-क्या करती, क्या जानें। उसका पति मोशिए आया, फ्रॉक को
कंधे तक उठाकर बोला, 'मेरी प्यारी, कपड़े मत उतारो, मत उतारो।
मच्छर काट लेंगे।'

मदाम ला साल ज़ोर-ज़ोर से रो पड़ी। पति से लिपटकर बोली,
'डार्लिंग, तुम मर्द हो तो चार्नक को डुएल की चुनौती दो। उसके घमंड को
चूर-चूर कर दो। उसने आज मेरे प्यार के चुंबन को नकारा है।'

ला साल ने तुनककर कहा, 'मिस्टर, आपने मेरी पत्नी का अपमान
किया है।'

मदाम आश्वस्त हुई। फ़ारस की रंगीन शराब का घूँट लेकर उसने
प्याले को पटक दिया। उसके बाद पति का हाथ पकड़कर खींचने लगी,
'डार्लिंग, चलो, इस नरक से हम भाग चलें।'

दोनों दावत से चल दिये। व्यापारी ग़ुलाम बख़्श चार्नक के न्योते पर
छिपकर शराब पीने आया था। 'तौबा, तौबा !' ग़ुलाम बख़्श ने कहा,
'आज तो ख़ास माल का इंतज़ाम किया है, चार्नक साहब। ओह, कितनी
निम्न का माल ! बादशाह के हुक्म से पटना में क्या अब माल मिलता है ?
आप नाज़रीन लोग मज़े में हैं। आप लोगों के लिए सब हुक्म रद्द ! लेकिन
मैं भी एक बोतल ले जाऊँगा।'

पार्टी और नहीं जमी। एक-एक करके मेहमान रुख़सत लेने मिसेज़ जानसन पी रही थी और मन्द-मन्द मुस्करा रही थी। वह उठ खड़ी हुई और बोली, 'सभी सुनिए, मैं स्वास्थ्य की कामना करते पान कर रही हूँ मिस्टर और मिसेज़ चार्नक के लिए।' महिला ने प्याले खत्म किया।

चार्नक ने तर्क करने की ज़रूरत नहीं समझी। नशेबाज औरत की पर कान क्या देना ?

मिसेज़ चार्नक ! चार्नक ने मोतिया से शादी करने की बात भी सोचीहै। प्रेम और संग—यही काफ़ी है। अभाव किस बात का है ? की कोई ज़रूरत नहीं। उन दोनों का यह संबंध समाज-बंधन से परे विवाह के बंधन का मूल्य क्या है ? मिसेज़ निकोलस ने तो एक-एक क तीन शादियाँ कीं, उनमें सामाजिक बंधन की कौन-सी मर्यादा थी ? उ क्या कभी भी किसी पति को प्यार किया है ? लेकिन मोतिया के लिए चार्नक ही सर्वस्व है, अनन्य प्रेमी !

अतिथि-अभ्यागत सभी विदा हो गये। मशालची फ़ानूसों की बत्ति को बुझाने लगे। चार्नक को मोतिया के लिए ललक हो आयी। वह उ समय, रात में ही सिंगिया-कोठी के लिए रवाना हो गया।

•

ये नेटिव कुली बग़ैर शोर मचाये काम नहीं कर सकते। माल चढ़ाने, माल उतारने और ढोने में—हर समय शोर मचाते हैं। उनके साथ-साथ नेटिव बनिये, मुत्सद्दी भी हुल्ला करते हैं। तमाम दिन हल्ला और हल्ला। कान बहरे हो जाते हैं। इस हल्ले को रोकने के लिए चार्नक ने कितनी बार चाबुक चलायी है। कुछ देर खामोशी। फिर वही हल्ला, लोगों की आदत भला छूटे कैसे ?

कोठी का लेन-देन ठीक ही चल रहा है। नये बादशाह के नाम पर उत्तर भारत में कुछ-कुछ शांति है। लड़ाई अभी दक्खिन में ही है। शांति न हो तो कारोबार चलाना कठिन है। लाख कोशिश करने पर भी औरंग-ज़ेब का फ़रमान नहीं मिल रहा है। बेरोक व्यापार का अधिकार मिले

बिना बादशाही कर्मचारियों की हरकत से लाभ की सुविधा नहीं।

सीधे बादशाह को ही दरखास्त दी जाये, तो कैसा रहे ? परंतु पटना के फ़ौजदार ने चार्नक को अभी दिल्ली जाने से मना किया है। कहा है, बादशाह का मन-मिजाज़ अभी अच्छा नहीं है। बादशाह से साहब-किरान-ए-सानी का विरोध चल रहा है। गरम-गरम पत्राचार हो रहा है। ये फ़िर कौन ? बादशाह के बापजान शाहजहाँ। अब उनका यही नाम है। दक्षिण की हालत अच्छी नहीं है। काफ़िर शिवाजी बेहद तंग कर रहा है। बादशाह ने उसे दबाने के लिए राजा जयसिंह और दिलेर खाँ को भेजा है। बादशाही फ़रमान की ज़रूरत क्या ? भेंट दो, नज़राना दो। कर्मचारी लोग अँगरेज़ों की मालभरी नावों को छोड़ देंगे।

तो, अमीर-उल-उमरा शाइस्ता खाँ को पकड़ा जाये। उन्हें समय कहाँ ? अराकान में लड़ाई चल रही है। चटगाँव बंदरगाह को दखल करना है।

राजमहल में फिर चौकीदारों ने शोरे की नावें रोकी थीं। एक हज़ार सिक्के—रुपये—देकर नावों को छुड़ाना पड़ा। मुग़लों के दीवान और दरोग़ा द्वारा शोषण तो जारी ही है।

हीराचंद ने अँगरेज़ों के ढाई हज़ार रुपये हड़प लिये। चार्नक ने प्यादे से उसे कोठी में पकड़वा मँगाया था। हीराचंद के लोगों ने क़ाज़ी के पास नालिश की। घूस खिलायी। चार्नक की निगाहों के सामने हीराचंद कोठी से छाती फुलाकर निकला। चार्नक ने भी घूस खिलायी। क़ाज़ी के हुक्म से हीराचंद को बीस कोड़े लगे। ढाई हज़ार रुपये उसने 'माई-बाप' करके उगल दिये।

लूट-पाट आजकल बेहिसाब बढ़ गयी है। जल में डकैती, थल में डकैती। पहरेदारों के बिना नाव का चलना ही असंभव। कोठी में चार्नक ने सिपाहियों की संख्या बढ़ा दी।

चीफ़ के काम का कोई अंत नहीं। घर के क़रीब ही दफ़्तर, खासा खुला हुआ-सा। वहाँ बहुत-सी टेबिल और डेस्क। कर्मचारीगण बैठे-बैठे लिखते रहते हैं। अलमारी में खतो-किताबत के रजिस्टर, हिसाब के खाते-बहियाँ। और-और जरूरी काम। सब-कुछ को सहेजकर, ताला-कुंजी लगा-कर रखना पड़ता है। पिछले चीफ़ सूची के मुताबिक़ एक-एक चीज़ मिला-

कर दे गये हैं। गोदाम में माल का स्टॉक, संदूक में रुपये। सब-कुछ
दिया है।

यहाँ भी भोजन एक मेज़ पर साथ ही होता है। पद के अनुस
बैठते हैं। अनब्याहे लोग भोजन के लिए अलग से भत्ता नहीं पा
विवाहित हैं और अपने घर में ही खाना खाना चाहते हैं, उन
भत्ते की व्यवस्था है। चार्नक का हाल कुछ अजीब क़िस्म का है।
नाते उसे आम टेबिल पर कर्मचारियों के साथ ही खान-पान करन
है, हालाँकि घर में मोतिया के सेवा-जतन पर लोभ हो आता है। इ
बदहज़मी के बहाने बहुत बार उसे आम भोज में ग़ैरहाज़िर होना पड़
स्वादिष्ट भोजन चार्नक मोतिया के साथ अपने घर में करता है।
इस भोजन का सारा ख़र्च उसे ख़ुद करना पड़ता है। वेतन वही है—
में बीस पौंड, यानी एक सौ साठ रुपये। ऊपरी पावना है, इसलिए
जाता है। लेकिन इस विषय में चार्नक ख़ूब सावधान है। कंपनी को नु
पहुँचाकर वह किसी भी तरह का मुनाफ़ा नहीं कमाना चाहता।
जिन कारबारों में कंपनी ने हाथ नहीं दिया है, वह वैसे ही कारबा
साझेदार होता है।

चीफ़ के मान-सम्मान की रक्षा का दायित्व कंपनी का है। चीफ़
बहुत-सी अपनी पालकियाँ हैं। तीन घोड़े सदा उसी के हुक्म पर चलते
आम कर्मचारियों के यहाँ दीया जलता है, परंतु चीफ़ के लिए मोमबत
दीये की रोशनी मंद और धुमैली, लाल-सी होती है। मोमबत्ती की ज
स्निग्ध और उजली।

चीफ़ की ज़िम्मेदारियाँ कितनी हैं! एक कोठी का प्रधान है वह। ए
बहुत बड़े इलाक़े में कारोबार फैला है। उसका रग-रेशा सब चीफ़ के हा
में। उसे निगरानी रखनी होती है कि रोज़-रोज़ का हिसाब ठीक से रख
जा रहा है या नहीं; गोदाम में माल हिफ़ाज़त से रखा जाता है या नहीं
अँगरेज़ और नेटिव कर्मचारियों पर चौकस निगाह रखनी पड़ती है। व्यापा
समय पर माल देते हैं या नहीं; मुत्सद्दी, पोद्दार, तगादगीर काम
कोताही तो नहीं करते। हुगली या मद्रास से जो निर्देश आते हैं, उनक
ठीक-ठीक पालन हो रहा है या नहीं। कितने-कितने काम हैं!

चार्नक काम में डूबा रहना चाहता है।

लेकिन आफ़त कर रखी है मोतिया ने। बल्कि यों कहिए, उसी को लेकर मुसीबत है।

उसके भाई की धमकी की चार्नक ने परवाह नहीं की। कहीं भेंट हो जाये तो उस छोकरे को उसकी उद्दंडता के लिए फिर कोड़े लगाये जायें। मोतिया अवश्य अपने नासमझ भाई के लिए सदा अफ़सोस करती है। उसकी ओर से मोतिया ने माफ़ी माँगी है। चार्नक ने ज़ुबान से तो माफ़ कर दिया है, पर उसके मन का गुस्सा अभी गया नहीं है।

जेंटुओं का रवैया ही ऐसा है। अपने में तो छोटी-बड़ी कितनी जात, लेकिन सभी विधर्मियों से घृणा करते हैं। जेंटुओं की नजर में ईसाई तो यवनों से भी अधम हैं। वह शिवचरण, जो रात-दिन चार्नक की ख़ुशामद करता रहता है : बयाना दो, आर्डर दो, सब मंजूर। लेकिन उसे एक लोटा पानी पीने को कहो तो नहीं—बनिये की जात जायेगी। एक मोतिया ही व्यतिक्रम है। वह चार्नक का जूठा तक ख़ुशी से खाती है। मूरों में लेकिन जात का विचार नहीं है। मगर विधर्मी के नाते ये ईसाइयों को विशेष पसंद नहीं करते। उनकी बस यही कोशिश रहती है कि ईसाइयों को मुस्लिम कैसे बनाया जाये।

उधर नशेबाज़ बीवी के जोश में मोशिए ला साल ने चार्नक को डुएल की चुनौती दी है। वह झगड़ा भी मोतिया की ही वजह से है। उसने अवश्य डुएल की दिन-तारीख़ अभी मुक़र्रर नहीं की है। फ्रांसीसियों में बात-बात में डुएल! यह द्वंद्व युद्ध तलवार का होगा या पिस्तौल का, यह भी अभी तय नहीं हुआ है। पिस्तौल ही ठीक है। पिस्तौल का अभ्यास चार्नक ने बदस्तूर किया है। तलवार चलाने में वह कुशल नहीं है। इतना है कि उस कंबख़्त की उम्र ज़्यादा है और चार्नक जवान है। यह एक बहुत बड़ी सुविधा है। मान की ख़ातिर डुएल की चुनौती को स्वीकार करना ही पड़ेगा। चार्नक

के संग के बाद भी अगर मोतिया को संतान की संभावना न हो तो चा
लाचार है। मोतिया कितने तावीज़-जंतर आजकल पहनने लगी है, व
गिनती नहीं। बार-बार साधु-फ़कीरों के पास जाती है। ढेरों प्रसाद, मं
पढ़ा पानी उसने खुद भी खाया-पिया है, चार्नक को भी खिलाया-पिला
है। फिर भी उसकी मुराद अभी पूरी नहीं हुई है।

मोतिया को पता चला है, पटना में एक सैयद आये हैं। बड़ा नाग
धाम है उनका। औरतों में ही उनका असर ज़्यादा है। अनगिनती भक्त
उनके। कोई जो कुछ चाहता है, कल्पतरु की तरह सैयद साहब उसव
मनोवांछा पूरी करते हैं। मोतिया ने सैयद के पास जाने की ज़िद की
चार्नक से भी चलने को कहा।

इन साधु-सैयदों में चार्नक को विश्वास नहीं। मगर प्रेयसी की ज़िद
तो रखनी होगी। चार्नक ने नूर मुहम्मद से सैयद के बारे में पूछा।

बूढ़े नूर ने दाढ़ी खुजाते हुए कहा, 'आदमी वह ढोंगी है, मक्कार है।
औरतों से ही कारोबार चलता है उसका।'

सुनकर मोतिया झुँझला उठी। यह शिकायत सभी साधु-सैयदों के
बारे में सुनी जाती है। लाचार, न चाहते हुए भी चार्नक मोतिया को लेकर
सैयद की सेवा में हाज़िर हुआ। आधी रात को।

जॉब चार्नक की पालकी शहर के केंद्र में एक बगीचे में पहुँची। यह
खूबसूरत बगीचा किसी अमीर भक्त ने सैयद की ख़िदमत के लिए रख-छोड़
दिया है। त्रिया-राज्य हो मानो। कितनी जात की स्त्रियाँ बगीचे में घूम-
फिर रही थीं। अजीब-अजीब थी उनकी वेश-भूषा। सैयद साहब की अनु-
रागिनियों की गिनती नहीं की जा सकती।

बड़ी देर तक प्रतीक्षा करने के बाद एक खोजा ने मोतिया को बुलाया।
सैयद साहब को सलाम देना है। एक कुंज में सैयद का आसन। चार्नक ने
मोतिया का अनुसरण करना चाहा। खोजा ने रोक दिया, 'नियम नहीं है।
बीबी अकेली ही जायेंगी।' मोतिया कुंज में पहुँची। चार्नक दरवाज़े के
पास इंतज़ार करने लगा।

ज़रा देर बाद मोतिया का तीखा स्वर सुनायी पड़ा। वह आँधी की
गति से निकल आयी। उत्तेजित स्वर में बोली, 'साहब, इस अभागे सैयद

हयाई देखी ? मैं औरत हूँ और कहता क्या है कि कमीज़ उतारो, ा उतारो। मैं क्या बाज़ार की वेश्या हूँ। इस मक्कार को दुरुस्त साहब।'

जॉब चार्नक लपक कर गया। एक कुंज में बिस्तर पर बैठा था सैयद— पोशाक, खिलता रंग, आँखों में लालसा।

चार्नक ने तीखे स्वर में कहा, 'तुमने मेरी बीवी से गन्दी, बुरी बातें हैं!'

'झूठ!' सैयद ने कहा, 'वह देखो, रस्सी से लटक रही है कमीज़ और रा। मैंने तो उसे वही उतारने को कहा। उसके मन में पाप है. इसीलिए ने समझा, मैंने उसे उसकी पोशाक...।'

'चकमा है,' मोतिया पीछे से भनक कर बोली, 'चकमा देकर ना चाहता है शैतान। उसकी आँखें देखकर मैं समझ गयी कि यह रख्त मुझसे क्या चाहता है।'

चार्नक के तन-बदन में आग लग गयी। कमीज़ और घाघरा की बाज़ी से औरतों का सर्वनाश करने का मनसूबा! मारे गुस्से के चार्नक मक्कार सैयद पर टूट पड़ा। मुक्का, घूसा, लात! छिटक कर सैयद ती पर आ गिरा। उसके खोजा पहरेदार दौड़े आये। खून-दंगा होगा, डर से मोतिया अँधेरे में चार्नक को लेकर पालकी में भाग आयी।

ग़ज़ब! सैयद के अनुचरों ने कोई शोरगुल नहीं मचाया। मामला इस सानी से निपट जायेगा, चार्नक सोच भी नहीं सकता था।

लेकिन मामला निपटा नहीं। दूसरे दिन और जटिल हो गया। सैयद ी शिकायत पर बादशाही सैनिकों ने आकर चार्नक को गिरफ़्तार किया। र-पीट, दंगे के कारण। विधर्मी फिरंगी की इतनी हिम्मत! बादशाह रंगज़ेब की अमलदारी में मुसलमानों के मान्य सैयद साहब पर हमला! निकों ने चार्नक को हथकड़ी लगायी और मामूली क़ैदी की तरह आम स्ते से उसे ले गये। सारे रास्ते पर भीड़ लग गयी। फिरंगियों के एक धिकारी की गत देखकर राहगीर खूब हँसे। चार्नक बंदी बना।

वकील अलीमुद्दीन चार्नक से मिलने आया। उसने ख़बर दी, पटना में ा उथल-पुथल है। अँगरेज़ों का सिर झुक गया है। फ्रांसीसी लोग मौज

मना रहे हैं। मदाम ला साल ने तो नमक-मिर्च लगाकर सारी बातें कंपनी के कर्त्ता-धर्ताओं को सीधे लंदन लिख भेजी हैं। यद्यपि मदाम ने एक फ्रांसीसी से शादी की है, फिर भी वह अँगरेज़ है। चार्नक के इस दुश्चरित्र और उद्दंडता ने नेटिवों के सामने अँगरेज़ों के सुनाम को धूल में मिला दिया है। चार्नक गुस्से से गुर्राता रहा। मौक़ा मिलने पर निंदा करने वाली उस बदचलन औरत को सबक़ सिखाएगा। कंपनी के मालिक जो चाहें, करें। वहाँ खबर पहुँचने में अभी काफ़ी देर है। उसे जो कुछ करना है, उनके पहले ही करना होगा। फ़िलहाल तो सम्मान के साथ छूटना ही पहला सवाल है।

अलीमुद्दीन ने कहा, 'आपके हमले की बात से तो इनकार नही किया जा सकता।'

चार्नक ने जवाब दिया, 'नहीं। मगर वैसा करने का काफ़ी सबब था। उसने मोतिया बीबी का अपमान किया था।'

'सोच देखिए लेकिन, बीबी की बात का क़ाज़ी यक़ीन करेंगे ? एक तो यह जेंटू है, और यह पहले क्या थी, आप तो जानते हैं। ऐसी औरत की बात कितनी विश्वसनीय है, यह सोचने का विषय है।'

'मोतिया मुझसे झूठ नहीं बोलती।'

'क़ाज़ी साहब इसे नहीं सुनेंगे। तर्क के नाते अगर मान भी लिया जाये कि सैयद साहब ने बीबी से बुरा प्रस्ताव किया था, तो भी कुछ आता-जाता नहीं, क्योंकि बीबी आपकी ब्याहता नहीं है।'

सचमुच ही चार्नक युक्ति के फंदे में पड़ा है। और क़ाज़ी के पास युक्ति का दाम क्या ? वह तो एक ही युक्ति समझता है, और वह है रुपया।

चार्नक ने वकील से कहा, 'जितना भी रुपया लगे, दो, लेकिन मुझे आज ही छुटकारा चाहिए।'

पूरे डेढ़ हज़ार सिक्के में छुटकारा मिला। उतने रुपये चार्नक के पल्ले थे नहीं। हुंडी लिखकर साझेदार गुलाम बख़्श से उधार लेने पड़े। चार्नक को क़ैद से मुक्ति मिली। लेकिन अपमान का घाव बना रह गया। कंपनी के मालिक जाने क्या करेंगे ? फिर भी दिल को एक तसल्ली थी कि

मोतिया का प्रेम एकनिष्ठ है। संतान के लोभ में भी मोतिया सैयद के बुरे प्रस्ताव पर राज़ी नहीं हुई।

तीन अच्छी खबरों से पटना के बादशाही कर्मचारी मगन हैं। साहब-किरान-ए-सानी यानी भूतपूर्व बादशाह शाहजहाँ लंबी बीमारी के बाद गुज़र गये। लगभग आठ साल से वह आगरा के क़िले में क़ैद थे, अब दुनिया के बंधन से मुक्त हो गये। सदा के लिए। पिता के वियोग से बादशाह औरंगज़ेब शोकाच्छन्न हैं। लेकिन यह शोक आंतरिक कितना है, इस पर बहुतों को ग़ुबहा है।

इधर मुग़लों ने फिर संग्रामनगर और चटगाँव दख़ल कर लिया है। चटगाँव नामी बंदरगाह है। संग्रामनगर का नाम हुआ है आलमगीर-नगर और चटगाँव का इस्लामनगर। पूर्वी भारत में मुग़लों को वाणिज्य-व्यापार में बड़ी सहूलियत होगी।

उससे भी जोरदार ख़बर यह कि काफ़िर शिवाजी ने राजा जयसिंह और दिलेर खाँ से शिकस्त खायी है, पुत्र सहित दिल्ली में बादशाह से माफ़ी माँगने के लिए हाज़िर हुआ है। वहाँ अपनी उद्धतता से फिर अपने ही घर में बंदी हुआ है। कोतवाल को बादशाह ने काफ़िर के घर को चारों ओर से घेर लेने का हुक्म दिया है। पहाड़ी चूहा अब चूहेदानी में आ फँसा है।

'अब तो बादशाह खुशी से हमें फ़रमान दे देंगे,' चार्नक ने कहा।

फ़ौजदार ने सिर हिलाकर निराश कर दिया, 'दक्खिन में बीजापुर से लड़ाई है। बादशाह को भला अँगरेज़ों के मामूली फ़रमान के लिए माथा-पच्ची करने का समय है? और आप लोगों को असुविधा क्या है? जब भी कोई कठिनाई महसूस हो, मेरे पास आइये। नवाब से सिफ़ारिश करके मैं हर मुश्किल आसान कर दूँगा।'

चार्नक ख़ूब जानता है, मुश्किल आसान करने का मूल्य क्या है! इन पापों की भूख क़ीमती-दामी भेंटों से भी नहीं मिटती। जितना दो, उतना ही इन्हें और चाहिए।

कुछ दिनों के बाद सेठ शिवचरण उल्लास से उमगता हुआ दौड़ा आया।

'बात क्या है, सेठ ? कोई नया मौक़ा ?'

'बहुत बड़ा मौक़ा। जानते हैं साहब, मर्द के बच्चे शिवाजी ने बादशाह की आँखों में खूब धूल झोंकी है।'

'सो कैसे ?'

'दिल्ली से निकल भागे। कोतवाल ने सुना, शिवाजी बहुत बीमार हैं। बड़ी-बड़ी टोकरियों में मिठाई आदि पूजा के लिए जाने लगीं। शुरू-शुरू में कोतवाल के आदमी टोकरियों को खोलकर देखा करते थे। बाद में देखने की कोई ज़रूरत नहीं समझी। और उन्हीं टोकरियों में बेटे के साथ बैठकर शिवाजी नौ-दो-ग्यारह।'

'आदमी तो बड़ा चालाक है।'

'चालाक जैसा चालाक ? आप देख लीजिएगा साहब, शिवाजी बादशाह की नाक में दम कर देगा। बादशाह का दिमाग़ बड़ा चढ़ गया है, ज़रा सबक़ मिलना चाहिए।'

उसके बाद सेठजी ने चुप-चुप कहा, 'मैंने तो साहब, यह भी सुना कि वह पटना होकर ही दक्षिण की ओर रवाना हुए हैं। काश, पहले जानता, तो उस जवाँमर्द के चरणों की धूल ले लेता।'

'बादशाह के तो ढेरों गुप्तचर हैं, सुना है। उसे पकड़ नहीं सके ?'

'पकड़ते कैसे ? सुना, उन्होंने दाढ़ी-मूँछ सफ़ाचट कर ली है। सारे बदन में राख मल ली है। हिंदुस्तान के हज़ारों साधु-संतों में से एक हो गये हैं। मुग़लों के लोग पटना में साधु-संतों को देखते हैं कि खींच-तान करते हैं। कहते हैं, हरामजादे, तू वही पहाड़ी चूहा है।'

'तो इस स्थिति में बाजार का क्या हाल समझ रहे हो ?'

'दक्षिण में ज़रूर लड़ाई छिड़ेगी। शोरे का भाव बढ़ जायेगा। बादशाह को भी तो गोली-बारूद चाहिए, साहब, इसी समय सौदा कर लीजिए। नहीं तो अगले जहाज़ में माल भेजना मुश्किल हो जायेगा।'

'ठीक कह रहे हो, सेठ। तो तुमने किस माल की सोची है ?'

'गेहूँ। ज़ोरों की लड़ाई होगी, तो रोटी की ज़्यादा ज़रूरत पड़ेगी।

फिर तो गेहूँ का दाम दनादन बढ़ जायेगा। अगर काफ़ी माल छिपाकर रख सका तो मोटा मुनाफ़ा होगा। आप नये कारोबार में उतरिए न, साहब ?'

'अच्छा, सोच देखता हूँ।'

सेठ शिवचरण चला गया। ग़ज़ब की है उसकी व्यवसाय-बुद्धि। चार्नक अक्सर उससे राय-मशविरा करता है। देश की हालत की उसे अच्छी ही जानकारी है, चार्नक सोचने लगा। रुपये की विशेष आवश्यकता है। रुपये के बिना हिंदुस्तान में कुछ नहीं किया जा सकता। ग़ुलाम बख़्श के साथ जो कश्मीरी शाल का कारोबार है, उसे उठा देना ही अच्छा है। शिवचरण की राय में अनाज के कारोबार में गहरा मुनाफ़ा होगा।

मोशिए ला साल के डुएल की चुनौती की बात चार्नक भूल चला था। शराब के नशे में वह फ्रांसीसी ललकारता है और नशा उतरने के साथ ही शायद भूल जाता है। लेकिन लगभग दो साल के बाद डुएल का समय और स्थान निश्चित करके उसने जो ख़त लिखा है, उसकी अपेक्षा नहीं थी। पागल है क्या वह ? फिर भी ग़नीमत कि लड़ाई पिस्तौल की होगी।

डुएल की सुनकर मोतिया तो रोते-रोते बेहाल। ख़ूनी लड़ाई। यह क्या है ? मोतिया ने बाज़ार में कुश्ती देखी है, तगड़े-तगड़े पहलवानों ने उठा-पटक की, औंधे गिरकर धरती पकड़ी, धूल उड़ाई, चित हुए। लेकिन ख़ून कभी किसी ने नहीं किया।

और फिर कारण भी क्या ? मनोरंजन, मज़ा, खुशी नहीं। मोतिया का मान बचाने के लिए ही इसका सूत्रपात हुआ। 'मेरे सर की क़सम, औरत का मान क्या ! ख़बरदार, ऐसी लड़ाई में मत जाना, साहब। कहाँ के एक फिरंगी ने कह दिया और उसी बात पर लड़ना होगा। मारूँ तो हाथी, लूटूँ तो भंडार। लड़ना हो तो लड़ो मुग़ल बादशाह से, जैसे लड़ रहा है मर्द का बच्चा शिवाजी।'

चार्नक ने मज़ाक में कहा, 'मोतिया, मैं अगर मर जाऊँ, तो तुम सती होगी ? वही, तुम्हारी जेंटू स्त्रियाँ जैसे पति की चिता में जल मरती हैं ?'

में दफ़नाए जाओगे। मैं मगर जीते-जी क़ब्र में नहीं जा सकूँगी, सा

'यह तुम्हारा प्रेम है ?' चार्नक ने कपट अनुयोग किया।

मोतिया बोली, 'देखो साहब, मेरे प्रेम का तिरस्कार मत कर

प्रेम को तुम विदेशी क्या समझोगे ? तुम्हारे लिए मैं धतूरा खा सक

गंगा में डूब सकती हूँ। लेकिन क़ब्र में ? मैं हिंदू हूँ न। लेकिन

क़सम खाओ कि मेरी ख़ातिर तुम ख़ूनी लड़ाई में जान देने नहीं जाअ

'मगर यह कैसे हो सकता है ?' चार्नक ने गंभीर होकर कहा, '

की चुनौती को क़बूल नहीं करने से कापुरुष कहलाकर मैं अपने सम

शकल नहीं दिखा पाऊँगा।'

'वह फिरंगी बीवी ही सारे अनर्थों की जड़ है,' मोतिया झुँझल

बोली, 'मैं जाती हूँ, पंचपीर को मुरगे के जोड़े की बलि दे आती हूँ।'

मोतिया हड़बड़ाकर चली गयी। साथ गया नूर मुहम्मद।

चार्नक ने पिस्तौल को अच्छी तरह से देखा। उसकी लंबी नली च

चक कर रही थी। मुट्ठे पर ड्रैगन आँका हुआ था। लंदन के बाज़ार में

शौक से एक जलदस्यु से उसने ख़रीदा था। इसकी गोली ने कई आदमि

के ख़ून का स्वाद लिया है। चार्नक ध्यान से उसे साफ़ करने लगा।

बारूद को भी धूप में सुखाकर ताज़ा कर लेना होगा।

थोड़ी देर में मोतिया और नूर मुहम्मद लौट आये।

मोतिया का केश-वेश कुछ बिखरा-सा। कमीज़ कुछ फट गयी थी

घाघरा धूल-धूसर। चेहरे पर बहुत जगह खरोंच। जैसे किसी ने नोच

लिया हो। कहीं पत्थरों पर गिर पड़ी थी क्या ?

मोतिया की आँखें सुर्ख़ किन्तु गहरे आनंद से उज्ज्वल थीं। नूर मुहम्मद

भी दाढ़ी खुजलाते हुए हँस रहा था। मोतिया ने कहा, 'साहब पिस्तौल को

बंद कर दो। अब द्वंद्व युद्ध की ज़रूरत नहीं रही।'

'बात क्या है, मोतिया ?' चार्नक ने अचरज से पूछा।

अर्दली ने लिफ़ाफ़े में एक चिट्ठी चार्नक को दी। खोलकर चार्नक ने

उसे पढ़ा। मोशिए ला साल ने डुएल की चुनौती वापस ले ली। छोटी-सी

चिट्ठी। चिट्ठी में विचार बदलने की वजह नहीं थी।

मोतिया के होंठों पर विजयिनी की हँसी।

ूर मुहम्मद ने कहा, 'पूछिए मत साहब, बीवी ने जो लड़ाई की है।
ो तो हार मान गया।'

'लड़ाई ? किसके साथ ?'

'और किसके साथ ? सारे अनर्थों की जड़ जो फिरंगी औरत है, उसी
ाथ। पंचपीर साहब को जोड़ा-मुरगे की बलि चढ़ाई। पीर साहब ने
े मानो कहा—री बिटिया, तू अगर साहब को बचाना चाहती है, तो
ही जाकर लड़। मैं औरत ठहरी, फिरंगी से कैसे लड़ूं ? पीर ने जैसे
, तू बीवी से लड़। ओह, मैं भी कैसी बेवकूफ़ हूँ। यह बात पहले
ाग़ में नहीं आयी। औरत की कुश्ती की सुनकर नूर मुहम्मद उछल पड़ा।
ा-ढूंढ़कर मुझे उस फिरंगी के घर ले गया। मैं सीधे अंदर चली गयी।
ा, वह रंग-बंग लगाकर बन-सॅवर रही है। न बात, न चीत। मैं उस
टूट पड़ी। उसके भूरे बालों का झोंटा पकड़कर झटके से उसे धरती पर
का। वह खूब नोचने और दाँत से काटने लगी। मैं भी हीरू कहार की
! मेरा दादा डकैती करता था; मेरा बाप पालकी ढोता था। वह सुख
ला शरीर मुझसे कैसे पार पाता ! मैं उसकी छाती पर सवार हो गयी
र दनादन उसे मारना शुरू किया। वह दई-मारी ज़ोर-ज़ोर से चीखने
ी।'

बाद का क़िस्सा नूर मुहम्मद सुना गया—'वह एक नज़ारा ही था,
हब। फिरंगी बीवी जितना चीखे, मोतिया बीवी उतना ही धुनने लगी
े। आवाज़ सुनकर फिरंगी साहब आया। उसने मुझसे पूछा, माजरा
ा है। मैंने कहा, चार्नक साहब की बीवी है। फिरंगी साहब ग़ुस्सा नहीं
आ बल्कि मेरे साथ खड़ा-खड़ा तमाशा देखने लगा। उसकी बीवी बार-
र साहब से आरज़ू करने लगी। साहब कहने लगा—औरत को मारने
मेरी जात जायेगी। फ्रांसीसी लोग निन्दा करेंगे, तुम्हीं बल्कि उसे
टको।'

मोतिया फुफकार उठी, 'हुं:, वह फिरंगी औरत मुझे पटकेगी ? मैं
ीरू कहार की बेटी हूँ। मैंने कहा, 'मैं तुझे मारकर गाड़ दूंगी। तू फ़ौरन
अपने साहब से कह दे कि मेरे साहब से लड़ने की चुनौती वापस ले। मेरी
मार के मारे उस दई-मारी का हाल बदतर था।'

नूर मुहम्मद ने कहा, 'चिट्ठी लिखकर मेरे हाथों में देते हुए साहब ने कानों में कहा—चार्नक से कहना, मैं भी लड़ना नहीं चाहता था। यह औरत ही रात-दिन वही राग अलापे बैठी थी। सो चार्नक की बीबी ने जो दवा पिलायी है, मदाम अब भूलकर भी डुएल का नाम नहीं लेगी।'

सभी ठठाकर हँस पड़े। चार्नक ने पिस्तौल को खोल में डाल दिया। उसके बाद हँसकर मोतिया से बोला, 'बड़ी बहादुरी दिखाई, तमाम बदन तो छिल गया है। चलो, दवाई लगा दूँ।'

प्रेम से गले लगाकर चार्नक उसे विश्राम-कक्ष में ले गया।

लंदन से ऑनरेबुल कंपनी के कोर्ट ऑफ़ डाइरेक्टर्स की चिट्ठी आयी है। उस चिट्ठी में कारोबार के ही बारे में लिखा है। मदाम ला साल ने जो शिकायत लिख भेजी थी, उसका कहीं जिक्र भी नहीं। बल्कि चिट्ठी में इसकी तारीफ़ की गयी है कि चार्नक के अथक परिश्रम से पटना-कोठी का लेन-देन बढ़ा है। गिरफ़्तारी की जो एक बदनामी हुई, वह बात धीरे-धीरे दबी जा रही है। बल्कि मोतिया की बहादुरी की कहानी बढ़ा-चढ़ाकर परिचितों में कही-सुनी जा रही है। अधीन अँगरेज़ कर्मचारी इस पर आपस में हँसी-मज़ाक करते हैं। आड़-ओट में वह भी चार्नक के कानों तक आयी है। कम-से-कम उसके सहयोगी प्रकट रूप से उसके प्रति कोई असम्मान नहीं दिखाते।

दिन बीते, महीने बीते, बरस भी बीता। कोठी का बँधा-बँधाया काम। अपना निजी कारोबार, खाना-पीना, शिकार, नौका-विहार। खास कोई परिवर्तन नहीं आया। पटना में यूरोपीय समाज बहुत थोड़ा है। किसी व्यवसाय के सिलसिले में ही गोरों का आना-जाना होता है। किसी नये के आने से कौतूहल बढ़ता है। यदि चला गया कि वह भी खत्म। इस पर विभिन्न जातियों में व्यवसाय की होड़ लगी रहती है। फ्रांसीसियों से ही ज़्यादा। डचों से अँगरेज़ों की फिर भी थोड़ी-बहुत प्रीति है। बीच-बीच में डच लोग चार्नक को न्योता देते हैं। दावतों में कुछ मौज-मजा होता रहता है।

इस बँधे-बँधाये-से क्रम में कुछ तरंगें उठाता है मोतिया का साथ।

चूर करवा दिया है। पवित्र मूर्तियों को ले जाकर आगरा में नवाब-बेगम-साहिबा की मसजिद की सीढ़ियों पर चिनवा दिया, ताकि धार्मिक मुसलमान काफ़िरों की देवमूर्तियों को पाँव से रौंदकर अंदर आयें।

'इतना अधरम नहीं पचेगा,' सेठ शिवचरण ने कहा, 'इसका नतीजा एक दिन बादशाह को भोगना ही पड़ेगा। भवानी का वरपुत्र शिवाजी एक-न-एक दिन इसका बदला ज़रूर चुकाएगा।'

शिवचरण को बड़ी फ़िक्र हो गयी। उसने जिस शिवमंदिर की प्रतिष्ठा की है, वह भी बचेगा या नहीं?

'घूस दो, नज़राना दो,' चार्नक ने प्रस्ताव किया, 'सेठ, जैसे तुमने पैगोडा बनाया था, वैसे ही उसे बचाओ।'

सेठ को तसल्ली नहीं हुई। इस बार हाल बुरा है। दारा शिकोह अगर तख़्त पर बैठते, तो हिंदुओं को ज़्यादा सुविधा रहती। दारा बिला शक एक इंसान था। मुसलमान होते हुए भी उसमें कट्टरता नहीं थी। बहुत कुछ अकबर बादशाह जैसा। दारा शिकोह संस्कृत जानता था। गुसाँइयों से संस्कृत में चर्चा करता था, हिंदुओं के धर्मग्रंथ पढ़ता था, उनका अनुवाद करता था। अपने उसी बड़े भाई का औरंगज़ेब ने धर्म के नाम पर ख़ून कराया। उसकी लाश को हाथी की पीठ पर चढ़ाकर दिल्ली की सड़कों पर घुमाया गया। अपने माँ-जाये भाई के लिए जिसका ऐसा नृशंस आचरण है, हिंदू लोग उससे क्या उम्मीद कर सकते हैं? धरम-करम तो ख़ैर गया, अब हिंदुओं का कारोबार भी टिका रहे तो ग़नीमत। नया नियम बनाकर बादशाह ने मेले तक तो बंद करा दिये हैं। उन बड़े-बड़े मेलों में लाखों-लाख का लेन-देन चलता था। जैसे तुग़लकों का ज़माना फिर लौट आया हो।

जॉब चार्नक चिंतित हुआ। एक तो इतनी कोशिशों के बावजूद बादशाही फ़रमान नहीं मिल रहा है; घूस के बिना सरकारी कर्मचारी बात ही नहीं करते। फिर सीधे अगर व्यवसाय पर हमला हुआ तो सब चौपट।

फिर भी जॉब हताश नहीं हुआ। हिंदुस्तान सोने का देश है और हिंदुस्तान के माथे की मणि है बंगाल। इसकी धूल-मिट्टी में दौलत बिखरी पड़ी है। चाहिए सिर्फ़ साहस, धीरज, परिश्रम और बुद्धि। मुग़ल बादशाह

ासन ही में जाने कहाँ दरार है। मयूर सिंहासन पर कौन बैठे, इसके
ो झगड़ा-फ़साद चलता ही रहता है। भाई भाई पर एतबार नहीं
बाप बेटे का विश्वास नहीं करता। विशाल देश, नद-नदी, प्रांतर।
ा भेजा जाना ही दूभर। विद्रोह तो रोज़ की बात है। कर्मचारी अक्सर
ह की हुक्म-उदूली करते हैं। अमीर, उमरा, ज़मींदार—सभी अपने-
इलाक़े में मानो नन्हें नवाब हों। किसी तरह एक किला बनवा लो,
ौज जुटा लो, बस, बग़ावत का झंडा उठाकर कुछ दिन खूब मौज
ो। जब तक बादशाही फ़ौज आये, तब तक अपनी बादशाहत कर
पूवा बंगाल में अगर अँगरेज़ों के हाथ एक किला भी रहा होता, तो
न बादशाही कर्मचारियों को सिखा देता; तोप-बंदूक चलाकर, छाती
वार हो बंगाल-बिहार में व्यवसाय करता।

दो-एक साल में कंपनी के शोरे के कारोबार पर बड़ा संकट आया।
में एक नया नवाब आया है। नाम है इब्राहीम खाँ। किताबी आदमी,
-काज से वास्ता नहीं। उसके मातहत कर्मचारियों की मौज हो गयी।
लोगों ने दोनों हाथों लूटना शुरू किया। घूस दिये बिना एक क़दम भी
ा मुश्किल। आदमी दिल्ली भेजकर पैरवी करने से भी कोई लाभ
। विधर्मी अँगरेज़ों के शोरे का कारोबार चौपट हो ही जाये, तो मुग़ल
ार का क्या!

हिंदू-मुसलमानों पर वैषम्यमूलक ज़कात और व्यवसाय पर कर लगा।
में मुसलमानों को ज़कात से बरी रखा गया। सिर्फ़ हिंदू ही कर देंगे।
ाक हिंदू मुसलमान शिखंडी आगे करके व्यवसाय चलाने लगे। सरकार
कर की मानो फाँकी देने लगे। फिर मुसलमानों पर भी नये सिरे से कर
या गया। हिंदुओं पर पाँच फ़ी सदी, मुसलमानों पर ढाई फ़ी सदी।
व्यवसायियों को इससे बड़ी असुविधा हुई। जेंटुओं का अँगरेज़ों के साथ
ही कारोबार था, सो अँगरेजों को भी कुछ नुक़सान हुआ।

चार्नक की इतने दिनों की कोशिश शायद बेकार हो जाय। पटना में
रेजों का कारोबार बैठने लगा। बड़े ही धीरज से चार्नक नाव की
वार थामे बैठा रहा। उसके काम से खुश होकर कंपनी ने उसका
ााना भत्ता बीस पौंड और बढ़ा दिया।

मोतिया की उम्र हो रही थी। पहले जैसी उमंग भी नहीं रह गयी थी। उम्र के साथ-साथ वह बहुत कुछ गंभीर हो गयी; शरीर पर चर्बी चढ़ आयी मोतिया मानो रोज़मर्रा की जानी-पहचानी सामग्री हो, पोशाक-ओशाक की तरह ही प्रयोजनीय !

'कोई बाल-बच्चा नहीं होने से घर-गिरस्ती नहीं सोहती,' मोतिया ने तंबाकू पीते-पीते कहा।

चार्नक ने कहा, 'मैं विदेशी ख़ानाबदोश हूँ। बाल-बच्चों का क्या होगा ? एक बोझा ही न !'

'मुझे बड़ी साध थी,' मोतिया ने कहा, 'मेरा-तुम्हारा एक ही बच्चा होता कम-से-कम। मेरी वह साध तक पूरी नहीं हुई।'

उसके बाद चार्नक की छाती में मुँह डालकर बोली, 'साहब, मेरी सुनो, तुम एक ब्याह कर लो। तुम्हारी बीवी के जो बच्चा होगा, मैं उसे पालूंगी। वह मेरा लाल होगा, मेरी आँखों का तारा।'

'पगली !' चार्नक ने तसल्ली दी, 'मुझसे कौन ब्याह करेगी ? कोई भी मेरी, सारा, केथेरिना साठ पौंड के कंपनी के नौकर से ब्याह करने के लिए इस तपती गरमी वाले देश में नहीं आयेगी। अगर कहीं शादी कर भी ले सनक में, तो दो ही दिन में जहाज़ के कप्तान के साथ भाग जायेगी—यहाँ के अकेलेपन से बचने के लिए। हम दोनों तो मज़े में हैं, मोतिया बीवी।'

'वैसी फिरंगी बीवी की क्या ज़रूरत पड़ी है, साहब !' मोतिया ने कहा, 'हिंदुस्तान में क्या सुंदर स्त्रियों की कमी है ?'

चार्नक ने दुलारते हुए कहा, 'मेरी मोतिया क्या कम सुंदरी है ?'

'बुद्धू कहीं के !' चार्नक के गाल पर हलकी-सी चपत लगाकर वह बोली, 'मोतिया सुंदरी कहाँ है ? वह तो काली-कलूटी भुतनी है। सच साहब, मैं तो सोचती हूँ, मुझमें क्या देखकर लट्टू हो गये थे तुम ! न रूप है, न गुण। एक बस जवानी थी, उम्र के साथ वह भी ढलती जा रही है।'

'और मेरी उम्र मानो बढ़ ही नहीं रही है !' चार्नक ने कहा, 'वज़न मेरा कितना बढ़ गया है, पता है ?'

'फिर भी तो भीमसेन नहीं हो सके,' मोतिया ने हँसकर कहा, 'तुम

मेरे अर्जुन हो।'

'तुम्हारी द्रौपदी के कितने पति थे, मोतिया ?' चार्नक ने पौर
ज्ञान की जुगाली की, 'लेकिन तुम्हारा मैं अकेला ही हूँ।'

मोतिया बोली, 'तुम्हारे अगर भाई होते साहब, तो मैं उन लो
भी प्यार करती। तुम्हें ईर्ष्या नहीं होती ?'

चार्नक ने पूछा, 'और मेरा व्याह कराने से तुम्हें ईर्ष्या नहीं होग

'होगी,' मोतिया ने कहा, 'फिर भी मैं तुम्हें सौत के हाथ सौं
इस आशा से कि वह तुम्हें बाल-बच्चे देगी।'

चार्नक अपने बाहुपाश में मोतिया की जगह दूसरी किसी
कल्पना करने लगा। मोतिया के ठीक विपरीत। सुन्दर रंग, छरहर
कोमल बड़ी-बड़ी आँखें। बहुत दिन पहले गंगा के घाट पर सूर्य को
करते देखी हुई उस तन्वी गोरी की याद आ गयी। उसकी स्निग
मन में तैर गयीं।

चार्नक आवेग के साथ बोल उठा, 'न-न, मेरी मोतिया
ठीक है।'

अँगरेजों की नावों के बेड़े में एप्रेंटिस होकर जोसेफ़ टाउनसेंड
एक नया युवक आया है। गंगा में पाइलट सर्विस खोली गयी है।
जाँच कर रहे हैं वे लोग। कहाँ भवँर है, कहाँ स्रोत है, कहाँ टा
का—सबका नक्शा बनाया जा रहा है। बड़े-बड़े जहाज बालू
जाने के डर से हुगली नहीं आते, गोकि डच लोग दस टन तक के
नदी में अंदर ले आये हैं। 'डिलिजेंस' नाम की एक बड़ी नाव बना
उसके नाविक गंगा नदी का नक्शा बनाने लगे। एप्रेंटिस हेरन की
से गंगा नदी का रहस्य बहुत कुछ खुल गया।

का टापू चमक रहा है। बड़ा ही मनोरम परिवेश !

बजरे पर बैठकर मोतिया ने कहा, 'साहब, याद आता है आपको, ऐसे ही एक साँझ को मैंने नितांत अपने-सा आपको पाया था ?'

बखूबी याद है चार्नक को। हाँलाकि बहुत वर्ष बीते, फिर भी मिलन की वह साँझ चार्नक के मन में वैसी ही रंगीन बनी हुई है।

मोतिया ने कहा,'साहब, जमाने से मैं नाची नहीं हूँ, गाया नहीं है। जी में आता है, आज तुम्हारे सामने नाचूँ-गाऊँ। उस टापू पर चलिए न !'

मल्लाहों ने एतराज़ किया, 'जगह अच्छी नहीं है। डाकू-लुटेरों का खतरा है। रात होने से पहले लौट चलना चाहिए।'

डाकू-लुटेरों की सुनकर जोसेफ़ उछल पड़ा। बंदूक उठाकर आसमान की तरफ़ ताककर बोला, 'कंबख़्त आयें तो, बंदूक से खोपड़ी उड़ा दूँगा।'

मोतिया ने कहा, 'उजेला पाख है। पूर्णिमा को कुछ ही दिन है। अभी-अभी चाँदनी में चारों दिशाएँ झकझक कर उठेंगी। डर किस बात का ? आप चलिए साहब, टापू पर। ऐसा लक्ष्मण प्रहरी है, रावण तक मेरा कुछ भी नहीं कर सकेगा।'

मालिक के हुक्म से मल्लाहों ने नाव को टापू के किनारे लगाया। चंचल बालिका की तरह मोतिया सुनहली बालू पर कूद पड़ी। चार्नक उतरा। हाथ में बंदूक लिये जोसेफ़ पीछे हो लिया। मल्लाह नाव पर ही रह गये।

भीगे बालू के आगे ही सूखा नर्म बालू। मोतिया बालू पर बैठ गयी। ख़ुशी के मारे लोट-पोट। उसकी हँसी से नीरव प्रकृति गूँज उठी। मोतिया ने मानो फिर से जवानी पा ली।

अपने अफ़सर के प्रेमालाप को न देखने की गर्ज़ से टाउनसेंड ज़रा दूर चला गया। शायद कल्पित डकैत की खोज में उसकी सतर्क दृष्टि तट के जंगल में घूम रही थी।

हाथ पकड़कर चार्नक ने मोतिया को उठाया। अपने हाथों उसके सर से बालू झाड़ दिया। मोतिया खींचती हुई उसे उपकूल के जंगल के भीतर ले गयी। ज़रा साफ़-सी जगह देखकर दोनों बैठ गये।

मीठी महक। झींगुरों की झनकार से रात झंकृत हो रही थी। उसके साथ ही सुनायी पड़ रहा है मोतिया का प्रेम-गुंजन। मोतिया ने गाना शुरू किया। इस प्राकृतिक परिवेश में उसकी सुरीली आवाज़ अनोखी लग रही है।

मोतिया गा रही थी, नाच रही थी। उसके नाच में उद्दाम यौवन की लहक नहीं थी, जो नये यौवन में होती है। उसकी जगह परिपक्व यौवन की गंभीरता थी।

एकाएक 'मारो-मारो' की आवाज़ से वन-वीथि काँप उठी। डकैतों के हमले का मल्लाहों की आशंका ने मूर्त रूप ले लिया। मोतिया स्तब्ध हो गयी। उसने दौड़कर चार्नक की छाती में पनाह ली। चार्नक तब तक पिस्तौल निकालकर खड़ा हो गया था। अचानक एक छाया ने विद्युत् वेग से आगे आकर लाठी का प्रहार किया। अचूक निशाने से चार्नक के हाथ की पिस्तौल छिटककर दूर जा गिरी। चार्नक निरस्त्र हो गया। जंगल में और भी परछाइयाँ घिर आयीं। पहले आततायी ने लाठी उठायी, वीर-विक्रम-सा वह गरज उठा, 'जय शंकर!'

'सुंदर, सुंदर!' हैरान मोतिया चीख़-सी पड़ी।

हमलावर की उठी हुई लाठी ऊपर ही थमी रह गयी।

'सुंदर, मेरे भाई, मेरे लाल! छि:, तू डकैत है।'

डाकू की लाठी हाथ से छूटकर गिर पड़ी। वह दौड़ा आया। 'दीदी, दीदी!' अपने बलिष्ठ बाहु-बंधन में उसने आवेग से मोतिया को बाँध लिया। डकैत पर चाँदनी पड़ रही है; उसके चेहरे पर, कपाल पर कोड़े के दाग साफ़ झलक रहे हैं।

'फ़ूल, डोंट शूट,' चार्नक चिल्ला उठा।

चाँदनी में टापू पर जोसेफ़ की मूर्ति दिखाई दी। उसने सुंदर को लक्ष्य करके बंदूक तान ली थी। कहीं निशाना चूके तो मोतिया का काम तमाम हो जायेगा।

चार्नक फिर गरजा, 'फ़ूल, डोंट शूट!'

हक्का-बक्का होकर जोसेफ़ टाउनसेंड ने धीरे-धीरे बंदूक झुका ली।

सुंदर की कहानी निहायत मामूली है। अभावों की ताड़ना से उसे डकैती शुरू करनी पड़ी है। एक छोटे-से दल का नेता है वह। झोड़ू कहार का पोता है। डकैती उसके ख़ून में है।

'छि: सुंदर,' मोतिया ने कहा, 'बाबूजी से तूने सुना नहीं, दादाजी ने कलेजे के लहू से शपथ ली थी कि उनके ख़ानदान में आगे कोई डकैती नहीं करेगा।'

आवेगरुद्ध गले से सुंदर ने कहा, 'मुझसे पाप हुआ है, दीदी।'

उसके लंबे बालों में हाथ फेरकर मोतिया बोली, 'रोओ मत, मत रोओ।'

मोतिया के अनुरोध से चार्नक ने सुंदर की जमात के लिए जीविका का बंदोबस्त कर दिया। वह ऐसे दुर्दांत साहसी लोगों की तलाश में था, जो नौकरी करना चाहते हैं। चार्नक ने उन्हें पटना-कोठी में सिपाहियों की नौकरी दी। सुंदर को गुलामी करना क़बूल नहीं। इसलिए दस्तूरी के बदले वह तगादगीर के पद पर लगाया गया। लाठी लेकर वह तगादे में निकलता। लाठी के ज़ोर से तहसील-वसूली भी अच्छी ही करता। इसमें उसे जो दस्तूरी मिलती, वह डकैती की अनिश्चित आमदनी से काफ़ी ज़्यादा थी।

चार्नक मज़ाक में कहा करता, 'क्यों भई सुंदर, मुझसे चाबुक का बदला नहीं चुकाया ?'

शर्म से सर झुकाकर सुंदर कहता, 'वह लेन-देन तो बराबर हो गया है, साहब। आपने मना नहीं किया होता तो दूसरे साहब ने तो उस दिन मुझे मार ही डाला होता।'

लंदन से हुक्म् आया, चार्नक दिल्ली जायें; कंपनी के दूत होकर नये फ़रमान के लिए बादशाह को अर्ज़ी पेश करें कि कर्मचारियों का ज़ुल्म बंद हो।

दिल्ली ! मुग़लों की राजधानी। इतिहास का अनोखा रंगमंच। सर टॉमस रो गये थे जहाँगीर बादशाह के दरबार में। कहाँ टॉमस रो और कहाँ जॉब चार्नक ! गर्व होने की बात ही है। कंपनी उस पर विश्वास

करती है। उसकी कार्य-कुशलता पर विश्वास रखती है, नहीं तो इतनी बड़ी ज़िम्मेदारी क्यों देती ?

मोतिया उल्लास से अधीर हो गयी। कब दिल्ली जाऊँगी ? बहुत दूर है दिल्ली। दिल्ली का नाम ही सुना है। अच्छा, बादशाह को देख पाऊँगी ? गुलाम बख्श कह रहा था, बादशाह आजकल झरोखे से दर्शन नहीं देते। फिर कैसे देखूँगी ? खैर, कोई इंतजाम करना ही पड़ेगा।

चार्नक ने दरजी को बुलवाया। नये कपड़ों का नाप दिया। वह अँगरेज़ों की राष्ट्रीय पोशाक पहनेगा। ऑनरेबुल ईस्ट इंडिया कंपनी का प्रतिनिधि है वह। राजा और कंपनी का सम्मान उसी के कूट-कौशल पर निर्भर करता है। क्या पता, बादशाह ख़ुश होकर फ़रमान दे दें; यदि अँगरेज़ों को व्यापार की विशेष सुविधाएँ दे दें, तो जातीय इतिहास में उसका नाम सोने के अक्षरों में लिखा जायेगा। राजा इज़्ज़त बख़्शेंगे, शायद हो कि नाइटहुड का ख़िताब भी दे दें। सर जॉब चार्नक। सर जॉब चार्नक—अपने ही कानों में कैसा अनोखा लगा यह नाम ! जैसे वह ख़ासा भारी-भरकम जरनैल कोई गणमान्य व्यक्ति हो। लेकिन कहाँ से क्या हो गया !

गरमी के दिन। कोठी के प्रांगण में तीसरे पहर तक माल की नीलामी हुई। स्वयं खड़े होकर जॉब चार्नक ने कंपनी के माल का नीलाम कराया। हर छोटी-मोटी बात पर भी उसकी पैनी नज़र थी। प्रचंड गरमी से पसीना-पसीना हो रहा था। शरीर क्लान्त। आराम करने की प्रबल इच्छा।

इतने में जोसेफ़ टाउनसेंड दौड़ा आया। बोला, 'सर, नदी के उस पार श्मशान में एक जेंटू स्त्री सती हो रही है। अपने पति की चिता में वह ज़िंदा ही जल मरेगी। देखने चलिएगा ?'

सती होने की चर्चा तो चार्नक ने सुनी है, आँखों से कभी देखी नहीं है। कैसी वीभत्स प्रथा है यह, चार्नक ने सोचा, एक सुंदर प्राणवंत जीवन आग की लपटों में राख हो जायेगा ! वह औरत रोएगी नहीं ? आर्त-चीत्कार नहीं करेगी ? अपनी इच्छा से, होशोहवास रहते इस अनोखी दुनिया के पानी, प्रकाश, हवा—सबको आग की लपलपाती जिह्वा का ग्रास बना देगी ? हिचकेगी नहीं, बाधा नहीं मानेगी, दृढ़ क़दमों से बढ़ जायेगी धधकती आग में ? प्रेम का आकर्षण, समाज की प्रशंसा, स्वर्ग की

सुंदर की कहानी निहायत मामूली है। अभावों की ताड़न
डकैती शुरू करनी पड़ी है। एक छोटे-से दल का नेता है वह। भो
का पोता है। डकैती उसके ख़ून में है।

'छि: सुंदर,' मोतिया ने कहा, 'बाबूजी से तूने सुना नहीं, व
कलेजे के लहू से शपथ ली थी कि उनके ख़ानदान में आगे कोई ड
करेगा।'

आवेगरुद्ध गले से सुंदर ने कहा, 'मुझसे पाप हुआ है, दीदी।'

उसके लंबे बालों में हाथ फेरकर मोतिया बोली, 'रोओ
रोओ।'

मोतिया के अनुरोध से चार्नक ने सुंदर की जमात के लिए जी
बंदोबस्त कर दिया। वह ऐसे दुर्दांत साहसी लोगों की तलाश में
नौकरी करना चाहते हैं। चार्नक ने उन्हें पटना-कोठी में सिपा
नौकरी दी। सुंदर को गुलामी करना क़बूल नहीं। इसलिए द
बदले वह तगादगीर के पद पर लगाया गया। लाठी लेकर वह
निकलता। लाठी के ज़ोर से तहसील-वसूली भी अच्छी ही करता
उसे जो दस्तूरी मिलती, वह डकैती की अनिश्चित आमदनी
ज़्यादा थी।

चार्नक मज़ाक में कहा करता, 'क्यों भई सुंदर, मुझसे चा
बदला नहीं चुकाया ?'

शर्म से सर झुकाकर सुंदर कहता, 'वह लेन-देन तो बराबर
है, साहब। आपने मना नहीं किया होता तो दूसरे साहब ने तो उ
मुझे मार ही डाला होता।'

लंदन से हुक्म् आया, चार्नक दिल्ली जायें; कंपनी के दूत होकर नये फ़
के लिए बादशाह को अर्ज़ी पेश करें कि कर्मचारियों का ज़ुल्म बंद हो

दिल्ली ! मुग़लों की राजधानी। इतिहास का अनोखा रंगमंच
टॉमस रो गये थे जहाँगीर बादशाह के दरबार में। कहाँ टॉमस रो
कहाँ जॉब चार्नक ! गर्व होने की बात ही है। कंपनी उस पर वि